सरदार पृथ्वीसिंह

लेखक
राहुल सांकृत्यायन

बनारस
ज्ञानमण्डल लिमिटेड

मूल्य ३।।

तृतीय संस्करण, संवत् २०१२

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी

मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, बनारस ४७१९-११

भूमिका

सरदार पृथ्वीसिंहकी जीवनीका यह तृतीय संस्करण ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है। देशको स्वतन्त्र बनानेकी लगनमें सरदारको कैसे-कैसे भयंकर कष्टोंका सामना करना पड़ा और उन लोमहर्षक स्थितियोंमें भी उनकी अदम्य आत्माने कभी पराजय स्वीकार नहीं की, इसका वृत्तान्त जितना ही रोचक है उतना ही शिक्षाप्रद भी।

वीरता और निर्भयताका पाठ पृथ्वीसिंहने बचपनके उन दिनोंमें ही सीख लिया था जब वे अपने मामाके साथ शिकारयात्राओंमें जाया करते थे। छोटी अवस्थामें ही वे स्कूलमें नहीं बैठा दिये गये किन्तु "वे उससे भी बड़े स्कूलमें बैठे थे, जहाँ उन्होंने निर्भयता, नेतृत्व और बहादुरीका पाठ पढ़ा और साथ ही उनका शरीर भी मजबूत बना।"

पृथ्वीसिंह जब बर्मामें चौथी कक्षामें पढ़ते थे, तभी स्काटकी इस कविताने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया—"वह आदमी मृतात्मा-सा साँस ले रहा है जिसने कभी अपने तईं नहीं कहा—यह मेरी अपनी, मेरी मातृभूमि है।" इसके बाद जब वे अमेरिका गये, तब उन्हें पता चला कि देशके गुलाम होनेकी वजहसे ही भारतीय सर्वत्र नीची निगाहसे देखे जाते हैं। वे शीघ्र ही वहाँकी गदर पार्टीमें सम्मिलित हो गये। अपने साथियोंके साथ भारतके लिए रवाना होनेके पूर्व उन्होंने कहा था कि "हम स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़ने हिन्दुस्तान जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि स्वतन्त्रता हमें मिलेगी या नहीं, किन्तु एक बात निश्चित है कि हम भारतीय जनताको स्वतन्त्रताका पाठ पढ़ायेंगे और दिखलायेंगे कि कैसे देशकी आजादीके लिए प्राण दिये जाते हैं।"

इस कंटकमय पथपर पैर रखनेके कारण पृथ्वीसिंहके लिए पग-पगपर

विपत्तिमें पड़ना स्वाभाविक था पर इससे वे कभी विचलित नहीं हुए। अण्डमान जेलमें भयंकर अत्याचारोंको सहते-सहते जब नाकमें दम हो गया, तब पृथ्वीसिंहने भूख हड़ताल शुरू कर दी। उन्होंने पानीतक छोड़ दिया किन्तु दो महीने बीत जानेपर भी मौतका कहीं पता न था। जाड़ेके कपड़ेतक उन्होंने फेंक दिये। वजन १६० से घटकर ९८ पौण्ड रह गया। ऐसी ही यातनाएँ उन्हे काबुल जेलमें भी भोगनी पड़ी थीं। अण्डमानमें उन्हें लगता था कि अब स्वदेशके दर्शन न होंगे और यही स्थिति काबुल जेलमें थी, फिर भी नियतिने पलटा खाया और अण्डमानकी ही तरह काबुलसे भी किसी तरह उन्हें छुटकारा मिला।

पृथ्वीसिंहमें देशभक्तिके साथ-साथ स्वाभिमान भी कूट-कूटकर भरा था। अण्डमान जेलके अधिकारियोंको इसका काफी परिचय मिल चुका था और राजमहेन्द्रीके जेलरको इसकी बानगी उस समय मिली जब उसने इन्हें गाली देनेको धृष्टता थी। रायमहेन्द्री भेजे जाते समय उन्होंने अपूर्व साहसका परिचय दिया जब तीन-तीन कान्स्टेबिलोंसे घिरे रहकर भी हथकड़ी बेड़ी पहिने हुए, तेजीसे दौड़ती हुई डाक गाड़ीसे वे नीचे कूद पड़े। उनके पैरकी हड्डी टूट गयी, शरीरमें दो-तीन सौ नागफनीके काँटे धँस गये, फिर भी लुढ़कते-पुढ़कते, शरीरको किसी तरह घसीटते हुए वे मीलों चले गये। ऐसी अपूर्व वीरता, धीरता एवं सहिष्णुताके उदाहरण पुस्तकमें भरे पड़े हैं। ऐसे वीर-पुङ्गवकी जोवनी, जैसा कि महात्माजीने स्वयं स्वीकार किया था, देशके लिए उपयोगी होगी। इसी दृष्टिसे हम इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है, इससे देशके नवयुवक यथेष्ट शिक्षा ग्रहण करेंगे और मातृभूमिकी सेवामें अपने आपको अर्पित करते समय हर तरहका कष्ट उठानेको तैयार रहेंगे।

—प्रकाशक।

विषय-सूची

अध्याय १

बचपन

सत्रहवीं सदीका मध्य या अंत था। जैसलमेर (राजपूताना) से दस, बारह भट्टी राजपूत-सवार अकालके मारे निकल पड़े। कितने ही दिनोंतक मारे-मारे फिरते वे लालडू गाँवसे गुजर रहे थे। देखा गेहूँकी फसल लहलहा रही है। मुँहमें पानी भर आया। उन्होंने कुछ ख्याल करके किसानोंसे पूछा। जवाब मिला—ये हमारे खेत हैं। जवाब शायद नर्मीके साथ दिया गया था। सवारोंकी हिम्मत बढ़ी। उन्होंने किसानोंको डाँटकर कहा—जबतक हम लौटकर न आयें, तबतक फसलको न काटना। कुछ दिन आस-पास घूमकर जब वे लौटे, तो देखा कि फसल वैसी ही खड़ी है। भट्टी सवार फसल और गाँवके मालिक बन गये। तबसे लालडू भट्टी राजपूतोंका गाँव हो गया। किस-किसके शासनमेंसे होते हुए पटियालाके भट्टी वंशके राज्यमें आ जानेसे लालडूके भट्टियोंकी अवस्था कुछ विशेष उन्नत हुई, इसका तो पता नहीं लगता, लेकिन गाँवके हर्ताकर्ता बराबर वही रहे। उन्नीसवीं सदीके अंतमें लालडू ४००० की अच्छी खासी बस्ती थी, जो दुकानें, थाना, पुलिस आदिके कारण छोटा-मोटा कसबा-सा दीख पड़ता था। लेकिन राजपूतोंकी जीविका एक मात्र खेती थी। गाँवका फाड़िया ८० घर राजपूतोंमें सम्माननीय समझा जाता था। काठ-कोड़ो यहीं रहता था, जहाँ गाँवमें पकड़े गये चोरको काठ मारा जाता या कोड़ेसे पीटा जाता। उस वक्त फाड़िया परिवारमें १२, १४ व्यक्ति और उसके पास ८० एकड़ खेत थे।

लालडू अम्बालासे कालिका जानेवाली रेलपर तीसरा स्टेशन है।

जन्म

१५ सितम्बर, १८९२ ई० को चौधरी शादीराम और उनकी पत्नी-को—जौ टाबरके चौहानोंकी लड़की थीं—सबसे बड़ा पुत्र पैदा हुआ, नाम रक्खा गया, पृथ्वीसिंह। भट्टियोंके रिवाजके मुताबिक उसे भी खड्गकी घुट्टी दी गयी। लेकिन इस चरणामृतकी लाजको इतनी बहादुरी-से बहुत कम ही ने निबाहा होगा।

फाड़िया परिवार खुशहाल था, लेकिन तभीतक जबतक कि आस-मान उसपर मेहरबानी करता। उसके खेतोंको सींचनेके लिए वहाँ न नहर थी, न कुआँ। मेंह बरस गया, तो फसल हो गयी और परिवारके १५ व्यक्तियोंको दाल-रोटी कपड़ेका इन्तज़ाम हो जाता। सालके बाद कुछ बचा लेना घरके लिए मुश्किल था।

पृथ्वीसिंह उस वक्त पाँच सालसे कुछ ऊपरके थे, लेकिन उनका छोटा भाई डिपटी अभी दूध पीनेवाला बच्चा ही था। इसी वक्त स० ५६ (१८९८ ई०) का महाकाल आया। फसल नहीं हुई। लोग दाने-दानेके लिए तड़पने लगे। पृथ्वीसिंहको अभी भी वह दिन याद है, जब कि उनके चचेरे दादा (निहालसिंह) जहाँतहाँसे जुगाड़ करके घरमें गाजर लाते; कुछ आटा डालकर उसे उबाला जाता और भूखे ही सो गये लड़कोंको उठाकर उनकी जीवन-रक्षाके लिए लेई दी जाती।

चौधरी शादीराम ज्यादा दिन घर नहीं रह सके। घरके एक भाई बर्मामें पुलिसकी नौकरी करते थे। चौधरी शादीराम भी घर छोड़ बर्मा-का रास्ता पकड़नेके लिए मजबूर हो गये। चौधरी शादीराम छः फुटके खूब लम्बे-चौड़े, स्वस्थ, बलिष्ठ जवान थे। लेकिन उन्होंने पुलिसकी नौकरीका ख्याल छोड़कर दूध बेचनेका रोजगार पसंद किया!

पृथ्वीसिंह और उनके भाईको उनके मामा अपने गाँव ले गये। वहाँ खानेपीनेकी तकलीफ न थी। गाँवमें पाठशाला न थी, इसलिए पढ़नेका कोई इन्तजाम न हो सकता था। हाँ, गोरू चराना, लड़कोंके साथ खेलना-कूदना यही उनका काम था। मामा, चार भाई, अच्छे

शिकारी थे। अक्सर रात-रात बन्दूक लिये सूअरोंका शिकार करने निकल पड़ते। पृथ्वीसिंह बराबर उनके साथ रहते और कितनी ही बार तो उन्हें मामाकी बगलमें भाला लिये खड़ा रहना पड़ता। मामाके साथकी इन शिकार-यात्राओंने पृथ्वीसिंहके दिलसे भूत और जंगली जानवरोंका भय खतम कर दिया।

पृथ्वीसिंह अपनी बाल-सेनाके निर्भीक सेनापति थे। पड़ोसी गाँव-वाले चरवाहोंसे जब कभी भिड़ंत हो जाती, तो वे उनके भीतर घुस कर लाठियाँ छीन लाते। कभी-कभी प्रतिद्वन्द्वियोंकी संख्या अधिक होती, और पिटना भी पड़ता। पेड़ों पर चढ़नेके खेलमें कितनी ही बार गिरते और शरीरमें जहाँ-तहाँ घाव हो जाते। पृथ्वीसिंहको बचपनसे ही स्कूलमें नहीं बैठा दिया गया, लेकिन वे उससे भी बड़े स्कूलमें बैठे थे, जहाँ उन्होंने निर्भयता, नेतृत्व और बहादुरीका पाठ पढ़ा, साथ ही उनका शरीर भी मजबूत बना।

बर्मामें पिताका दूधका रोजगार चल पड़ा था और कुछ ही दिनोंमें उन्होंने सारा कर्ज अदा कर दिया। पिताके लिखनेके अनुसार पृथ्वी-सिंहको अब अपने गाँव (लालडू) के स्कूलमें दाखिल कर दिया गया। उनके दर्जेके लड़के छोटे-छोटे थे, इसलिए पृथ्वीसिंहको उनके साथ बैठनेमें शरम आती, लेकिन उन्हें बहुत दिनोंतक वहाँ रहना नहीं पड़ा।

बर्मामें (१९०१-७)

ताया शादी करनेके लिए घर आये थे। वह अपने साथ ही भतीजोंको भी बर्मा लेते गये। चौधरी शादीराम रंगूनसे बहुत दूर अपर बर्मामें मोन्येवामें रहते थे। इरावतीमें नावके द्वारा उन्हें जाना पड़ा था।

चन्द दिनों बाद पृथ्वीसिंह स्थानीय मिशन-स्कूलमें दाखिल कर दिये गये। यहाँ भी उन्हें अपनेसे बहुत कम उमरके सहपाठियोंके साथ बैठना पड़ता। पृथ्वीसिंहके साथी विद्यार्थी अधिकतर बर्माके

और बस्तीके निवासी भी बरमी ही थे, इसीलिए उन्होंने बहुत जल्दी बरमी भाषा सीख ली।

पृथ्वीसिंह छः सालतक बर्मामें रहे। पिता स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उन्हें लड़कोंके पढ़ानेकी बड़ी इच्छा थी। पिता इतने धनी नहीं थे कि खाना पकानेके लिए नौकर रखते। दूसरे कामोंको देखनेके बाद वह खुद ही खाना बनाते, जिसमें पृथ्वीसिंह भी सहायता करते। उनके लिए घरका काम इतना ज्यादा होता कि स्कूलके बाद किताबमें हाथ लगानेका मौका नहीं मिलता। पिता धार्मिक श्रद्धालु व्यक्ति थे। वे अक्सर बौद्ध भिक्षुओंके सत्संगमें जाते। पृथ्वीसिंह भी कितनी ही बार पिताके साथ होते और उन्हें भिक्षुओंका जीवन आकर्षक मालूम होता। एक बार वह स्वयं जंगलमें तपस्या करनेके लिए भाग निकले। लेकिन वहाँ कोई परिचित लकड़हारा मिल गया, जिसने बतलाया कि इस जंगलमें डाकू छिपे हैं और तुम्हारे चचा नारायणसिंह दूसरे सिपा-हियोंको लेकर उनके पीछे पड़े हुए हैं। पृथ्वीसिंहको चचाका क्रोधपूर्ण मुँह याद आया। तपका ख्याल छूटा, वापिस चल पड़े। इधर लड़केको लापता देखकर पिता अलग चिंतामें पड़े थे। कितने ही लड़के-लड़-कियोंकी टोली उन्हें ढूँढ़ने निकली थी। चार लड़कियोंने पृथ्वीसिंहको पहाड़से भागते देखा। उन्होंने घेर लिया और घसीटते पिताके पास ले गयीं। पृथ्वीसिंह डर रहे थे कि पिता जरूर उनपर गुस्सा उतारेंगे, लेकिन चौधरी शादीरामने एक शब्द भी नहीं कहा।

१९०६ में पृथ्वीसिंह १५ सालके हो गये थे। उस वक्त देशमें राजनीतिक आन्दोलन जारी था। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय-को देशसे लाकर माँडले किलेमें बंद कर दिया गया था। लेकिन पृथ्वी-सिंह अखबार तो पढ़ते नहीं थे कि उन्हें कुछ मालूम होता। इसी वक्त उनको स्कॉटकी एक कविता पढ़नेको मिली—

"वह आदमी मृतात्मा-सा सांस ले रहा है, जिसने कभी अपने तईं नहीं कहा—यह मेरी अपनी, मेरी मातृभूमि है।"

चौथे स्टैंडर्डको पास कर लेनेके बाद पृथ्वीसिंहको देशसे दूर रहना मुश्किल हो गया। पहले पिताने समझाया, लेकिन फिर-फिर कहने पर घर जानेकी इजाजत दे दी।

फिर भारतके स्कूलमें

पृथ्वीसिंह अब अम्बाला शहरके एक स्कूलमें दाखिल हो गये। उनके बरमी भाषाके ज्ञानका यहाँ कोई मूल्य न था और वह हिन्दी या उर्दू जानते न थे। यद्यपि उनके पास पाँचवें दर्जेका सर्टीफिकेट था, लेकिन भाषाकी दिक्कतसे मजबूर होकर उन्होंने चौथे दर्जेसे पढ़ाई शुरू की। अंग्रेजी अच्छी थी और यहाँ गाय, भैंस देखने या खाना पकानेका झंझट भी नहीं था; उन्होंने खूब मन लगाया और एक ही सालमें ४ थे, ५ वें ६ ठे, तीनों दर्जोंको पास कर डाला। सातवें दर्जेमें जानेके बाद उन्होंने आठवें दर्जेकी भी पढ़ाई खतम करनी चाही। लेकिन अध्यापक चाहते थे कि एक वर्ष और पढ़नेके बाद वह मिडलमें अपनी सफलतासे स्कूलका नाम करें। पृथ्वीसिंह इससे असंतुष्ट थे। उसी समय अध्यापकने जापान और रूसके बारेमें लड़कोंको एक निबंध लिखनेको कहा। पृथ्वीसिंहने अपने निबंधमें और बातोंके साथ यह भी लिखा कि अगर जापान जैसा छोटासा मुल्क रूसको हरा सकता है, तो हिन्दुस्तान ऐसे बड़े मुल्कका इंग्लैण्ड जैसे छोटे मुल्कको हराना बिलकुल छोटी बात है। पृथ्वीसिंह अक्सर अपने निबंधोंके लिए अच्छे नम्बर पाया करते थे, लेकिन उस दिन अध्यापकने कहा—तुमने बड़ा बुरा निबंध लिखा है, तुम्हें इसके लिए सजा मिलेगी। उन्होंने कापी उठाके देखा, तो वहाँ कोई हिज्जे या वाक्य-रचनाकी गलती न थी। ऊपरके दर्जेके लड़केने लाल पेंसिल लगी हुई पाँतियोंको देखकर बतलाया कि पृथ्वीसिंहने क्या गलती की। वह राजनीतिसे बिलकुल कोरे थे, लेकिन विदेशी शासनके प्रति घृणा उन्होंने अपने राजपूती खूनमें पायी थी।

पृथ्वीसिंहका मन अब वहाँसे उचट गया। उनके गाँवके कुछ लड़के

राजपुर स्कूलमें पढ़ते थे। मालूम हुआ, उस स्कूलमें जाकर वह एक ही सालमें दोनों दर्जोंको पास कर सकते हैं। बहुत दौड़-धूप करनेके बाद ट्रांसफर (तबादलेका) सर्टीफिकेट मिला और तीन ही महीने बाद सातवें दर्जेसे आठवेंमें जाकर उन्होंने मिडिल पास किया।

फिर बर्मामें

१९०९ आया। पृथ्वीसिंह अब १७ सालके खूब लम्बे डीलडौलवाले मजबूत नवयुवक थे। उनके मनमें बड़ी-बड़ी उमंगें थीं। उसी समय राजपुरमें प्लेग आया, ऊपरसे पिताने ३ महीनेसे पैसा क्या; चिट्ठियोंका जवाबतक नहीं भेजा था। उन्हें बहुत चिंता हुई। यद्यपि बिरादरीके कुछ लोग सहायता करना चाहते थे, लेकिन उन्होंने पिताके पास जाना ही पसंद किया। एक दिन वह पिताके पास पहुँच गये। देखा कि महामारीमें सारी गायें, भेड़ें मर चुकी हैं और पिता भी चारपाई पर पड़े हैं।

चौधरी शादीरामको पढ़ाई छोड़कर चला आना पसंद न आया। उन्होंने कहा—क्यों नहीं खेत पर रुपया लेकर अपनी पढ़ाई जारी रक्खी। अब बीती बात पर सोच करनेसे काम नहीं चल सकता था, रुपया था नहीं कि वे कोई रोजगार-बात देखते। इष्टमित्रोंने सलाह दी कि पुलिसकी-इन्सपेक्टरीके लिए ट्रेनिंग स्कूलमें दाखिल हो जाओ। अर्जी भी भेज दी गयी, लेकिन यह सब हुआ था पितासे बिना पूछे ही। जब उन्हें मालूम हुआ, तो उन्होंने एकदम मना कर दिया। और किसी कामके लिए उन्हें एतराज नहीं था। पिता पुत्रको इच्छामें वैसे कभी बाधा नहीं उपस्थित करते थे। पृथ्वीसिंहने अब डाकखानेकी नौकरी कर ली, यद्यपि वह इससे संतुष्ट न थे। इसी समय चौधरी साहबके सम्बन्धी लड़केका ब्याह कर देने पर जोर दे रहे थे। लेकिन वह अभीसे लड़केको फंदेमें डाल देनेकी बात पसंद नहीं करते थे।

पृथ्वीसिंहके बड़े-बड़े मन्सूबे थे और वह देख रहे थे अपनेको डाकखानेकी एक छोटी नौकरीमें। कहाँ जाना था और कहाँ जा रहे हैं,

यह सोचकर उनके कलेजेमें सुईसी चुभती थी। पिता तैयार थे कि पृथ्वीसिंह उनके काममें लग जाँय तो वह हाथखर्चके लिए ३० रुपया मासिक देंगे। मगर पृथ्वीसिंहको वहाँ कोई भविष्य नहीं दीख पड़ता था। लड़का अपनी धुनका है, यह वह अच्छी तरह जानते थे, और साथ ही यह भी कि बर्मा ऐसे स्वतंत्र सामाजिक देशमें रहकर भी तरुणाईके बहुत दोषोंसे उसने अपनेको बचा रक्खा है।

पृथ्वीसिंहकी मानसिक विकलता इतनी बढ़ गयी थी कि उनके लिए एक दिन काटना मुश्किल था। उनके पिताके एक दोस्त मेम्योके रमणीक शहरमें रहते थे। किसी तरह पृथ्वीसिंहके बारेमें उन्हें मालूम हुआ। उन्होंने चिट्ठी लिखी। पिताने समझा, मेम्योमें जानेपर सुन-समझ कर शायद लड़केकी तबीयत बदल जाय, लेकिन पृथ्वीसिंह जानते थे कि मेरी समस्याका हल मेम्योमें नहीं हो सकता।

अध्याय १

अमेरिकाके रास्तेपर

घरका पैसा-कौड़ी पृथ्वीसिंहके पास ही रहता था। उन्होंने सौ रुपये जेबमें रक्खे और मेम्यो जानेके लिए पितासे विदाई ली। वह कहाँ जायँगे, इसका उन्हें पता नहीं था हाँ, वह मेम्यो जानेके लिए तैयार नहीं थे। यद्यपि मोनेवासे उन्होंने मेम्योका टिकट लिया था, लेकिन रास्ते हीमें रंगूनकी गाड़ी पकड़ ली। पृथ्वीसिंहको नाच-तमाशे, ऐशोइशरतका शौक नहीं था, इसलिये रंगूनमें भी वह शहरकी ओर नहीं गये। कितने ही पंजाबी मुसाफिर अपना सामान सर पर लादे किसी ओर जा रहे थे। १७ सालके पृथ्वीसिंह भी उनके साथ हो लिये। वहाँ उनकी दो पंजाबी नौजवानोंसे भेंट हुई, जो नौकरीकी खोजमें देशसे निकले थे और तारबाबूकी परीक्षा दे रहे थे। उन्होंने पृथ्वीसिंहको भी समझाया। स्टेशन मास्टरी बड़ी आमदनीकी नौकरी थी इसमें शक नहीं, लेकिन हमारे तरुणको रुपयेका आकर्षण हो तब ना।

पंजाबी किसानोंके लड़के चीनतक नौकरीकी तलाशमें जाया करते थे। एकाएक पृथ्वीसिंहके मन में आया, क्यों न चीन चला जाऊँ। पृथ्वीसिंहने पिनांग (मलाया) का टिकट कटाया। पिनांगमें उन्हें दूसरे मुसाफिरोंके साथ १५ दिन कोरंटीनमें बंद रहना पड़ा। रसद पानी स्टीमर कंपनी देती, खाना लोग आप बना लेते। कोरंटीनका समय समाप्त होनेके बाद वह शहरमें गये। छोटी-मोटी नौकरियाँ थीं, और न उन्हें अभी नौकरी करनेकी मजबूरी थी। सिंगापुरमें भी उनका रास्ता रोकनेवाली कोई चीज नहीं मिली।

जून (१९०९) का महीना था। जहाज १५०० चीनियों और

१०० हिंदुस्तानियोंको लेकर हाँगकाँगके लिए रवाना हुआ। मुसाफिर भेड़बकरियोंकी तरह जहाजमें ठूँसे हुए थे। इतना दम घुट रहा था, कि कमजोर आदमियोंका टटना मुश्किल था। आमतौरसे जहाज छै दिनोंमें हाँगकाँग पहुँच जाता है; अगर वह ऐसे तूफानमें पड़ गया, कि बड़ी-बड़ी विपत्तियोंके बाद १५ वें दिन हाँगकाँग पहुँच सका। जहाज इतना हिल रहा था कि सिवाय चिर-अभ्यस्त नाविकोंके कोई खड़ा नहीं रह सकता था। डेकपर मुसाफिर रस्सियोंको पकड़े खड़े रहते, रस्सी छूटी कि अथाह समुद्रमें। इस प्रकार कइयोंने अपनी जान खोयी। कप्तान भी इतना निराश हो गया था कि उसने लोगोंसे कह दिया—अब हमारे हाथमें कुछ नहीं है। तरुण पृथ्वीसिंहका उत्साह कुछ ढीला पड़ने लगा, खास कर जब कि ५ दिन बाद उपवास करनेकी नौबत आयी। भूखके मारे लोग इतने निर्बल हो गये थे कि रस्सीको भी कड़ाईके साथ न पकड़ पाते और तूफान उन्हें पानीमें ढकेल देता। पृथ्वीसिंहका भी बिरतरा-उरतरा समुद्रमें चला गया, सिर्फ एक छोटासा ट्रङ्क बचा था, जिसमें कुछ कपड़े रह गये थे। आठ दिनके उपवासके बाद शरीर बिलकुल दुर्बल हो गया था जब जहाज हाँगकाँग बंदरमें लगा।

हाँगकाँगमें

हाँगकाँगमें पृथ्वीसिंहका किसीसे परिचय नहीं था। उनके पास यद्यपि ६५ रु. बच रहे थे लेकिन वह कमसे कम खर्चमें रहना चाहते थे, इसीलिये दूसरे मुसाफिरोंके साथ वह भी सिख गुरुद्वारामें चले गये। सभी लोग गुरुद्वाराके बड़े हॉलमें अपना लटा-पटा रखकर रातको बाहर खुले आसमानके नीचे सोया करते। पृथ्वीसिंहको अभी चोरोंका तजरबा था नहीं, उन्होंने रुपयोंको ट्रङ्कमें रख हॉलके भीतर छोड़ दिया। सबेरे उठकर देखते हैं, तो रुपये गायब। अब एक पैसा भी उनके पास न था। वह पथके भिखारी थे। किसी तरह गुरुद्वारा वालोंको मालूम हुआ। वह खानेके लिए बुला भेजा करते। यहीं

उनकी मुलाकात दो पंजाबी नौजवानोंसे हुई। दोनों ही सुशिक्षित थे और साथ ही उनमें देश-भक्तिकी पक्की लगन थी। उनके सत्संगसे पृथ्वीसिंहके सामने एक नयी दुनिया दिखलायी देने लगी और उन्हें मालूम होने लगा कि वैयक्तिक सुख और आरामसे ऊपर देशकी आजादी भी कोई चीज है। प्यारेलालका रुपया कुछ ही दिनोंमें आ गया और वह अमेरिकाके लिए रवाना हो गये; लेकिन बलवंतसिंहको अभी रुकना था।

गुरुद्वाराके ग्रन्थी (पुजारी) सरदार भगवानसिंहके हृदयमें भी बड़ी तीव्र राष्ट्रीय भावना थी। उनकी वाणीमें भी बहुत शक्ति थी, और सभी सिक्ख उन्हें बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उनके भाषणने भी पृथ्वीसिंहकी राष्ट्रीय भावनाको जगानेमें बहुत काम किया। उसी समय कनाडाके सिक्खोंका एक डेपुटेशन अपनी तकलीफोंको सुनानेके लिए वायसरायके पास हिंदुस्तान जा रहा था। सरदार भागसिंह और सरदार बलवंतसिंह दोनों प्रतिनिधि गुरुद्वारमें ठहरे थे। उनकी बातचीतने आगमें घीका काम किया।

पृथ्वीसिंह १८ सालके नवयुवक होनेपर भी अब वह वही पृथ्वीसिंह नहीं थे, जो मेक्सिकोके लिए रवाना हुए थे। उन्होंने अपने दोस्त बलवंत सिंहसे कहा कि मैं भारत जाकर अपने जीवनको देशसेवामें लगाना चाहता हूँ। बलवंतसिंहने सलाह दी, किसी तरह अमेरिका पहुँचकर भारतीय-क्रान्तिकारियोंसे मिलो, वे तरुणोंको क्रान्तिके लिए तैयार कर रहे हैं। पृथ्वीसिंहने भी अब अमेरिका जानेका निश्चय कर लिया। यह निश्चय वह उस वक्त कर रहे थे, जब कि उनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी।

इधर-उधर करनेके बाद उन्हें एक सोडावाटर फैक्टरीमें १५ रु० की दरबानी मिली। मुखिया दरबानकी मेहरबानीसे वह रोज आठ आनेका खानेका सामान दूकानसे ले सकते थे। बलवन्तसिंहके पास भी एक पैसा नहीं था। उसी सामानमें दोनों एक शाम खाते थे।

यह नौकरी भी ज्यादा दिन नहीं चली। मुखिया दरबानको डर लगने लगा कि कहीं इस चुस्त नौजवानको ही उसकी जगह न दे दी जाय, इसलिए १५ दिन बीतते-बीतते ही उसने पृथ्वीसिंहको वहाँसे निकलवा दिया।

गुरुद्वारेमें टापूकी छावनीसे कितने ही हिन्दू और सिक्ख सिपाही आया करते थे। कुछ राजपूत सिपाहियोंको इस तरुण राजपूतका पता लगा। उन्होंने अपने साथ पृथ्वीसिंहको छावनी ले जा कितने ही और राजपूत सैनिकोंसे परिचय कराया। उनके आग्रहपर पृथ्वीसिंह रोज खानेके लिए छावनी जाने लगे, नावका किराया भी वे ही दे दिया करते थे। पृथ्वीसिंह खाना खाकर कुछ रोटियाँ बलवन्तसिंहके लिए लाते थे।

हाँगकाँगका चौरस्ता

एक साल बीत गया। सन् १९११ का कोई महीना था। पृथ्वीसिंहने बड़े आश्चर्यसे देखा कि हाँगकाँगके चौरस्तोंपर जगह-जगह लम्बी-लम्बी चोटियोंका ढेर लगा है। चीनी पुरुष अपनी लम्बी चोटियोंको मंचू राजवंशियोंकी गुलामीका चिह्न समझते थे। यह चीनी क्रान्तिकी प्रथम सूचना थी। चीनियोंकी इस क्रान्तिका क्या उद्देश्य है, पृथ्वीसिंहको यह मालूम नहीं था; लेकिन, उन्होंने देखा कि एकाएक चीनियोंके भावमें भारी परिवर्तन आ गया। जहाँ हाँगकाँगमें जरासी बातपर कान्स्टेबिल चार-चार, पाँच-पाँच चीनी कुलियोंकी चोटी पकड़े थानेमें घसीट लाता, वहाँ अब हवा ही बदल गयी है। चीनी कुली जरा सी भी "तूँ-तें" करनेपर हिन्दुस्तानी कॉन्स्टेबिल पर झपट पड़ते और कॉन्स्टेबिलको पिट-पिटाकर पगड़ी सँभाले भागना पड़ता। चन्द घण्टोंके भीतर निरीह चीनियोंके भीतर ही इस उग्र आत्म-सम्मानका भाव पैदा हो जाना, एक आश्चर्यकी बात थी। वह सोच रहे थे, क्या हिन्दुस्तानी भी इसी तरह किसी दिन अपनी सदियोंकी गुलामीका तौक़ उतार फेकेंगे ?

फिलीपाइन में (१९११-१२)

उस वक्त अमेरिकाका द्वार हिन्दुस्तानियोंके लिए बन्द था। सिवाय विद्यार्थियों और यात्रियोंके कोई भारतीय उस भूमिपर उतर नहीं सकता था। पृथ्वीसिंहको पता लगा कि मनीलासे अब भी अमेरिका पहुँचा जा सकता है। लेकिन उसके लिए ४०० रु० की जरूरत है। भाई रतनसिंह चीनकी किसी जगहसे आकर गुरुद्वारामें ठहरे थे। वह मनीलाके रास्ते अमेरिका जानेवाले थे। पृथ्वीसिंहको एक देशभक्त मनस्वी तरुणके तौरपर सभी गुरुद्वारा वाले जानते थे और उनकी कदर करते थे। भाई रतनसिंहको भी यह बात मालूम हुई। उन्होंने पृथ्वीसिंहसे कहा—हम तुम्हें मनीला पहुँचा देंगे, यदि पैसा हाथमें आये तो लौटा देना।

१९११ के अन्तमें पृथ्वीसिंह भाई रतनसिंहके साथ मनीला पहुँचे। मनीलामें हिन्दुस्तानी ज्यादा न थे। १०० के करीब दरबान थे, और कुछ सिन्धी रेशमके दूकानदार शहरमें रहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी हिन्दुस्तानी थे, जो सारे टापूमें घूमकर फेरी किया करते। हिन्दुस्तानी दरबानोंकी अच्छी क़दर थी, और उन्हें वेतन भी अच्छा, ८० रु० मासिक मिलता था।

भाई रतनसिंह और पृथ्वीसिंहने दरबानी न पसन्द कर फेरी शुरू की। सरदार लालसिंह एक दूसरे भारतीयने सौदा मोल लेनेमें रुपये पैसेकी मदद की। कुछ ही महीनोंमें पृथ्वीसिंहने इतना रुपया कमा लिया कि भाई रतनसिंहका रुपया लौटा दिया।

पृथ्वीसिंह अब उस देशसे परिचित हो गये थे। अब उनका सारा ध्यान रुपया कमानेमें लगा हुआ था; जिससे कि वह अमेरिकाके लिए रवाना हो सकें।

पृथ्वीसिंह दो एक और हिन्दुस्तानी फेरीवालोंके साथ अपने व्यवसायमें जाते थे। जैसा देश वैसा भेष न होनेसे मुश्किल होती ही है। बड़ी बड़ी पगड़ी और लम्बी-वम्बी दाढ़ी देखकर लड़कोंको शरा-

रत सूझती। एक दिन उन्होंने पत्थर मारना तथा गाली देना शुरू किया। पुलिसके सिपाहीसे कहने पर वह भी लड़कोंके साथ शामिल हो गया। चंद ही मिनटों बाद दो तीन और कान्सटेबिल आये और वे भी उन्हींके साथ मिलकर गाली गलौज करने लगे। साथी ठंढे पड़ गये। उन्होंने जमाना देखा था और आत्म-सम्मानकी गहरी नहीं छानी थी। लेकिन पृथ्वीसिंह अपनेको काबूमें नही रख सके। उन्होंने भी दोकी चार सुनानी शुरू की। कान्सटेबिल इसे क्यों बर्दाश्त करने लगे, वे मार पर उतर आये। लेकिन पृथ्वीसिंह २० सालके पंजाबी पट्ठे थे, उनके सामने उनकी कोई पेश न आयी और मार-पीटमें दोको चोट आयी। थानेमें खबर पहुँचने पर पुलिसकी टोली पहुँच गयी और पृथ्वीसिंहको पकड़कर हवालातमें बंद कर दिया गया। पुलिसवाले पहले तो जोशमें थे, लेकिन अब समझने लगे कि गलती उनकी ओरसे हुई है। चोट भी ज्यादा नहीं थी। कस्बेके प्रेसीडेण्टका लड़का मनीलाके किसी कॉलेजका विद्यार्थी था, उसने बीच बचाव करना चाहा, और पृथ्वीसिंहको सलाह दी कि माफी माँग लो, लेकिन वे इसके लिए तैयार न थे। गिरफ्तारीकी खबर जब मनीलाके राजदूत भाई चौधरी बरकतअलीको मिली, तो वह शहरके एक वकीलको लेकर वहाँ पहुँचे। पुलिसवाले घबड़ा गये। उन्होंने माफी माँगी और पृथ्वी-सिंह हवालातसे बाहर चले आये।

———

अध्याय ३

अमेरिकामें (१९१२-१४)

सरदार लालसिंह फेरीके सौदेके लिए पृथ्वीसिंहकी मदद किया करते थे। ईमानदार साहसीके सभी जगह दोस्त पैदा हो जाते हैं। उनका तरुण पर बहुत विश्वास था। उन्होंने देखा कि पृथ्वीसिंहको यात्राके लिए पर्याप्त रुपया जमा करनेमें बहुत देर लगेगी। उन्होंने टिकटके लिए १५० डालर (५०० रुपये) दिये। एक दूसरे दोस्तने अच्छी पोशाक प्रदान की और तीसरे दोस्तने भी ५० डालर दिये, जिन्हें अमेरिकामें उतरने पर अधिकारियोंको दिखाना पड़ता।

अमेरिकाको (१९१२)

३५००० टनका एक बड़ा जहाज अमेरिका जा रहा था। इसी पर पृथ्वीसिंह और उनके ५० हिन्दुस्तानी (ज्यादातर पंजाबी) साथी सवार हुए। कपड़े-लत्ते रोब-दाबमें पृथ्वीसिंह ज्यादा भद्र मालूम पड़ते थे। लोगोंने इन्हींको अपना मुखिया चुना। जहाज ४० दिनमें प्रशान्त महासागरको चीर कर सियेटल (ओरगन रियासत) के बंदर पर लगा। जाड़ोंका दिन था, जहाजकी यात्रा अच्छी तरहसे कटी। सबके स्वास्थ्यमें उन्नति हुई। बंदरगाहमें पहुँचने पर अधिकारियोंने पृथ्वीसिंहको भारतीय मुसाफिरोंके लिए दुभाषिया बनाया। उनके सभी साथी सीधे-सादे किसान थे। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि अधिकारियोंके सवालका क्या जवाब दिया जाय। पृथ्वीसिंह अमेरिकनके सवालका अनुवाद करके बतलाते, तो वे सब पृथ्वीसिंहसे कह उठते—"मैनूकी पता, तू ही दस दे" (अर्थात् मुझको क्या मालूम, तू ही बतला दे) सभीको उतरनेकी इजाजत मिल गयी।

अब पृथ्वीसिंहकी बारी आयी। अफसरने पूछा—"तुम किसलिए आये हो ?" पृथ्वीसिंहने जरा भी रुके बिना साफ शब्दोंमें कह डाला—"मैं आया हूँ तुमसे यह सीखने कि कैसे हम अपने देशको आजाद कर सकते हैं ?" अफसर पृथ्वीसिंहके मुँहकी ओर ताकता रहा। पूरे ५ मिनट तक न वह एक शब्द बोला न उसने एक अक्षर कागजपर लिखा। पृथ्वीसिंहने समझा कि सर्वनाश हो गया। इसी वक्त अफसर कुर्सीसे खड़ा हो गया और मुस्कराते हुए हाथ मिला पीठ ठोकते हुए बोला—"जाओ।"

अमेरिकामें मजदूर

अमेरिकाकी स्वतन्त्र भूमिमें पहली बार पैर रखने पर दिलमें क्या-क्या भाव पैदा हो रहे थे। हाँगकाँगमें आजका दिन आना असम्भव मालूम देता था ! छदामोंके लिए मोहताज तरुणके दिलमें एक दृढ़ संकल्प ही ऐसा था जिसने उसे यहाँ तक पहुँचाया। पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंने पहले होटलमें जा खूब पेट भरकर भोजन किया, और फिर घूम-घूम कर नयी दुनियाके नये शहरको आँख भरके देखा। हाँगकाँग और फिलीपाइन तक अभी एशियाई चेहरे ही ज्यादा दिखाई पड़े थे, और यहाँ सभी गोरे ही गोरे। कौतूहलमें सारी रात शहरकी सैरमें ही बिता दी।

साथियोंके कितने ही सम्बंधी और मित्र अमेरिकाके इस पश्चिम तटपर पहलेसे मौजूद थे। दूसरे लोगोंके साथ पृथ्वीसिंह भी केलीफोर्नियामें स्टाक्टनके लिए रवाना हो गये। हिंदुस्तानी मजदूर ज्यादातर वहाँ खेतोंमें काम करते थे। इस वक्त आलूकी फसल तैयार थी। आठ घंटेके कामके लिए दो डालर (प्रायः सात रुपया) रोजाना मजदूरी बड़ी चीज थी। पृथ्वीसिंहका शरीर खूब मजबूत और स्वस्थ था। मगर यहाँ खेतमें लगातार फावड़ा चलाने और लादनेका काम था। दिनोंतक पंजाब और बर्मा याद आते रहे, मगर अभ्यास आदमीको सब कुछ बना देता है। परिश्रम न करने पर सोने-सी

दीखनेवाली काया भी वस्तुतः मिट्टी है। एक पखवाड़ेके बाद अब शरीर मेहनतके बिल्कुल अनुकूल हो गया, और दूसरे साथियोंके साथ वह भी अपने काममें प्रसन्नतापूर्वक लग गये। शायद सात आनेकी मजदूरी होती तो उसमें कभी मन न लगता, सात रुपयेकी मजदूरी थी। जानते थे, कि आठ घण्टेके बाद उनके पास सात रुपये और उनके उपभोगके लिए अपना समय रहेगा। दूसरे हिन्दुस्थानी मजदूर हट्टे-कट्टे सिक्ख थे। पृथ्वीसिंहका समय अच्छी तरह कटने लगा। कुछ ही समयमें उन्होंने कर्जका रुपया फिलीपाईन भेज दिया, और छै सौ रुपये पिताके पास भेजनेमें भी सफल हुए।

हिन्दुस्तानी समाज और पश्चिमी समाजमें कितनी ही बातोंका अन्तर है। हिन्दुस्तानका समाज जिन सैकड़ों रूढ़ियोंसे बँधा हुआ है, पश्चिमी समाजमें उनमेंसे बहुतोंका अभाव है। बँधा हुआ प्राणी जैसे खुलते ही बेतहाशा दौड़नेमें आनंद अनुभव करता है, वही हालत महीनेकी कमाई एक दिनमें कमानेवाले हिन्दुस्तानी मजदूरकी होती! ऊपरसे पश्चिमी बाजारोंमें ठगों, लुच्चे-लफंगोंकी कमी नहीं है! पृथ्वीसिंहने अपने साथियोंकी गत बनते देखी थी। वह अपनेको उस अवस्थामें नहीं जाने देना चाहते थे, आत्म-सम्मानके साथ-साथ उनमें राष्ट्रीय भावना भी पैदा हो गयी थी। उन्होंने अपने लिए तीन नियम बनाये—

(१) शहर जाते वक्त फैशनवाली पोशाक न पहिनूँगा और न खरीदूँगा;

(२) खास अवस्थाओंको छोड़कर सदा मजदूरोंकी पोशाकमें रहूँगा;

(३) शराबके सैलून, थियेटर, बायस्कोप या नाच-घरमें न जाऊँगा।

पृथ्वीसिंह इन नियमोंका कड़ाईसे पालन करने लगे। लेकिन, उनके सभी साथी तो ऐसे नियमोंको नहीं मानते। छै दिन काम करनेके बाद छुट्टीका दिन—इतवार—आता और साथ ही मजदूरीके चालीस-

पचास रुपये। बे-कामका इतवार बिताना आसान काम न था, खासकर जब कि शहरमें बहुतसे प्रलोभन थे। वे शहर जाते और सैलूनमें जानेसे अपनेको रोक नहीं पाते। जेबमें डालर होने पर एक-दो ग्लाससे संतोष कहाँ होता? खूब डटकर पीते, और नशेमें लड़खड़ाते जब बाहर निकलते, तो ठग और पुलिसवाले झपट पड़ते! पृथ्वीसिंह और उनके एक-दो आदर्शवादी साथी जब उन्हें खींच कर लानेकी कोशिश करते, तो शराबियोंके थप्पड़ों और मुक्कोंको सहना पड़ता। जब उन साथियोंको होश आता, तो वे पृथ्वीसिंहकी कदर करते।

गदर पार्टीमें

अमेरिका जानेपर उन्हें बाबा सोहनसिंह और बाबा ज्वालासिंहका पता लग गया था, लेकिन पृथ्वीसिंहकी टोली दूसरी जगह काम कर रही थी। हाँगकाँगके मित्र बलवन्तसिंह भी अमेरिका पहुँच चुके थे। उनसे मुलाकात हुई, फिर राजनीतिक चर्चा चली। "गदर" अखबार निकलने लगा था। पृथ्वीसिंह उसे नियमपूर्वक पढ़ने ही नहीं लगे, बल्कि वह हिन्दुस्तानी मजदूरोंमें आजादीके खयालको फैलाने लगे।

आखिरी समय, पृथ्वीसिंह और उनकी टोली चुकन्दरके खेतोंमें काम कर रही थी। यह जगह शहरसे दूर थी, इसलिए मजदूर हर रविवारको शहर न जा सकते थे। जब जाते तो फिर वही बात। एक दिन आधी रातका वक्त था, जब कि कुछ गुण्डोंने एक नौजवान हिन्दुस्तानीसे छेड़-छाड़ शुरू की। पृथ्वीसिंह और बलवन्तसिंह इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने मना किया, लेकिन बेकार। अमेरिकामें पिस्तौल रखनेकी कोई रुकावट नहीं है। दोनों साथी बराबर जेबमें पिस्तौल रक्खा करते थे। उन्होंने भरी पिस्तौलको निकालकर बद-माशोंकी ओर किया, देखते ही गुण्डे ठण्डे पड़ गये। अब पृथ्वीसिंहको इस जीवन-चर्यासे घृणा हो गयी। हरनामसिंह और वह, दोनों इस

खयालसे लॉसएंजेलस चले गये, कि वहाँ छोटे-छोटे किसानोंके यहाँ मजदूरी करेंगे।

हिन्दुस्तानी मजदूर अमेरिका गये थे सिर्फ मजदूरीके लिए। पंजाबी मजदूर कलकत्तेसे रंगूनमें ज्यादा मजदूरी सुनकर वहाँके लिए चल पड़ते। जब उन्हें पता लगता कि पिनाङ्ग और सिंगापूरमें मजदूरी और भी ज्यादा है, तो वे वहाँ पहुँच जाते। वह अच्छी मजदूरीकी तलाशमें हांगकांग और शंघाई और अन्तमें अमेरिका पहुँचे। अमेरिकामें मजदूरी भी अच्छी मिलती, खाते-पीते भी अच्छी तरह, और घर भी हजारों रुपया भेजते। यह देखकर दूसरे मजदूर भी खेत बेंच, कर्ज ले सारी रुकावटोंको पार करते अमेरिका पहुँचने लगे। अमेरिकाके स्वतन्त्र वायुमण्डलमें रहते-रहते कुछ ही समयमें उन्हें मालूम होने लगता, कि हम गुलाम हैं; हमें पैसा मिलता है मगर सम्मान नहीं मिलता। इन बातोंका अब उनपर असर पड़ने लगा। बाबा सोहनसिंह अधिक संस्कृत तथा शिक्षित थे। उन्होंने अपने घरमें काफी सुखी जीवन बिताया था। बाबा ज्वालासिंह और बाबा विसाखासिंह मजदूरीसे पैसे बचाकर अपनी अच्छी खेती खड़ी कर चुके थे। उन्हें भी "सबसे अधिक जाति अपमाना" अखरने लगा। इस तरह ये लोग थे, जिन्होंने पहले-पहल देशकी परतन्त्रताका अनुभव किया। लेकिन दूसरे हिन्दुस्तानी मजदूर भी अछूते नहीं रह सकते थे। यद्यपि केलिफोर्नियामें वे अलग-अलगसे रहते थे, तो भी उन्हें खेतों या कारखानोंमें काम करते वक्त अमेरिकन मजदूरोंके सम्पर्कमें आनेका मौका मिलता। देखते वे सफेद मजदूरोंसे किसी बातमें कम नही हैं, फिर उन्हें क्यों नीची निगाहसे देखा जाता है। यह जाननेमें उन्हें देरी नहीं लगी कि यह हिन्दुस्तानकी गुलामी है, जिसकी छाया अमेरिका तक उनका पीछा नहीं छोड़ती। फिर वे सोचते क्यों मुट्ठीभर गोरोंने हमारे मुल्कको गुलाम कर रक्खा है, हम किस बातमें उनसे कम हैं? हमारे लिए यह लज्जाकी बात है। फिर वे स्वतन्त्र भारतका स्वप्न देखने लगते और

सोचते,—सात रुपये रोजकी मजदूरीसे बढ़कर कोई और चीज भी है, वह है देशका आत्म-सम्मान ! उसे तभी पाया जा सकता है, जब कि हम अपने देशको स्वतन्त्र करनेमें सफल हों।

बाबा ज्वालासिंहने केलीफोर्नियाके मजदूरोंमें राष्ट्रीय जाग्रति पैदा करनेमें बहुत काम किया। जात-पाँत और धर्मका खयाल किये बिना उन्होंने बहुतसे हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोको इस मतलबसे बुलाया कि उनमें क्रान्तिकारी भावना पैदा करनेका अवसर मिले। वह अपनी सारी कमाई हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों और मजदूरोंमें जाग्रति पैदा करनेमें खर्च करने लगे। जिस वक्त कनाडामें भारतीय मजदूर अपने प्रति होते बर्तावको देखकर असन्तोष प्रकट करने लगे थे, जिस वक्त संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकामें नयी जाग्रति फैल रही थी, उसी समय वहाँ लाला हरदयाल पहुँचे। तुर्की, ईरान और चीनमें एक नयी जाग्रति दिखलाई पड़ रही थी। हिन्दुस्तानको पीछे नहीं रहना है, यह बात लाला हरदयाल जैसे भारतीय क्रान्तिकारी समझने लगे थे। अब प्रारम्भिक कार्य उस अवस्थामें पहुँच चुका था, जबकि एक संगठनकी जरूरत थी। प्रमुख भारतीयोंने एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें बाबा ज्वालासिंह, बाबा सोहनसिंह, ऊधमसिंह, तरुणोंका लाड़ला तरुण कर्तारसिंह, पण्डित जगतराम, आदि सम्मिलित हुए। यहींपर हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी संगठन—गदर पार्टी—की नींव पड़ी। भारतमें और भारतके बाहरके भारतीयोंके अन्दर क्रान्तिकारी विचारोंका प्रचार करनेके लिए "गदर" पत्र निकालना भी तै हुआ। सम्मेलनकी खबर पाते ही लोगोंने दिल खोलकर रुपया देना शुरू किया, और आत्मसम्मान तथा देशाभिमानका भाव और तेजीसे बढ़ने लगा। कनाडा या अमेरिकामें इससे पहले यदि कोई गोरा आदमी कह उटता "ओह ! कलकत्ता, बम्बई, कराची, मद्रास, दिल्ली" तो हिन्दुस्तानी फूले न समाते और कहते "ओह ! ये तो साडा साहेब हैं' (यह तो हमारा साहब है) और वह उससे हाथ मिलाये सैलूनमें शराबकी दावत

देने चले जाते। लेकिन "गदर" पत्रके प्रचारके साथ ही हिन्दुस्तानियों के भाव बदल गये। अब कोई गोरा "कलकत्ता, बम्बई" कहता, तो हट्टे-कट्टे पंजाबी उसे सैलूनमें ले जाते, जरासी पिलाकर झगड़ेका बहाना ढूँढ़ लेते, फिर खूब पीटते। चन्द ही हफ्तों बाद शहरकी सड़कों पर "कलकत्ता, बम्बई" कहनेवाले गोरोंका कहीं पता न रहा।

"गदर" के छापनेके लिए सेन्फ्रसिस्कोमें एक प्रेस कायम किया गया। एक दर्जन उत्साही और स्वार्थ-त्यागी तरुणोंने उसके लिए अपना जीवन दिया। लाला हरदयाल पत्रके मुखिया थे। "गदर" की गूँज स्कॉटलैण्ड यार्ड (अँग्रेजी खुफिया विभाग) और अमेरिकाके ब्रिटिश दूतावासतक पहुँची। वह इसे बर्दाश्त करनेके लिए तैयार नहीं थे। ब्रिटिश प्रभुओंके शह देने पर लाला हरदयाल पकड़ लिये गये, और बड़ी मुश्किलसे जमानतपर छुड़ाकर उन्हें यूरोप भेज दिया गया। "गदर" के लिए यह बड़ा धक्का था, लेकिन तरुणोंने उसे सँभाला। गदर पार्टीके प्रेसीडेण्ट बाबा सोहनसिंह प्रचारके लिए एक बार पृथ्वीसिंहके इलाकेमें भी आये। पृथ्वीसिंहने इस प्रकारकी यह पहली बड़ी सभा देखी।

लाला हरदयालकी गिरफ्तारीके साथ यह भी मालूम हुआ कि शायद सभी पकड़ लिये जाएँ, इसलिए दूसरोंको भी उनका स्थान लेनेके लिए तैयार रहना चाहिये। पृथ्वीसिंह खबर पाते ही तैयार हो गये और दूसरे दिन वह लॉस्एँजिल्ससे सेन्फ्रासिस्कोके लिए रवाना हो गये। उन्होंने प्रेस घुमानेका काम सीख लिया। उन्हें बड़ी खुशी हुई, जब देखा की मनीलामें सहायता करनेवाले उनके दोस्त, भाई रतनसिंह वहीं प्रेसमें काम कर रहे हैं। गदर-पार्टीका विचार पहले-पहल हिन्दुस्थानी मजूरों—विशेषकर सिक्खोंमें आया था, उन्होंने ही अपने दिलका खून देकर इस पौदेको सींचा। वे देशभक्ति और उत्साहमें लासानी थे। लेकिन उन्हें अभी तजर्बा बहुत कम था, राजनीतिक शिक्षाके अभावके कारण वे अपने शत्रुओंके दावपेंचको अच्छी तरह

समझ न पाते थे। इन कारणोंसे स्काटलैण्ड यार्ड (अंग्रेजी खुफिया विभाग) अपने ऐजन्टोंको उनके संघटनके भीतर भेजनेमें सफल हुआ। रामचन्द्र, उन्हींमेंसे एक था। मजूर उसकी लम्बी-लम्बी बातोंको सुनकर समझने लगे कि यह क्रान्तिका अवतार है।

यदि गदर पार्टीके पास अपने अनुभवी क्रान्तिकारी होते तो अवस्था दूसरी होती। उन्हें यह भी पता नहीं था कि हिन्दुस्तानके रंग-मंचपर क्या-क्या चालें चली जा रही हैं। पृथ्वीसिंह जैसे कितनों ही ने सन् '५७ के "भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध" (सावरकरकी पुस्तक) को पढ़ा था। उसने पढ़नेवालोंके दिलमें जोश भर दिया। कुछ लोग लेख या कविता भी लिख सकते थे, लेकिन राजनीतिक शिक्षाकी कमीके कारण वे यह सोच समझ नहीं पाते थे कि इतने संगठित और शक्तिशाली राज्यके विरुद्ध किस तरहसे सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। पृथ्वीसिंहने गदरके वीरोंके आत्म-त्यागके बारेमें पढ़ा था। उन्होंने हांगकांगमें राजपूत सिपाहियोंको नजदीकसे देखा था। वे सोचते थे कि एक बार हिन्दुस्तान पहुँच जाना चाहिये, फिर तो जहाँ राजपूत सिपाहियोंसे मैंने कहा, "भाइयो ! मातृ-भूमिके नामपर एक राजपूत तुमसे प्रार्थना करता है, उठ खड़े हो, ब्रिटिश शासनको चकनाचूर करो और उसकी जगह अपनी हुकूमत कायम करो।" बस इतने हीसे वारा-न्यारा हो जायगा। उनके दूसरे साथी भी इसी तरह विचारते थे।

"गदर" में बहुत जोशीले लेख और कविताएँ छपती थीं। अमेरिकाके भारतीय मजूरोंने उससे बहुत कुछ सीखा-समझा। लेकिन पत्रने उनकी राजनीतिक शिक्षा या संघटनकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे यह तो जरूर समझते थे कि हम अपने शक्तिशाली शत्रुका शक्तिशाली हथियारों द्वारा ही मुकाबला कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने आधुनिक युद्धके हथियारोंकी शिक्षाकी ओर ध्यान दिया। करतारसिंहने विमान-संचालनमें दक्षता प्राप्त की। दूसरे कितनों हीने सैनिक विद्या

सीखी। पृथ्वीसिंहका ध्यान ऐसी शिक्षाकी ओर नहीं था। उन्होंने सोचा कि हिन्दुस्तानमें सीखे-सिखाये सैनिक तो पहले हीसे बहुत हैं।

सम्भव है यदि गदर पार्टीको दो वर्ष नहीं, और कितनेही वर्षोंका तजर्बा होता, तो वह अपनी गलतियोंसे बहुत कुछ सीखती। मगर इसी बीचमें "कोमागातामारू" की घटना घटी और १९१४–१५ का महायुद्ध छिड़ गया। दुधमुँही गदर पार्टीको सर्वस्वकी बाजी लगाकर मैदानमें कूदना पड़ा।

कोमागातामारूकी घटना (सन् १९१४)

मजदूरीकी तलाशमें उत्तरप्रदेश और बिहारके लाखों स्त्री-पुरुष अफ्रीका, फिजी, मार्सेस, ट्रिनीडाड और गायना तक पहुँचे, मगर स्वतन्त्र मजदूरोंके तौरपर नहीं। वे शर्त-बन्द कुली या अर्द्ध-दास थे और उन्हें बहुत बुरी परिस्थितियोंसे गुजरना पड़ा। लेकिन १९१० ई० से पहले ही हजारों पंजाबी जो कनाडामें बस गये थे, वे कुली बनकर नहीं गये थे। वे थे खेतों, जंगलों, कारखानों और खानोंमें काम करने-वाले स्वतन्त्र मजदूर। कनाडावालोंको हिन्दुस्तानी मजदूरोंकी बाढ़से भय लगने लगा; कम मजदूरीपर काम करनेके लिए तैयार हो जानेके कारण दूसरे मजदूर भी उनसे घृणा करने लगे। कनाडाकी सरकारने ऐसा कानून बनाना चाहा, जिसमें कि पहलेसे बस गये हिन्दुस्तानियों को भी कनाडासे निकाल दिया जाय। कनाडा, अमेरिका और हिन्दु-स्तानमें जबरदस्त आन्दोलन हुआ, जिससे वह कानून नहीं बन सका।

कनाडामें बस गये हिन्दुस्तानी अपने परिवारोंको बुलाना चाहते थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार और भारतीय सरकारके पास डेपुटेशन भेजे। कानाडाकी सरकारने प्रार्थना नहीं सुनी। बहाना यह किया कि हिन्दुस्तानसे कनाडाके लिए कोई सीधा जहाज नहीं आता। यदि आता तो हम परिवारको ही नहीं नये मजदूरोंको भी आने देते।

कनाडियन सरकारने समझा था "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी।" लेकिन बाबा गुरुदत्तसिंहने शर्तको पूरा करके दिखाना चाहा।

उस समय वे सिंगापुरमें एक अच्छे ठेकेदार थे। उन्होंने "कोमागातामारू" नामक जापानी जहाजको ठेके पर लिया। कलकत्तामें चार सौ पंजाबी बंकोवर जानेके लिए चढ़े। एक दिन "कोमागातामारू" कनाडाके तटपर पहुँचा। कनाडियन सरकारने मुँहसे चाहे कुछ भी कहा हो पर इस दिनके लिए वह तैयार न थी। उसने साम-दाम-दण्ड-भेद सभी हथियारोंका प्रयोग किया और चाहा कि "कोमागातामारू" लौट जाय। लेकिन, बाबा गुरुदत्तसिह और उनके साथी कच्ची मिट्टीके पुतले नहीं थे, वे समझते थे कि यह देशकी आन और सम्मानका प्रश्न है। कनाडियन सरकारने जहाज़का सम्पर्क तुड़वा दिया—न बाहरका कोई आदमी उसपर जाने पाता, न उसका कोई आदमी बाहर। धीरे-धीरे जहाज़की खाद्य-सामग्री और मीठा पानी भी खतम हो चुका। पुलिसने नेताओंको गिरफ़्तार करनेकी कोशिश की, लेकिन वहाँ चार सौ आदमी जान देने पर तुले हुए थे। कनाडियन सरकारने युद्धपोतके बलपर "कोमागातामारू" को जबरदस्ती निकालना चाहा। जब इसकी खबर कनाडाके भारतीयोंको लगी तो यह उनके बर्दाश्त करनेकी बात नहीं थी। कनाडियन मजदूरोंने भी हिन्दुस्तानियोंकी वीरताकी झलक देखी। वे भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। हजारों गोरे मजदूर हिन्दुस्तानियोंके साथ मिल गये। सबने मिलकर कनाडियन सरकारके पास चेतावनी भेजी—यदि जहाजके विरुद्ध हथियार इस्तेमाल किये गये, तो हम सारे बँकोवर शहरमें आग लगा देंगे। पाँच हजार हिन्दुस्तानी मजदूरोंने देशकी इज्जत बचानेके लिए प्राण देनेकी ठान ली।

सरकारने हथियार तो नहीं इस्तेमाल किये, लेकिन "कोमागातामारू" के आदमियोंको कनाडामें उतरने नहीं दिया। "कोमागातामारू" को आखिर हिंदुस्तान लौटना पड़ा।

इस घटनाका प्रभाव बहुत दूरतक पड़ा। जब अमेरिकाके हिन्दुस्तानियोंको पता लगा, तो उनकी आँखोंमें खून उतर आया। "गदर" के विशेषांकमें जब खबर छप रही थी, तो उसे पढ़कर पृथ्वीसिंहको

मशीनपर काम करना मुश्किल हो गया। क्रोधके मारे उनका सारा शरीर काँप रहा था। मुश्किलसे उन्होंने काम खतम किया। उनके मित्र, जगतराम और दूसरे पृथ्वीसिंहको इस अवस्थामें देखकर बहुत घबड़ाये और समझाने लगे। लेकिन पृथ्वीसिंहने साफ-साफ कह दिया, अब मैं अमेरिकामें नहीं रह सकता। उन्होंने यह भी कहा कि मैं अपने कुछ विश्वसनीय साथियोंके साथ हिन्दुस्तान जाना चाहता हूँ, वहाँ अपने देशकी आन बचानेके लिए जो कुछ भी हो सकेगा, करूँगा। दोस्तोंने बहुत तरहसे समझानेकी कोशिश की, लेकिन सब फिजूल। पार्टीने एक कान्फ्रेन्स करनेका निश्चय किया और पृथ्वीसिंह हिन्दुस्तानी मजदूरोंमें घूम-घूमकर देशके अपमानका बदला लेनेके लिए लोगोंको प्रोत्साहित करने लगे। भरे पिस्तौलको जेबमें रक्खे वे गदर पार्टीका संदेश लोगोंतक पहुँचानेमें सफल हुए। कितने ही मजदूरोंने रुपये पैसेसे सहायता की, और कितने ही युद्ध-क्षेत्रमें चलनेके लिए तैयार हो गये। उन्हें यह ख्याल भी नहीं आया कि आठ-नौ रुपये रोजकी मजदूरी छोड़कर वे कहाँ जा रहे हैं। अन्तमें सेकरामेण्टोमें कान्फ्रेन्स हुई। बाबा केशरसिंह जिन छब्बीस नौजवानोंके साथ शामिल हुए इनमें सभी छै फुटे थे, और सभी शहादतके लिए उतावले भी। हजारों लोग इस कान्फ्रेन्समें सम्मिलित हुए और उन्होंने खुल्लमखुल्ला, इंगलैण्डके राजा और भारत सम्राट के खिलाफ युद्ध घोषित किया। इस कान्फ्रेन्स में हजारों अमेरिकन मजदूर भी आये थे, जिनमें कितने ही भारतकी आजादीके प्रति सहानुभूति रखते थे और कुछ सिर्फ तमाशा देखने आये थे। अंग्रेजी चर एक-एक बातको नोट कर रहे थे। उन्हें मालूम हो गया कि कौन-कौन लड़नेके लिए हिन्दुस्तान जा रहे हैं। कान्फ्रेन्सके लोगोंमें बहुत जोश था, और उतना ही ज्यादा आत्मविश्वास। खूब गरम-गरम व्याख्यान हुए और हिन्दुस्तानकी जनतासे अपील की गयी कि वह राजा-सम्राटके शासनको उलट दे। जिस शासनमें हमें इतना अपमान सहना पड़े, उसे रहने देना पाप है।

अध्याय ४

असफल संग्राम

भारतके रास्तेमें

कान्फ्रेन्समें एक हजार आदमियोंने स्वतन्त्रताका सैनिक बननेके लिए अपनेको पेश किया। एक सौ आदमी हिन्दुस्तान जानेके लिए तैयार हुए। सबके पास अच्छी-अच्छी पिस्तौलें, रिवाल्वर और काफी गोली बारूद थी। इन सौ आदमियोंने महाबली अंग्रेज सरकारके साथ लड़नेका बीड़ा उठाया था। अब वे युद्ध-क्षेत्रके लिए रवाना हुए। इसे खुदकुशी कहा जा सकता था। शायद ही ऐसे पागलपनके कार्यके लिए लोगोंने इतिहासमें कभी कोशिश की हो। उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि उनके साथ कितने ही सरकारी भेदिया चल रहे हैं। ५ अगस्त, १९१४ को लोग जहाजपर चढ़े। लोगोंने वहाँ अपनी युद्ध-समिति चुनी। समितिने जवाबदेह आदमियोंको काम करनेके तरीके और भिन्न-भिन्न इलाकोंपर नियन्त्रण रखनेकी शिक्षा देनी शुरू की। पृथ्वीसिंहको भी कितनी ही बार व्याख्यान देना पड़ता था। उन्होंने एक बार कहा :

> "हम स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़ने हिन्दुस्तान जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि स्वतन्त्रता हमें मिलेगी या नहीं, लेकिन एक बात निश्चित है, हम भारतीय जनताको स्वतन्त्रताका पाठ पढ़ायेंगे और दिखलायेंगे कि कैसे देशकी आजादीके लिए प्राण दिये जाते हैं।"

सेनफ्रांनसिस्कोसे ही सारी दुनियामें खबर फैल गयी कि हिन्दुस्तानी क्रांतिकारियोंका एक जत्था ब्रिटिश सरकारसे लड़ने हिन्दुस्तानके लिए रवाना हो गया है। जहाज जब होनोलूलू (हवाई) पहुँचा, तो सैकड़ों

आदमी आश्चर्यभरी दृष्टिसे इन मतवालोंका तमाशा देखने आये थे। इस वक्ततक महायुद्ध पूरे जोरसे शुरू हो गया था। एक शिक्षित अमेरिकन किसीको समाचारपत्र पढ़ते हुए देखकर उसकी ओर लपका और अखबार छीन कर बोला, "अखबारोंके पढ़नेका कोई काम नहीं। हिन्दुस्तान जाओ, क्रान्ति करो, अंग्रेजोंको निकाल बाहर करो, उनका चिह्न तक वहाँ न रहने दो, हम जल्दी ही हिन्दुस्तानसे ऐसी खबर सुननेके लिए उत्सुक हैं। जब ऐसी खबर दुनियाके अखबारोंमें छपेगी तो हम उसे पढ़ेंगे और कहेंगे, शाबाश, बच्चो, खूब किया।"

पृथ्वीसिंहके साथियोंने समझा वह कोई शराबी या पागल है लेकिन पीछे उन्हें मालूम हुआ कि वह एक प्रसिद्ध पुरुष तथा द्वीपके शासनका अध्यक्ष है।

दस दिन और चलनेके बाद जहाज योकोहामा (जापान) पहुँचा। स्वतन्त्रताके सैनिक इसके लिए बहुत उत्सुक थे कि वहाँ हिन्दुस्तानियोंसे मिलकर उन्हें विद्रोहका सन्देश दें। यहींपर झाँसीवाले पण्डित परमानन्द मिले। उन्हें जब सब बातोंका पता लगा तो वह भी अमेरिका जानेका खयाल छोड़ इसी टोलीमें मिल गये। वे अच्छे वक्ता और गायक थे, अपने व्याख्यानों और गानोंसे लोगोंमें उत्साहका संचार करते थे कोबे और नागासाकी होते जहाज अब हाँगकाँगके पास पहुँच रहा था, समुद्रकी लम्बी यात्रा और ठण्डी हवाने दिमागको ठण्डा करनेमें सहायता की थी। अब वह समझने लगे थे कि हम मुट्ठी भर आदमी अंग्रेजोंके दुर्ग हाँगकाँगमें जा रहे हैं। अमेरिकन जहाज यहीं तकके लिए किया गया था। यहाँसे अब दूसरा जहाज लेना था। पृथ्वीसिंहके साथियोंने आपसमें विचार किया। हथियार लेकर उतरते ही जरूर वे गिरफ्तार कर लिये जाते; फिर हिन्दुस्तानमें नहीं, यहीं रहना पड़ता; इसलिए तै हुआ कि हथियारोंको समुद्रमें फेंक देना चाहिये। फेंकते वक्त कितनों की ही आँखोंमें आँसू थे। सभी कड़े अनुशासनको माननेवाले थे, इसलिए हाथियार फेंकनेमें देर नहीं हुई।

आगे उन्होंने हाँगकाँगकी हिन्दुस्तानी फौजसे भी बातचीत की और वह भी उनका साथ देनेके लिए तैयार थी। उस समय जिस तरह सारी सेना खींचकर फ्रान्सके मैदानमें जमा की जा रही थी, उससे बहुत कुछ सम्भव था कि वह हाँगकाँगको एक बार अपने अधिकारमें कर लेते। लेकिन, उन्हें अंग्रेजी जंगी जहाजों और दूसरे हथियारोंका ज्ञान था और वे यह भी जानते थे कि यहाँकी चीनी जनताको उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं है। जो कुछ भी हो, हाँगकाँगमें युद्ध करनेका खयाल छोड़ दिया गया।

उस वक्त जर्मन युद्ध-पोत एम्डेन् इधरके समुद्रमें तहलका मचाये हुए था। बहुत कम जहाज बन्दरगाहमें आते थे। जहाजको देखनेके लिये बहुतसे लोग किनारे पर पहुँचे थे। मुसाफिरोंको शहर जानेकी इजाजत हो गयी मगर पृथ्वीसिंहके साथियोंको नहीं। कोई अंग्रेज अफसर उन्हें देखनेके लिए भी नहीं आया। उनके बर्तावसे मालूम होता था कि इन यात्रियोंके बारेमें वे कुछ भी जानना नहीं चाहते थे। आखिर जाननेकी बातें तो वे पहलेसे ही जानते थे। लोगोंके दिलमें तरह-तरहके सन्देह उठने लगे। शायद पकड़कर जेलमें डाले जायेंगे अथवा फौजी अदालतमें फैसला करके गोली मार दी जायगी। लेकिन किसीके दिलमें जरा भी डर नहीं समाया। सभी मृत्युके आलिंगनके लिए तैयार थे। शायद उनका रंगढंग मालूम हो गया और ब्रिटिश अधिकारियोंने उन्हें शहरमें जानेकी इजाजत दी। वे उधर दस-दस पाँच-पाँचकी टोलीमें जाते। उनका मुख्य काम था पार्टीका सन्देश सभी जगह पहुँचाना। हिन्दुस्तानी सैनिक और पुलिस उनके साथ सहानुभूति रखती थी। लेकिन उन्होंने उसे प्रयोगमें लाना नहीं चाहा। कुछ दिनों तक इन्तजार करनेके बाद जापानी जहाज "तोशामारू" मिला। एम्डेनका खतरा हर वक्त सरपर था। हांगकांगसे निकलनेके बाद किसी वक्त भी उसके आ धमकनेका डर था। जहाजके दूसरे मुसाफिर भगवान्से त्राहि-त्राहि मना रहे थे। जहाज सुरक्षित तौरसे सिंगापुर पहुँच

गया। यहाँपर भी उनके सामने सिंगापुरके सिपाहियोंकी सहानुभूतिका प्रलोभन था, मगर उन्होंने हिन्दुस्तानसे पहले कुछ भी न करनेका निश्चय कर लिया। सिंगापुरके उत्साही सैनिकोंको उन्होंने यही सन्देश दिया, तैयार रहो। रास्तेमें जहाजसे अण्डमन दिखलायी पड़ा। उस वक्त उनके हृदयमें सम्मानकी भावना उमड़ आयी, जब कि खयाल आया कि कितने ही देशभक्त वीर बेड़ियोंमें जकड़े यहाँ बन्द हैं। उन्होंने खड़े-खड़े अभिवादन करते शपथ ली—"या तो इन वीरोंकी बेड़ियोंको तोड़ेंगे, या खुद बेड़ियाँ पहिने उनके पास आवेंगे।" साल भरके भीतर ही उनमेंसे कितने ही अण्डमान पहुँच गये।

जहाज रंगून पहुँचा। उस वक्त बरमा ब्रिटिश भारतका एक अंग था। यहाँ भी वे बैरकोंमें गये। सिपाहियोंसे मिलकर उनका हौसला इतना बढ़ गया कि शहरकी सड़कोंपर भी विद्रोहकी बातें करने लगे। रंगूनमें पहले पहल उन्हें पता लगा कि, "कोमागातामारू" के यात्रियों पर क्या-क्या गजब ढाये गये। बजबजमें जहाजसे उतरनेके बाद वे अपनी दुखःगाथाको जत्था बाँधकर देशके भाइयोंको सुनाने जा रहे थे, उसी समय बिना सूचना दिये उनपर गोलियाँ बरसने लगीं; बीसियोंकी जानें गयीं। बहुतोंको गिरफ्तार किया गया; कितने ही निकल भागे और जंगलोंमें जाकर छिप गये। पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंने जब इस तरहकी खबरें सुनीं तो उनके हृदयको भारी आघात लगा। उन्होंने बदला लेनेकी प्रतिज्ञा ली, लेकिन बुद्धि उन्हें बतला रही थी कि उनके भाग्यमें भी वही बदा है।

जहाज कलकत्ताके बन्दरगाहपर पहुँचा। पुलिस डाक्टरका भेस बनाकर जाँच करनेके बहाने जहाजपर सवार हो गयी। एक-एक चीजकी खूब अच्छी तरह तलाशी ली गयी। कोई हथियार नहीं मिला। पुलिस ने जिन्हें खूब मजबूत साफ-सुथरे कपड़ोंमें देखा और जो खतरनाकसे मालूम हुए, उन्हें स्पेशल ट्रेनमें पहुँचाया। ट्रेनमें पंजाबकी सी. आई. डी. काफी संख्यामें विराजमान थी। गुरखा सिपाही गारद बनकर चल

रहे थे। सी, आई. डी. वाले जाननेकी बहुत कोशिश करते रहे, लेकिन वहाँ कौन बतलानेके लिए तैयार था।

पंडित जगतराम जहाजसे उतरते ही पुलिसके हाथसे गायब हो गये थे। वे मुगलसरायमें आकर अपने साथियोंकी स्पेशल ट्रेनसे मिले। मुँड़े सिर और फटे चीथड़ोंमें वे बिलकुल दूसरे ही मालूम होते थे! सभी उन्हें देखकर हँसने लगे। उन्हें यह देखकर संतोष हुआ कि उनमेंसे एक बाहर जनताके भीतर है। गदरपार्टीके मजदूर क्रांतिकारी वस्तुतः आतंकवादपर नहीं, बल्कि भारतीय सेनाकी मददपर विश्वास रखते थे, जिसे कि अपना खून-मांस समझ वे अपनेमें मिलानेकी आशा रखते थे।

पुलिसकी हिरासतसे लापता

पंजाबकी सी. आई. डी. को सेन्फ्रान्सिस्कोसे ही बहुत सी बातोंकी सूचना मिल चुकी थी। उसके पास पूरा नाम और पता मौजूद था। लेकिन कितने ही क्रांतिकारियोंने अपने नाम और पते दूसरे ही लिखाये थे। वे स्टेशनोंसे निकल गये। पृथ्वीसिंहने भी अपना नाम और पता बदला था। लेकिन् उनका बाईस वर्षका पुष्ट और स्वस्थ शरीर और ऊपरसे साफ-सुथरा वेष ऐसा था कि पुलिसने उन्हें बाहर नहीं जाने दिया। लेकिन उनके खिलाफ कोई इलजाम नहीं था। गाड़ी रावलपिंडी स्टेशनपर पहुँची। कम्पार्टमेंटके सारे आदमी एक-एककर चले गये। लेकिन उनको इजाजत नहीं मिली। सी. आई. डी. के अफसर वर्षासे बचनेके लिए छाता लगाये खड़े थे। खिड़की खुली थी। पृथ्वीसिंहके शरीर और दिमाग दोनोंमें फुर्ती थी। एक मिनटमें ही उन्होंने अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। वे तेजीसे निकलकर प्लेटफार्मकी भीड़में मिल गये, और इधर-उधर करते सी. आई. डी. की पहुँचके बाहर हो गये। शायद सी. आई. डी. ने किसी दूसरेको पकड़कर अपनी गिनती पूरी कर ली। दूर खड़े-खड़े उन्होंने देखा कि ट्रेन स्टेशनसे रवाना हो गयी। शहरमें जाकर दूसरे कपड़े खरीद पहले उन्होंने अपना

भेष बदला, फिर स्टेशन पहुँच उन साथियोंसे मिल गये, जिन्हें ट्रेनसे जानेकी इजाजत मिली थी।

पृथ्वीसिंह उनके साथ लाहौर आये, जहाँ सबने भविष्यका प्रोग्राम तै किया। पृथ्वीसिंह राजपूत लोगोंमें विद्रोहका संदेश पहुँचानेके लिए उतावले थे। जातिके बड़े-बड़े इस कोमल तरुणकी बातोंकी क्या कदर करते? उस वक्त पृथ्वीसिंहको अफसोस होता आज यदि मेरे भी दाढ़ी-मूँछ होती। वह अक़लकी बात करते लेकिन दूसरे ध्यान नहीं देते थे, क्योंकि अभी वह कच्चे छोकरे थे।

सवा महीनेतक इस तरह छिपे रह कर वह अपना काम करते रहे। अपनी जातिके लोगोंको खींचनेमें सफलता जरूर मिली, उससे भी ज्यादा आसानीसे सफलता मिली अपने पुराने स्कूलके सहपाठियों-को समझानेमें। ये उनके पीछे चलनेके लिए तैयार थे। पुलिस बड़ी तत्परतासे पीछा कर रही थी, किन्तु विद्यार्थियोंकी चौकसी और सहा-यताके कारण वह पकड़ न सकी। अम्बाला स्टेशन और लालडू तथा स्टेशनकी ओर जानेवाली सड़क सभी जगह पुलिसकी जबरदस्त निग-रानी थी, मगर पृथ्वीसिंहको आँख बचाकर निकल जानेमें कभी दिक्कत न हुई।

एक रात सभी साथी अम्बाला शहरके पास एक खेतमें जमा हुए। सबने अपने कामकी रिपोर्ट दी और उनके जिम्मे नया काम दिया गया। तीन घण्टेकी बैठकके बाद लोग अपनी-अपनी जगह लौट गये।

दूसरी बैठक एक छोटेसे स्टेशनपर की गयी। जान पड़ता था पंजाबी गँवार कहीं जानेके लिए गाड़ीका इन्तजार कर रहे हैं। सभी लोग पैसेके अभावकी शिकायत कर रहे थे। कुछ लोगोंने महाजनों या सर-कारी खजानोंके लूटनेका प्रस्ताव किया। सरकारी खजानेके लूटनेके लिए उनके पास न साधन थे, न शक्ति। लेकिन महाजनोंके लूटनेके बारेमें काफी लोग सहमत थे। लेकिन सभी जवाबदेह नेता, खासकर बाबा निधानसिंह इसका सख्त विरोध करते रहे। बाबा निधानसिंहने इस

तरहका प्रस्ताव मुँहपर लानेके लिए भी लोगोंको खूब फटकारा। आखिरमें प्रस्ताव त्याग दिया गया। बाबा निधानसिंह साठ वर्षकी उमरमें क्रांतकारी सेनामें शामिल हुए थे। वह बहुत ही हिम्मतवाले और पाकदिल आदमी थे। सभी उन्हें बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे।

एक दिन अखबारमें पढ़ा कि पंडित जगतराम पेशावरमें गिरफ्तार हो गये। वह सीमाप्रान्तमें काम करनेके लिए भेजे गये थे। ऐसे योग्य साथीकी गिरिफ्तारी बड़ी हानिकी थी। इसके कुछ दिन बाद कुछ क्रांतिकारी तांगोंपर बैठे देहातमें एक बैठक करने जा रहे थे। रास्तेमें पुलिसकी एक टोलीने उन्हें रोक कर उतारना चाहा; इसपर झगड़ा हो उठा। यद्यपि सरकारी अफसरोंपर भी गोली चलानेकी सख़्त मनाही थी, मगर आत्म-रक्षाके लिए पार्टीने पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। सभी-के पास हथियार थे। लड़ाईमें पुलिसका एक आदमी गोली खाकर वहीं मर गया। दूसरे और सहायता लानेके लिए भाग निकले। पृथ्वीसिंहके साथियोंके लिए दूर निकल भागनेका रास्ता न था। उन्होंने झाड़ियोंमें प्रतीक्षा करते हुए पुलिससे मुकाबला करनेकी ठानी। पुलिसके आनेपर उठ कर लड़े और अन्तमें सभी पकड़ लिये गये।

इतनी अधिक संख्यामें साथियोंका पकड़ा जाना, खास करके पार्टी के तीन विशेष व्यक्तियोंका अभाव, कार्यकर्ताओंके दिमागपर बुरा असर करने लगा। उनका उत्साह ढीला पड़ गया। वे पृथ्वीसिंहको भी सलाह देने लगे कि अब कोशिश करना बेकार है। लेकिन, पथ्वीसिंह मैदान छोड़नेका ख़याल दिमागमें भी लानेके लिए तैयार नहीं थे। चाहे जो कुछ भी हो, वह अपने पथसे विचलित नहीं होंगे।

गिरफ़तारी

पार्टीकी तीसरी बैठक होनेवाली थी। पुलिस जरा-जरासे संदेहपर लोगोंको गिरफ्तार कर रही थी। अम्बाला शहर पृथ्वीसिंहके कार्यका केन्द्र था। सूचना पानेके बाद उन्होंने अपना भेष बदला और बैठककी जगह जानेके लिए तैयार हुए। पुलिस जानती थी कि पृथ्वीसिंहको कोई

राजपूत धोखा देनेके लिए तैयार नहीं है। आखिरमें अम्बालाके पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्टने सरदार लहनासिह (इक्जीक्यूटिव इन्जीनियर) को इस पापके लिए तैयार किया। सरदार लहनासिंह विद्यार्थीकालसे ही पृथ्वीसिंहनो जानते थे। पृथ्वीसिंह अपने कामके लिए जातिके बहुतसे मुखियोंसे मिलते रहते थे, लेकिन लहनासिंहपर उनका कभी भी विश्वास न था। उस दिन पृथ्वीसिंह राजपूत बोर्डिंग हाउसमें थे, किसी लड़केने उत्साहमें आ लहनासिंहसे कह दिया। लहनासिंह पृथ्वीसिंहके कमरेमें चले आये। मीठी-मीठी बातें करने लगे और कुछ दिनोंके लिए अपने गाँवमें ले जानेके लिए बहुत आग्रह करने लगे। पृथ्वीसिंहने असमर्थता प्रकट की। लहनासिंह चले गये।

यद्यपि पृथ्वीसिंह कभी आशा नहीं रखते थे कि लहनासिंह उनके उद्देश्यसे सहानुभूति दिखलाएँगे; लेकिन उन्हें यह विश्वास न था कि एक उच्च उद्देश्यमें लगे तरुणके साथ वह विश्वासघात करेंगे। लहनासिंह सीधे पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्टके पास गये। लड़के सभी स्कूल चले गये थे। बोर्डिंगमें उनके सिवा कोई नहीं था। वह बाहर जानेके लिए कोट पहिनना ही चाहते थे कि किसीने द्वारपर दस्तक दी। दर्वाजा खोला। देखा नागरिक भेषमें एक सिक्ख सज्जन खड़े हैं। आगन्तुकने घबड़ाये हुए स्वरमें पूछा—"क्या यह सिक्ख बोर्डिंग हाउस है?"

"नहीं, यह राजपूत बोर्डिंग है।"

"ओह, अफसोस, क्या आप कृपा करके सिक्ख बोर्डिंग हाऊस ढूँढ़नेमें मेरी मदद कर देंगे?"

"हाँ, जरूर मदद करूँगा। आइये बैठिये, मैं तैयार हो जाता हूँ।" आगन्तुक अब भी घबड़ाया हुआ था और उसके तौर तरीकेको देखकर अचरज होता था। लेकिन एक ही क्षणमें पृथ्वीसिंहने उसका कुछ और ही रूप देखा, उसने अपनी जेबसे रिवाल्वर निकाल कर जोरसे कहा, "मेरे साथ आओ, नहीं तो मैं गोली मार दूँगा।" वहाँ सोचनेके लिए एक मिनटका भी समय नहीं था। पृथ्वीसिंह तुरन्त रिवाल्वरकी ओर

झपटे और उसकी नलीको पकड़ लिया। आगन्तुक घोड़ेपर अँगुली रख चलानेकी अनुकूल स्थिति ढूँढ़ रहा था और पृथ्वीसिंह उसकी पीठपर जाकर उसे जमीनपर दबा देना चाहते थे। अँधेरे कोनेमें यह सब कुछ हो रहा था। पृथ्वीसिंह तै नहीं कर पाये थे कि यह पुलिसमैन है या कोई गुण्डा। यदि पुलिसका आदमी है, तो अकेले क्यों, और सादी पोशाकमें क्यों? यदि वह बदमाश है, तो किसने खबर दी कि पृथ्वीसिंहके पास रुपये हैं। पृथ्वीसिंह मददके लिए किसीको पुकार नहीं सकते थे और आगन्तुक भी चुपचाप हाथा-पाई कर रहा था। उन्होंने समझा यह जरूर कोई बदमाश है। उन्होंने निश्चय किया कि उसे दबाकर रिवालवर छीन लें, फिर कोठरीमें बन्दकर रफूचक्कर हो जायें।

यह जिन्दगी और मौतका सवाल था। आगन्तुक भी नौजवान और खूब मजबूत आदमी था। काफी संघर्षके बाद कुछ मिनिटोंमें वह पिस्तौल छीननेमें सफल हुए। उन्होंने उसे दूर फेंक दिया। इसी समय नौजवानने अपनी जेबसे छुरा निकाला और पृथ्वीसिंहके ऊपर कई चोटें कीं। उस उत्तेजनामें पीड़ाका कोई खयाल न था। पृथ्वीसिंहने कूदकर छुरेकी धारको पकड़ लिया। धार हथेलीमें काफी धँस गयी, मगर उन्होंने उसे छोड़ा नहीं। घायल शेरकी तरह पृथ्वीसिंह खूँख्वार हो उठे थे, मगर उन्होंने अपने ऊपर संयम रखा और छुरेको अलग फेंक दिया। उन्होंने उस आदमीको कई मर्तबे उठा-उठाकर दीवालसे रगड़ा। थोड़ी देरमें वह मुर्दा-सा बन गया और उन्होंने उसे छोड़ दिया। उधर वह उठक-पटकके कारण बेहोश हो गया था और इधर अधिक लहूके बहनेसे पृथ्वीसिंह भी बेहोश हो गये।

अध्याय ५

मौतका इन्तजार

पृथ्वीसिंहने जब आँख खोली तो देखा, वह खाटपर पड़े हैं और नंगी तलवार लिये चार पुलिसके सिपाही पहरा दे रहे हैं। थोड़ी दूरपर दो आदमी बैठे थे, जिनमें एक था पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट और दूसरा शहरका मजिस्ट्रेट। आँख खुली देखकर दोनोंने उनके पास आ बयान लिखानेके लिये कहा। पृथ्वीसिंह पूरे होशमें आगये थे, लेकिन घावमें दर्द नहीं मालूम होता था। उन्होंने पिछली घटनापर विचार करना शुरू किया। थोड़ी देरमें उन्हें सारी बातें साफ मालूम देने लगीं। अब वह अतीत नहीं, भविष्यके बारेमें विचारने लगे। मॅजिस्ट्रेटने अपराध और इलजामको कह सुनाया। पृथ्वीसिंहने पूछा कि रिवाल्वर लेकर हमला करनेवाला वह सिक्ख कहाँ है। जवाब मिला, "मृत्यु शय्यापर।" पृथ्वीसिंहको अच्छी तरह स्मरण था कि वे उस आदमीको मारना नहीं चाहते थे, न उन्होंने छुरे या रिवाल्वरका इस्तेमाल किया था। उन्होंने दूसरा सवाल पूछा, "वह मृत्युशय्यापर कैसे है?" उन्हें इसका उत्तर नहीं मिला। लेकिन, पीछे पता लग-गया कि वह आदमी भला-चंगा एक आराम कुर्सीपर बैठा है। मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेण्डेण्ट मृत्यु-शय्याकी बात कह कर डराना चाहते थे, जिससे पृथ्वीसिंह कुछ बातें बतलानेको तैयार हो जायें। फिर सवाल जवाब शुरू हुआ। पृथ्वीसिंह बुरी तरहसे घायल थे, लेकिन वह दबनेवाले नहीं थे। अफसरोंने लिख पढ़कर उन्हें छुट्टी दे दी।

नयी चालें

अब खूनकी कमी और दर्दका असर होने लगा। उस वक्त वहाँ कोई

उनकी सुधि लेनेवाला नहीं था। पहरेवाले सिपाहियोंके रूखे चेहरेको देखकर उन्होंने बात करना भी पसन्द नहीं किया। उसी समय एकाएक स्कूलके दिनोंके परिचित चेहरेवाला एक तरुण उनके पास आया। उनका ध्यान इधर नहीं गया कि कैसे पुलिसके पहरेके भीतर वह आ सका। उसने बड़ी सहानुभूति दिखलायी और कुछ नारंगियाँ दीं। जाते वक्त उसने सिपाहियोंसे बिनती करते हुए कहा, "मैं अपने मित्रसे मिला हूँ, सुपरिन्टेण्डेण्टको यह खबर न होने पाये।"

शहरमें तरह-तरहकी अफवाहें उड़ रही थीं। कोई बड़ा क्रान्तिकारी पकड़ा गया है और पुलिस पर जबरदस्त हमला होनेवाला है। पुलिसकी जरूरतसे ज्यादा मुस्तैदीने लोगोंमें घबराहट पैदा कर दी थी, और उस दिन समयसे पहले ही शहरकी सारी दूकानें बन्द हो गयीं।

पृथ्वीसिंहको जबरदस्त बुखार था और वह जिन्दगी और मौतके बीच लटक रहे थे।

वे ८ अक्तूबरको पकड़े गये थे। लेकिन पुलिस इतनी घबड़ायी हुई थी कि उसे उन्हें चार दिन भी अस्पतालमें रखना मुश्किल मालूम हो रहा था। १२ तारीखको रातके सन्नाटेमें वह अम्बालाके सेन्ट्रल जेलमें पहुँचा दिये गये।

कैदी अफवाहें सुनकर कह रहे थे कि क्रांतिकारियोंने शहर पर आक्रमण कर दिया है। घमासान लड़ाई हो रही है और किसी समय भी जेल पर हमला हो सकता है। पृथ्वीसिंह अपनी कोठरीमें अकेले पड़े थे। वह कराह रहे थे, मगर उनकी सुध लेनेवाला कोई नहीं था। कैदी आशा लगाये हुए थे कि क्रांतिकारी अब जेलका फाटक तोड़ने ही वाले हैं, उन्हें मुक्ति मिल जायगी। उन्हें यह पता न था कि सारी अफवाहोंका कारण वह क्रांतिकारी मरणासन्न होकर यहीं पड़ा है।

सबेरे जब जेलका दरवाजा खुला तो छः फुट लम्बा कोयलेसे भी काली डरावनी सूरतका एक भंगी भीतर आया। पृथ्वीसिंहको जेलके

बारेमें सुनी बचपनकी कथाएँ सच्ची मालूम होने लगीं। पृथ्वीसिंहको खानेकी तो बात ही क्या पीनेके लिए पानी तक नहीं दिया गया था। जेलके अधिकारी उस आदमीको देखना चाहते थे, जिसकी वजहसे सारे शहरमें खलबली मची हुई है। उनका बर्ताव अच्छा था। जेलके सुपरिन्टेण्डेन्टने—जिसे सिविल सर्जनके तौर पर अस्पतालमें पृथ्वीसिंहने क्रूरताका अवतार समझा था—पहली धारणाको गलत साबित किया। वह वस्तुतः वैसा क्रूर न था। असिस्टेन्ट सर्जन भी अधिक मृदुल स्वभावका था। उसने घावके वर्णनको पढ़नेके बाद कहा, "बच्चे, तुम बड़े खुश-किस्मत हो, तुम्हारी गर्दनके दोनों ओरकी नसोंमें जैसा गहरा घाव है, उससे बच निकलना आश्चर्यकी बात है।"

पृथ्वीसिंह अभी विचाराधीन कैदी थे। उन्हें अपने या अपने सम्बन्धियोंके द्वारा भेजे खानेका हक था लेकिन वहाँ हकको कौन पूछता था ? कोई सम्बन्धी भी उनके पास नहीं पहुँच सकता था। शायद अधिकारियोंने इस तरहके बर्तावसे हिम्मत तोड़नी चाही थी, लेकिन परिणाम उलटा हुआ। चन्द दिनोंके बाद पुलिसने आत्माराम नामक एक आदमीको लाकर पासकी सेलमें बन्द कर दिया। रोज पुलिस उसे पीटनेका अभिनय करती और पृथ्वीसिंह उसका चिल्लाना सुनते रहते। अभिनयसे पहले पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट उस आदमीको जेलके द्वारपर खड़ा होकर बुरी-बुरी गालियाँ देता और धमकाकर कहता, "साले, यदि सभी बातें सच-सच नहीं बतायीं, तो गोलीसे मार दिये जाओगे सोच लो, फिर मुझे बुलाकर सारी बातें कह दो; नहीं तो पृथ्वीसिंहकी तरह किस्मतका फैसला सुननेके लिए तैयार रहो।"

जाड़ेके दिन थे। सेलके भीतर और भी ज्यादा सर्दी थी। जेलरने मेहरबानी करके पृथ्वीसिंहको चन्द मिनट धूपमें बैठनेकी इजाजत दी। गाली-मार सुनकर उनकी सहानुभूति नवागन्तुकके साथ हो गयी थी। उन्हें आश्चर्य हुआ जब देखा कि वह आदमी वही आत्माराम है। उस आदमीके पास न गरम पोशाक थी, और न बदन ढाँकनेके लिए कोई

कम्बल। वह जाड़ेके मारे काँप रहा था। भगवान और धर्मकी दोहाई देकर वह सिपाहियोंके सामने गिड़गिड़ा रहा था। लेकिन वे उसे धूपमें जाने नहीं देते थे।

कितने ही दिनोंतक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट उसी तरह आकर गंदी गालियाँ देता और पिटाईका अभिनय होता। धीरे-धीरे सिपाहियोंने दया दिखलाते हुए आत्मारामको धूपमें बैठनेकी इजाजत दे दी, फिर एक ही दुःखके दुःखी दोनोंकी आपसमें बातचीत होने लगी। तीसरे दिन आत्मारामने क्रान्तिकारियोंकी बातें करनी शुरू कीं। उसकी बातें और बढ़ती ही गयीं। उसने कहा, यदि आप किसी तरह एक रिवाल्वरका प्रबन्ध कर दें, तो मैं सुपरिण्टेण्डेण्टसे बदला ले लूँ। आत्मारामने बड़े-बड़े क्रान्तिकारियोंसे अपने सम्बन्धकी बातें शुरू कीं। एक दिन वह कह बैठा—"पण्डित जगतरामने मुझे क्रान्तिके पथपर आरूढ़ किया। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि तुम भारतीय क्रान्तिके मुखिया बनो।" पृथ्वीसिंहने पूछ दिया—कब तुमने पण्डित जगत रामको देखा ?"

"यही कोई चार महीने हुए।"

जान पड़ता है आत्मारामको अच्छी तरह पढ़ाया नहीं गया था। उसे यह भी मालूम नहीं था कि चार महीने पहले तो जगतराम अमेरिकामें थे। अभी तो उन्हें हिन्दुस्थान आये दो महीने भी नहीं बीते। पृथ्वीसिंहने रँगे गीदड़को पहचान लिया। मनमें आया कि लगायें दो-चार थप्पड़। लेकिन उन्होंने अपनेको रोक लिया। पाँचवें दिन उसने बम बनानेका नुस्खा बतलानेके लिए प्रार्थना शुरू की। पृथ्वीसिंहने कहा, "कागज पेन्सिल ले आओ, नुस्खा लिखे देता हूँ।" कागज पेन्सिल भी आ गयी। पृथ्वीसिंहने कहा, तुम मैट्रिक पास हो, गन्धक जैसी भड़कनेवाली चीजोंको तो जानते ही हो ?"

"जानता तो हूँ, मगर मिलेंगी कैसे ?"

"इसके बारेमें मैं नहीं जानता, तुम यदि सुपरिन्टेण्डेण्टको मारना चाहते हो, तो उन्हें जमा करना होगा।"

"अच्छा, मैं तदबीर करूँगा।"

पृथ्वीसिंहने कहा, "इन सभी चीजोंको इकट्ठा कर एकान्त कोठरीमें जाओ, ऐसी कोठरीमें जहाँ तुम्हें कोई देखने न पाये। एक अच्छा स्टोव और एक बड़ी कड़ाही भी ले जाना। दरवाजेको खूब बन्द कर भीतरसे ताला लगा देना। स्टोवको जलाकर ठीक करना। तब कड़ाहीको उसपर रखा देना। सभी सामग्रीको खूब मिला देना। जब कड़ाही लाल हो जाये, तो सामग्रीको उसमें डाल देना। एक बढ़िया बम तैयार हो जायेगा। उसीसे सुपरिन्टेण्डेण्टको मार देना।"

"आप तो मजाक कर रहे हैं, इस तरह तो मैं ही मर जाऊँगा।"

"दोस्त, मैं मजाक नहीं करता, मजाक तुम कर रहे हो। बिना अपनेको खतरेमें डाले तुम दूसरेको कैसे मार सकते हो?"

दिलमें गुस्सा तो बहुत आ रहा था, लेकिन और कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन आत्माराम वहाँसे लापता हो गया था। उसी दिन काहनसिंह नामका एक राजपूत तरुण बगलकी सेलमें डाल दिया गया। पृथ्वीसिंहके समय वह भी उसी स्कूलमें पढ़ता था, दोनोंमें दोस्ती थी। गिरिफ्तारीके दिन काहनसिंह भी मौजूद था। उसे भी पृथ्वीसिंहका साथी समझकर पकड़ा गया था। काहनसिंहको क्या पता था कि दोस्ती इतनी महँगी पड़ेगी। एक इज्जतदार धनी परिवारका लड़का, और अब बेड़ियोंके साथ सेलमें बन्द! पृथ्वीसिंहने उसे समझाना शुरू किया और एक ही दो दिनमें उसकी हिम्मत मजबूत हो गयी।

न्यायका ढोंग

दो हफ्तेतक पृथ्वीसिंह खुलकर हिल-डुलतक नहीं सके। जब घाव कुछ भर गया, तो मुकदमा शुरू हुआ। एक फर्स्ट-क्लास मजिस्ट्रेट जेलके भीतर ही मुकदमा करने आया। उस वक्त मालूम हुआ कि सब-इन्स्पेक्टर सिक्ख सिर्फ नजर रखनेके लिए भेजा गया था, जिसमें कि

पुलिसकी भारी टोलीके आनेसे पहले मुल्जिम भाग न जाये। लेकिन सब-इन्स्पेक्टर घबड़ा गया। पृथ्वीसिंहके ऊपर इलजाम था हत्या करनेके प्रयत्नका और काहनसिंहपर डकैतीका। कहा गया था कि जिस वक्त गुत्थम-गुत्था हो रही थी, उसी वक्त काहनसिंह बाहरसे आया और सब-इन्सपेक्टरकी जेबसे मनी-बेग लेकर चम्पत हो गया। एक प्रतिष्ठित धनी खान्दानके लड़केपर यह इलजाम, और अदालतने इसे मान लिया। एक शिक्षित तरुण राजपूत जिन्दगी और मौतकी लड़ाई लड़ते अपने दोस्तकी मदद करने नहीं, बल्कि कुछ रुपल्लियोंको छीननेके लिए आया! और गवाह? वही अकेला सब-इन्सपेक्टर। और जज? एक अंग्रेज। १९१४ में भारतकी राजनीतिक और अदालती अवस्था क्या थी, इसे यह घटना अच्छी तरह बतलाती है। सब-इन्सपेक्टरने अपने इजहारमें पृथ्वीसिंहके बारेमें कहा कि इसने मेरा रिवाल्वर छीन लिया और मुझपर गोली चलाना चाहता था, मगर घोड़ेके नीचे एक छोटा-सा टुकड़ा टीनका मैंने रख दिया था, जिससे वह मार नहीं सका। सब-इन्सपेक्टरने कानका एक टुकड़ा पेश करके बतलाया कि मुल-जिमने छुरेसे हमला किया, लेकिन सब-इन्सपेक्टर बाल-बाल बच गया। पृथ्वीसिंहको न्यायकी आशा क्या हो सकती थी?

चौधरी शादीरामको जब बेटेकी गिरफ्तारीकी खबर बरमामें मिली, तब वे दौड़े-दौड़े अम्बाला पहुँचे। मजिस्ट्रेटकी इजाजतसे कोर्टहीमें मुलाकात हुई। मुलाकातके वक्त कागज-पेन्सिल लिये हुए सी. आई. डी. का आदमी टपक पड़ा। इसपर बाप-बेटे बरमी भाषामें बात करने लगे। पृथ्वीसिंहको यह देखकर सन्तोष हुआ कि पिताके चेहरेपर न दीनता थी और न आँखोंमें आँसू, यद्यपि उनका कलेजा भीतरसे फटा जा रहा था। पैर छूनेके बाद उन्होंने कहना शुरू किया, "अच्छा हुआ होता यदि तुम बरमामें मेरे ही पास रहे होते, लेकिन भगवानकी इच्छा दूसरी ही थी। अच्छा जो उसकी मर्जी।"

पुलिसने ज्यादा बातें मालूम करनेके लिए न जाने कितने निरपराध

आदमियोंको बड़ी-बड़ी तकलीफें दीं। कितने ही राजपूत विद्यार्थियोंको गिरफ्तार कर जेलमें तरह-तरहकी साँसत दी गयी। स्कूलके अधिकारियोंको मजबूर किया गया कि वह इन लड़कोंकी हाजिरी लिखते जायँ, जिसमें पुलिसके खिलाफ कोई इल्जाम न लगाया जा सके। कितने ही सम्भ्रान्त राजपूत मुखिया भी पकड़े गये और कई दिनोंतक उनपर जुल्म होता रहा, लेकिन उन्हें मालूम ही क्या था जो बतलाते। चौधरी हंसराजके ऊपर जुल्मकी हद कर दी गयी थी। लगातार कई दिनों तक उन्हें सोने नहीं दिया गया। लेकिन एक बहादुर राजपूतकी तरह उन्होंने साफ-साफ कह दिया, "साँसत करते-करते चाहे मार डालो, मगर मैं झूठा बयान नहीं दूँगा।"

जिन विद्यार्थियोंने डरके मारे पुलिसकी सिखायी कुछ बातें कह भी दी थीं, उन्होंने भी जजके सामने पुलिसका भण्डा फोड़ दिया।

सेशन जजके तीन असेसरोंमें दो बनिये थे और एक मुसलमान राजपूत। असेसरोंसे राय पूछी गयी, तो वे बाहर जाकर आपसमें राय करके एक चिट लिखकर लाये, "मुल्जिम निरपराध हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिये।" यूरोपियन जज आग-बबूला हो गया। उसने कहा "तुम्हें अलग-अलग अपनी रायके लिये कारण लिखना पड़ेगा।" पहिले असेसरसे कहा गया तो वह मुँहसे बिना एक अक्षर निकाले खड़ा होकर काँपने लगा। दूसरा भी चुपचाप खड़ा रहा। जजने पुलिसको कमरेसे बाहर जानेके लिए कह दिया। जजने फिर असेसरोंके सामने अपनी बात दोहरायी। दो असेसर फिर बाघके सामने बछिया बनकर चुप खड़े रहे। जजने तीसरे असेसरसे पूछा, तो उसका चेहरा सुर्ख हो आया। वह अपने साथियोंके बर्तावसे बहुत क्षुब्ध था। उसने साफ-साफ कहा, "इल्जाम सिद्ध नहीं हुआ, मेरी रायमें मुल्जिम निरपराध है। आदलतको छोड़ देना चाहिये।"

जजने और सवाल नहीं किये। दूसरे असेसरोंको भी कुछ हिम्मत हुई। उनमेंसे एकने कहा, "साहब हम दो आगोंके बीचमें हैं, एक

तरफ नरककी आग है, दूसरी तरफ पुलिसकी। अगर हम निरपराध मुल्जिमके खिलाफ कहते हैं, तो मरनेके बाद नरककी यातना सहनी होगी, और यदि पुलिसके खिलाफ जानेका साहस करते हैं, तो हमारी पीठपर पुलिसका डण्डा होगा। हम पुलिसके डण्डेहीको सहना पसन्द करते हैं।"

दूसरे असेसरने भी इसी बातकी पुष्टि की। जजने उस दिन फैसला नहीं दिया। सरकारी वकील समझता था कि मुकदमा कमजोर है। उसने जजका ध्यान खींचते हुए कहा, "चाहे अपराध न भी प्रमाणित हुआ हो, किन्तु पृथ्वीसिंह रिहा होनेके काबिल नहीं है।"

जज तीन दिन तक पशोपेशमें रहा। बराबर उसपर दबाव डाला जाता रहा। आखिर मालिकोंकी मर्जीके सामने उसे झुकना पड़ा। जजने पृथ्वीसिंहको १० साल और काहनसिंहको १५ माहकी सजा दी। जनताके पास इसकी कोई खबर नहीं पहुँचने पायी। किसकी मजाल थी कि अखबारोंमें इसे छापता? यह १९१४ का भारत था।

कैदी जीवनका पहला अनुभव

पृथ्वीसिंहने पहले ही देख लिया था कि कैदियोंको कैसे २०-२० सेर गेहूँ पीसना पड़ता है, और न पीस सकने पर उनपर मार पड़ती है। उनके हाथ नरम थे। उन्होंने दर्वाजेकी छड़ोंमें रगड़-रगड़ कर २० दिनमें अपने हाथोंको खूब कड़ा कर लिया। सजा सुनकर जब वह दोपहरको लौटे, तो देखा कि २० सेर अनाज सेलके बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, जिसके साथ जेलके कपड़े भी हैं—पुराने बिना धुले कपड़े, जिन्हें आज ही सबेरे छूटे कैदीने अपने बदनसे उतारा था। कपड़ोंमें जूयें भरी हुई थीं। जब पृथ्वीसिंहने कुछ कहा, तो जवाब मिला, "बाबू नखरा छोड़ो।" जूयेंवाले कपड़े पहिननेके लिए वह तैयार नहीं थे। उन्होंने लंगोटको उठा लिया। उसमेंसे जितने जूयें निकाल सके निकाले, और धोकर पहिन लिया। बाकी कपड़े वैसे ही पड़े रहे। फिर चक्कीपर पिल पड़े और समयसे पहिले ही पीसकर रख दिया।

लेकिन वह बुरी तरह थक गये थे। जहाँ तक चक्की पीसनेका काम था, पृथ्वीसिंह उसे पूरा करते रहे। सुपरिण्टेण्डेण्टको यह पसन्द नहीं आया। सरकारका दुश्मन इस तरह बचकर निकलता जाये, यह उसे क्यों पसन्द आने लगा? पृथ्वीसिंहने एक दिन देखा कि खड़े होकर पीसी जानेवालीकी जगह बैठ कर पीसनेकी चक्की आ गयी है। दूसरे दिन जब सुपरिण्टेण्डेण्टसे उन्होंने कहा, तो उसने उत्तर दिया, "मुश्किल है? यही मैं चाहता हूँ!"

पृथ्वीसिंहने कहा—"अच्छी बात, तो तुम कभी अब इसकी शिकायत न सुनोगे!"

अमेरिकामें पृथ्वीसिंहको जब देश-प्रेम और आजादीका ख्याल आया तब वह ग़दर पार्टीमें शामिल हुए। उनके दिलमें विदेशी शासनके प्रति घृणा थी, सरकारी अफ़सरोंके प्रति नहीं। पर १९१४-२२ के ८ सालके बन्दी जीवनमें उनके साथ जो पशुवत् बर्ताव किया गया, उसने उन्हें सारी नौकरशाही-व्यवस्थाका घोर शत्रु बना दिया।

पृथ्वीसिंहको फाँसीवाले कैदियोंके साथ एक ही सेल-पाँती में रक्खा गया। वहाँ किसी दूसरे कैदीको जानेकी इजाजत नहीं थी। वह सिर्फ वार्डर और भंगीके चेहरोंको देख पाते थे। नहाना-धोना छोड़कर सेलकी कोठरीसे बाहर नहीं निकाला जाता था। खाना-पानी सीखचोंके भीतरसे दिया जाता था।

क्रांतिका सूत्रपात

जिस वक्त पृथ्वीसिंह अम्बाला जेलके भीतर बैठे-बैठे चक्की पीस रहे थे, उस वक्त उनके साथी बाहर चुप नहीं बैठे थे। पहली टोलीके बाद और बहुतसे हिन्दुस्तानी बहुतसे रास्तोंसे हिंदुस्तान लौटे थे और वे अपने काममें लग गये। विदेशसे लौटे हुए सभी क्रांतिकारी गाँवोंके किसान थे। उनमेंसे कोई ऐसा न था, जिसके गाँव या दूर-नजदीकके सम्बन्धका कोई आदमी सरकारी सेनामें न हो। इस तरह हिंदुस्तानी फौजके साथ सम्बन्ध जोड़ना आसान था। सैनिकोंके सम्पर्कमें आनेपर

उन्हें मालूम हुआ कि वह क्रांतिकारियोंके साथ हाथ मिलानेको तैयार हैं। महायुद्ध उग्र रूप धारे हुए था। सिपाही बराबर हिंदुस्तानकी सीमा-पारकर किसी अज्ञात दिशाकी ओर भेजे जा रहे थे। देशभक्तिका भाव उनमें भरा नहीं गया था। वह विदेशी सरकारको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते थे। जब उनसे कहा गया कि मरना ही है तो क्रांतिके झंडे ही के नीचे क्यों न मरो, विदेशी झंडेके नीचे पराये देशमें मरनेसे क्या फायदा, तो उनपर बड़ा असर पड़ा। बहुतसे सिपाही क्रान्तिकारियोंके साथ सहमत हो चले। १९१४ में भारतमें अँग्रेज सिपाहियोंकी संख्या १०,००० से ज्यादा नहीं थीं। और यह संख्या हिन्दुस्तानी फौज, मध्यम वर्ग और किसानोंके सामने बहुत ज्यादा न थी। उस समय कारखानोंके मजदूरोंकी संख्या कम थी और उनमें राजनीतिक चेतना भी न थी। क्रान्तिकारियोंको संगठित मजदूर-वर्गका महत्त्व मालूम नहीं था, इसलिए उन्होंने क्रान्तिकी सफलताके लिए मजदूरोंके संगठनकी ओर ध्यान नहीं दिया। जिन क्रान्तिकारिकोंने हिन्दुस्तानी फौजको अपनी तरफ खींचनेमें सफलता पायी थी, उनमें कर्तारसिंह और पिंगलेकी चतुराई और बहादुरी अद्वितीय थी। उस वक्त भी सिपाहियोंकी बैरकोंमें बाहरी आदमियोंका जाना आसान कार्य नहीं था, लेकिन कर्तारसिंह और पिंगले सिपाहियोंमें मिल जानेमें बड़े सिद्ध-हस्त थे। उन्होंने बहुत सी छावनियोंमें मिलकर समझाया, सिपाहियोंकी भारी संख्या साथ देनेके लिए तैयार थी। विद्रोह शुरू करनेका दिन भी निश्चित हो चुका था, लेकिन अंग्रेज सरकार भी सोयी नहीं थी। वह यह भी जानती थी कि १०,००० अंग्रेज सिपाहियोंका किसी ऐसे तूफानसे मुकाबला करना आसान काम नहीं है। सरकारने इसके लिए खुफिया-विभागके विश्वासपात्र नौकरोंपर भरोसा किया। खुफिया-विभाग जानता था कि क्रान्ति करनेके उद्देश्यसे सैकड़ों आदमी विदेशोंसे आये हैं। लेकिन उनका पता लगाना आसान काम नहीं था। उन्होंने भेद जाननेके लिए अपने बहुतसे गोइन्दे छोड़े, मगर सफलता

नहीं मिली। अन्तमें वह क्रान्तिकारियोंमेंसे एकको खरीदनेमें सफल हुये। कृपालसिंह अमेरिकामें रह चुका था। वह क्रान्तिकारी आन्दोलनमें काम करनेवाले कर्मियोंके दोषोंको जानता था। खुफिया-विफागने उसे अपना बनाया। पहलेके सम्बन्धके कारण वह बड़ी जल्दी ही क्रांतिकारी नेताओंका विश्वासपात्र बन गया। क्रान्ति आरम्भ करनेकी सारी योजना बन गयी और संदेशवाहक भिन्न-भिन्न केंद्रोंके लिए छूटनेवाले थे कि कृपालसिंहको इसका पता लग गया। वह तुरन्त अपने मालिकों-के पास दौड़ गया। सरकारको २४ घण्टे पहले खबर लग गयी। उसके लिए इतना समय काफी था। सारी सरकारी मशीन फौरन चालू हो गयी। जितने भी कर्मठ क्रान्तिकारी थे, सब पकड़कर जेलमें डाल दिये गये। क्रान्तिकी लहर उठनेसे पहले ही दबा दी गयी। कितने ही सिपाही तैयारी करते पकड़े गये और उन्हें गोलीका शिकार होना पड़ा; लेकिन किसीने उन्हें कभी याद नहीं किया और न उनके लिए कभी आँसूकी एक बूँद ही गिरायी गयी।

सुपरिण्टेण्डेण्ट-पुलिसको जैसे ही खबर मिली वह बहुत तड़के ही पृथ्वीसिंहकी सेलमें पहुँचा। उसने कहा; "पृथ्वीसिंह, अब तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं। जिन साथियोंपर तुम आशा बाँधे थे, उन सबको हम हथिया चुके। अगर तुम अपनी जान बचाना चाहते हो, तो अब भी समय है।"

लेकिन पृथ्वीसिंह ऐसे कच्चे आदमी थोड़े ही थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट कितने ही दिनों तक पीछे पड़ा रहा। कभी कहता, "देखो, हम तुम्हारे-ही फायदेके लिए कहते हैं। हम एक नौजवानकी जिन्दगी बरबाद नहीं करना चाहते। आज रात सोचो, और किसी निश्चयपर पहुँचो। कल सबेरे हम फिर आएँगे।" दूसरे दिन फिर वह पहुँचा और कहने लगा, "तुम एक बहुत बड़े साहसी नौजवान हो। तुम राजपूत हो। तुम्हारे खान्दानमें सैनिक भाव चला आया है। हम सेनामें तुमको एक अच्छा दर्जा देनेका वचन देते हैं। तुम क्यों नहीं तैयार होते?"

पृथ्वीसिंहने बड़ी शान्तिके साथ कहा, "मैं तैयार हूँ। युद्ध-क्षेत्रमें अपनी राजपूती बहादुरी दिखलानेके लिए बहुत उत्सुक हूँ। मैं एक तेज निशानेबाज हूँ, और उसमें अपनी दक्षता दिखला सकता हूँ। मैं तैयार हूँ, आप मुझे मोर्चेपर भेज दीजिये।"

अफसर बहुत चिढ़ गया। उसने जाते हुए कहा, "अच्छा, इसका फल जिन्दगी भर भोगोगे।"

लाहौर षड्यन्त्र

लाहौरमें पुलिसको जिस षड्यन्त्रका पता चला था, उसमें ८५ आदमियोंके नाम थे, लेकिन गिरफ्तार सिर्फ ६५ हो सके थे। इन ६५ मेंसे ९ सरकारी गवाह बन गये थे। अमेरिकामें पृथ्वीसिंह क्या क्या करते थे, उन्होंने यह सब बतला दिया था। बंगालकी सी० आई० डी० के सुपरिण्टेण्डेण्ट और भारत सरकारके भेदिया-विभागके सर्वोच्च अफसर पृथ्वीसिंहके पास पहुँचे। जेलरने दोनों अफसरोंसे परिचय कराया! पृथ्वीसिंहको अभी यह पता नहीं था कि गिरफ्तारियोंकी इतनी अधिक संख्या है और इतने आदमियोंने पुलिसको सारा भेद बतला दिया है। अफसर बहुत मीठी-मीठी बातें कर रहे थे। उन्होंने तरह-तरहके प्रलोभन दिये। पृथ्वीसिंहको चल-विचल न देखकर उन्होंने कहा, "अच्छा, अगर तुम बेकसूर हो, तो अपनी सारी कहानी सुनाओ। क्यों अमेरिका गये और कैसे गये? तुम वहाँ क्या करते रहे? वहाँ तुम्हारे कौन कौन सहकारी थे?" इत्यादि इत्यादि। पृथ्वीसिंहको अभी यह न मालूम था कि सरकारी गवाह उनके खिलाफ अपना बयान दे चुके हैं। उन्होंने अपनी कहानी लिखानी शुरू की। सी० आई० डी० अफसर दो घंटा नोट लेते रहे। अन्तमें जाते वक्त उन्होंने कहा, "तुमने अच्छी कुत्ते-बिल्लीकी कहानी सुनायी। हम तुम्हारे बारेमें सब कुछ जानते हैं। अब अपने बारेमें तुम खुद फैसला करो।" दूसरे दिन वह फिर पहुँचे। उन्होंने सवालोंकी झड़ी लगा दी। दोनों ही सिद्धहस्त अफसर थे, और हजारों क्रान्तिकारियोंका उन्हें तजर्बा था।

पृथ्वीसिंहने सोचा, सवालोंके जवाब देनेमें शायद वह अपने मतलबकी कोई बात निकाल लें। पृथ्वीसिंहने एक "नहीं" को अपनी ढाल बनाया। उनका जवाब होता—"मैं नहीं जानता, महाशय। मुझे नहीं याद है, महाशय। मैंने कभी नहीं देखा महाशय।" अफसर चुपचाप चले गये। पृथ्वीसिंहने सन्तोषके साथ साँस ली।

२० सेर आटा पीस डालना उस खराब चक्कीमें भी मुश्किल नहीं था। जेलकी दूसरी यातनाएँ भी सह्य थीं, लेकिन, पृथ्वीसिंह उन काइयाँ अफसरोंके सवालोंको सुननेके लिए तैयार नहीं थे। वह मना रहे थे कि वह फिर न आयें लेकिन देखा दूसरे दिन सबेरे उसी समय फिर दोनों हाजिर थे। उन्होंने कहा "हम तुम्हें आखिरी मौका देने आये हैं। कहो, जो कुछ कहना हो। अगर तुम हमारी बात मानोगे, तो हम तुम्हें अभी छुड़वा देंगे, नहीं तो जिन्दगीभर चक्की पीसनी होगी। हो सकता है, फाँसीके तख्तेपर झूलना पड़े।"

पृथ्वीसिंह पहलेसे ही जवाबके लिए तैयार थे। उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा महाशय, लेकिन मैं भाग्यमें विश्वास करता हूँ। जो भाग्यमें लिखा है, उसे कोई नहीं मिटा सकता। जिन्दगी भर चक्की चलाना बदा हो, कोई बात नहीं, अच्छी बात है। अगर किस्मतमें फाँसी बदी हो, तो उसके लिए भी मेरे पास काफी हिम्मत है। आपकी मेहरबानीके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ! अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दें।" अफसरोंने अब उनका पिण्ड छोड़ दिया।

लाहौर जेलमें

जिस वक्त पृथ्वीसिंह अम्बाला जेलमें अग्नि-परीक्षा दे रहे थे, उसी समय लाहौरमें एक भीषण नाटककी तैयारी हो रही थी। भिन्न-भिन्न जेलोंमें बन्द क्रान्तिकारी लाहौर लाये गये। १९१५ के मार्चका महीना था। पृथ्वीसिंह भी अम्बालासे लाहौर पहुँचाये गये। जिस वक्त वह ट्रेनसे लाये जा रहे थे, संयोगसे उसी ट्रेनसे उनके पिता

उन्हींके मुकदमेकी अपीलके लिए लाहौर जा रहे थे। ६० ही दिन पहले चौधरी शादीरामके सिरका एक भी बाल सफेद नहीं था; यद्यपि उनकी उम्र ५० से ऊपर थी; लेकिन अब पृथ्वीसिंहने उन्हें एक दूसरी शकलमें देखा। उनके सारे बाल सफेद हो गये थे और कमर झुक गयी थी। यद्यपि अपने २३ सालके पहलौटे पुत्रके पैरोंमें उन्होंने भारी बेड़ियाँ देखीं, लेकिन उन्होंने अपनेको सँभाला। उन्होंने राष्ट्रीयताकी बातें नहीं सुनी थीं और न शिक्षा पाने का ही अवसर पाया था, लेकिन उन्हें अपनी राजपूतीका अभिमान था। पृथ्वीसिंहको इससे बहुत सन्तोष था।

लाहौर सेन्ट्रल जेलके १४ नम्बर वार्डमें उन्हें रक्खा गया। जेलवाले उनके बारेमें और ज्यादा नहीं जानते थे। यहाँ उन्हें अमेरिकासे लौटे हुए कितने ही दूसरे साथियोंसे मिलनेका मौका मिल गया। दूसरे दिन जब वह अपने कामको पूरा करके हिसाब देने गये, तो देखा कि बाबा सोहनसिंह (भकना) अपना बिस्तर लिये सेलोंकी तरफसे आ रहे हैं। पृथ्वीसिंहने समझ लिया कि महायज्ञकी समिधाएँ इकट्ठा की जा रही हैं। बाबा सोहनसिंह जहाज पर ही पकड़ लिये गये थे। पृथ्वीसिंह पर उनका बहुत स्नेह था। उन्हें दुःख हुआ, जब सुना कि पृथ्वीसिंहको हर रोज २० सेर आटा पीसना पड़ता है। कितनी ही बार वह छिपकर पृथ्वीसिंहके पास पहुँचते और उनकी हिम्मतको दूनी करते। चन्द ही दिनोंमें सारी सेलें भर गयीं। नम्बर १४ वार्डमें सबसे खतरनाक कैदियोंको ही रक्खा जाता था। लोग समझ रहे थे, कैसा नाटक खेला जानेवाला है। लेकिन 'हम आजादीके लिए जान दे रहे हैं, इससे बढ़कर जिन्दगीकी कीमत नहीं मिल सकती' यह सोचकर सभी बड़े प्रसन्न थे। पृथ्वीसिंहकी तरह ही पण्डित जगतरामको सजा हो चुकी थी। वह भी लाहौर लाये गये। जल्दी इन दोनोंके कैदीवाले कपड़े ले लिये गये, आटा पीसना बन्द हो गया; अब वह प्रथम लाहौर षड्यन्त्र केसके अभियुक्त थे।

पृथ्वीसिंहके वकील लाला दुनीचन्द (अम्बाला) ने चौधरी शादीरामको बतला दिया कि पृथ्वीसिंह लाहौर षड्यन्त्र केसमें शामिल कर लिया गया है। वह फिर एक बार अपने पुत्रसे मिलने लाहौर जेलमें गये। पृथ्वीसिंहको पिताका धैर्य देखकर सन्तोष हुआ। उन्होंने समझाया "मेरे ऊपर जैसे संगीन जुर्म लगाये गये हैं, उनसे अब आप यही समझिये कि आपका बेटा मर चुका। मैं आपकी कोई सेवा नहीं कर पाया, इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अब यहाँ रहनेमें कोई फायदा नहीं, आप बरमा चले जाइये।"

अदालत और अभियुक्त

१८५७ के बाद यह अपने ढंगका पहला मुकदमा था, जिसमें इतने अधिक आदमी गदरके जुर्ममें फँसे थे। जेलकी एक बड़ी बैरकको एक बहुत ही बड़ा हॉल बना दिया गया था। एक ओर एक ऊँचा चौतरा या प्लेटफार्म तैयार किया गया था, जिसपर विशेष अदालत (स्पेशल ट्रिब्यूनल) के तीनों जजोंके बैठनेकी जगह थी। दाहिनी ओर सरकारी अफसरोंके बैठनेकी जगह थी, और बायीं ओर कैदियोंका कठघरा था। तीनों जजोंमें दो अंग्रेज और एक हिन्दुस्तानी (शिवनारायण समीम) थे। तीनोंकी सहायताके लिए सी. आई. डी. के बड़े-बड़े होशियार अफसर और सरकारी वकील तथा फौजदारीके एक प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर पेटनम् थे। ६५ हिन्दुस्तानी अभियुक्तोंके मुकदमेके लिए ७ वकील रखे गये थे, जिनमें एकको छोड़कर बाकी सभीने अभी-अभी काला चोगा पहिना था। कुछ तो शायद यहीं पहली बार अदालतके सामने आये थे। मार्चमें एक दिन सबेरे सभी अभियुक्तोंको उनकी सेलोंसे निकालकर हाथोंमें हथकड़ियाँ लगा दी गयीं और फिर सिपाही उन्हें अदालतकी बैरककी ओर ले चले। सभी बड़े प्रसन्न थे, क्योंकि सब एक ही साथ आखिरी घड़ी मौतका मुकाबिला करेंगे। उनके खिलाफ अभियोग था, "उन्होंने इंगलैण्डके राजा और भारतके सम्राट्के खिलाफ युद्ध करनेके लिए षड्यन्त्र किया।" अभियोग गलत था, क्योंकि उन्होंने छिपकर

कोई षड्यन्त्र नहीं किया; उन्होंने डंकेकी चोटसे घोषित किया था कि हम ऐसे शासनको कभी नहीं बर्दाश्त कर सकते, जिसमें हमारे देश-वासियोंके साथ "कोमागातामारू" वाला बर्ताव किया जा सकता है।

६५ अभियुक्तोंमें मुश्किलसे १ दर्जन ऐसे थे, जो अंग्रेजी काफी समझ सकते थे, और सिर्फ वे ही कचहरीकी कार्रवाईको समझ सकते थे। बाबा सोहनसिंह, पं० जगतराम, कर्तारसिंह, पिंगले, केदारनाथ सहगल, भाई परमानन्द और थोड़ेसे और लोग ही समझ सकते थे कि अदालतमें क्या बातचीत हो रही है और हमारे भाग्यके साथ क्या खेल खेला जा रहा है, सभीकी उसमें कोई दिलचस्पी न थी। अभियुक्त इतने उदासीन थे कि ट्रिब्यूनलके प्रेसिडेण्टको घण्टी बजाकर उनका ध्यान आकर्षित करना पड़ता। कितनी ही बार घण्टी बजाने पर भी वे ध्यान न देते थे। फिर जज झुँझला उठते, जिसपर सभी ठहाका लगाने लगते। नौ सरकारी गवाह उनके खिलाफ गवाही देनेके लिए खड़े थे; जिनमेंसे नौवाँ दो महीनेतक उनके साथ रहनेके बाद सरकारी गवाह बना था। इन ६५ आदमियोंमें कई ऐसे थे जिनका क्रान्तिकारी कामोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा था, मगर जोशमें आकर बह गये थे। कितने ऐसे थे, जिनकी सहानुभूति भर रही थी और इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं किया था। सारे कठघरेमें सिर्फ २ ही ऐसे थे, जो कि गदर पार्टीके आजन्म सदस्य थे और जिनका सारा समय उसीके लिए अर्पित था। १५ सदस्य पुलिसके हाथ नहीं आये थे। वे बहुत जवाबदेह मेम्बर थे।

१९१४ में अभी असहयोगकी हवा नहीं बही थी, इसलिए अदालतकी कार्रवाईके पूर्णतया बायकाटका सवाल नहीं था। वे मुकदमेकी कार्रवाईमें जो कुछ भी भाग लेते थे, वह सिर्फ इसी ख्यालसे कि अंग्रेज सरकार उनके अपराधको सिद्ध नहीं कर सकती। मौतकी उनको परवाह नहीं थी, परवाह थी तो यही कि हिन्दुस्तानकी शान रहे। उन्होंने सोचा कि मरना तो है ही, फिर क्रान्तिके उद्देश्य

और सन्देशको अपने सीनेमें छिपाये क्यों मरा जाय। अन्तमें यह तै हुआ कि पार्टीके ७ सदस्य खुले तौरसे सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें। पृथ्वीसिंह, यद्यपि उमरमें बहुत छोटे (२३ सालके) थे, किन्तु उन्हें गर्व हुआ कि सात नामोंमें मेरा नाम भी है। उन्हें क्या बयान देना चाहिये, यह भी तै कर लिया गया। "कोमागातामारू"के हिन्दुस्तानियोंपर जो जुल्म ढाये गये, जिससे हिन्दुस्तानियोंके दिलमें आग लग गयी, किस तरह हिन्दुस्तानी मजदूरोंको क्रान्तिकारी संघटनके लिए मजबूर होना पड़ा, और किस तरह खुल्लमखुल्ला विद्रोहका झण्डा उठाया गया—आदि बातें अपने बयानमें उन्हें देनी थीं। वह जानते थे, कि उनका बयान जेलकी बैरकके बाहर नहीं जाने दिया जायेगा, मगर प्रभुताशाली ब्रिटिश सरकारको अपनी बातें वह सुना देना चाहते थे। पत्रोंमें वही खबर जाने पाती थी, जिसे सरकारी वकील पास करता था। अभियुक्तोंके वकीलोंको भी वहाँकी कोई बात बाहर कहनेकी इजाजत नहीं थी। जनताका कोई आदमी अदालतमें नहीं आ सकता था। अभियुक्तोंके सगेसम्बन्धियोंको भी भीतर आनेकी इजाजत नहीं दी। अभियुक्तोंने लिखकर बयान अदालतमें पेश किये, उनमेंसे एक शब्द भी पत्रोंतक नहीं पहुँच सका। किस वीरताके साथ वे अंग्रेजी अदालतका सामना कर रहे हैं, इसकी सराहना करनेवाला कोई नहीं था। पृथ्वीसिंहने यह जानना चाहा कि सात शहीदोंमें उन्हें क्यों चुना गया, तो उन्हें इसके सिवा और कोई कारण नहीं मालूम हुआ कि वह एक निर्भय तरुण है। उन्होंने इसे अपना भारी सम्मान समझा।

सभी अभियुक्त एक अजब तरहका आनन्द अनुभव कर रहे थे। उनके दिलोंमें भयका नाम नहीं था। पृथ्वीसिंह बहुत खुश ही नहीं थे, बल्कि कोई भी मौका मिलनेपर अपने विरोधियोंको चिढ़ाये बिना नहीं रहते थे। जब वह अदालतके सामने अपना बयान दे रहे थे, तो एक जगह उन्होंने कहा, "लाहौरकी सड़कपर पण्डित जगतराम मिल गये और हम दोनों खूब हँसे।" कहते वक्त वह खुद हँस रहे थे और

पण्डित जगतराम भी उसमें शामिल थे। जज ऐसी ढिठाई देख झुँझलाकर बोला, "तुम क्यों हँस रहे हो?"

"अमेरिकामें हमारे साथी हमें समझाते थे कि तुम्हें हिन्दुस्तानी सी० आई० डी० से हमेशा सावधान रहना होगा, वह बहुत काइयाँ होती है, और एक नजर देखकर ही तुम्हारी सारी बातोंको जान सकती है।" फिर जगतरामकी ओर मुँह करते कहा, "पण्डितजी, देखो यह लोग कितने होशियार हैं। बेचारे सीधेसादे किसानोंको पकड़कर बंद कर दिया, और हम लोग मौजसे काम करते रहे।"

पृथ्वीसिंहकी मज़ाकिया बातोंका आनन्द उनके सभी साथी लेते थे, और किसी-किसी वक्त ठठाकर हँसते हुए ताली पीटते। जज बौखला उठता और शोर बंद करनेके लिए देरतक घण्टी बजाता रहता।

पृथ्वीसिंह और जगतराम जैसे आदमी ग़दर-आश्रममें बराबर काम करते रहे थे, और हिंदुस्तान लौटनेपर वे और तत्परतासे अपने कामोंमें लग गये थे। भारी खर्चपर रक्खी गयी जासूसी पुलिसको इनकी हवा तक न लग सकी। अम्बालामें पृथ्वीसिंह और पेशावरमें जगतरामके साथ विश्वास-घात करनेवाले दूसरे लोग थे। पुलिस इस तरह असफल हो बड़ोंके सामने मुँह कैसे दिखलाती, इसलिए उसने कितने ही सीधे-साधे लोगोंको पकड़कर ही ख़तरनाक क्रांतिकारी बना दिया। स्वयं पृथ्वीसिंह भी बादके अपने जीवनमें १६ सालतक फरार रहकर काम करते रहे, मगर सी. आई. डी. खाली बग़लें झाँकती रही।

एक दिन खुफियाके इन्सपेक्टर जनरल पृथ्वीसिंहके पास आकर बोले, "खूब, एक ही रातमें तुम क्रांतिकारी कैसे बन गये? अम्बालामें तो सभी बातोंसे तुम अपनेको अजान बताते थे।"

"जरूर बतलाता, क्योंकि वहाँ तुम मुझसे भेद लेना चाहते थे, डराधमका और प्रलोभन देकर। वहाँ कुछ भी कहना कायरता और विश्वासघात होता। यहाँ हम भय या प्रलोभनसे नहीं कुछ कह रहे हैं। हम खुलकर घोषित करते हैं, जिसमें कि हमारे देश भाई समझें कि हमें

अपने देशकी स्वतंत्रता प्रिय थी, और हमने अपनी जान् देकर उसे आजाद् करनेकी कोशिश की।"

अभियुक्तोंमें विशनसिंह पहलवान जैसे बड़े तगड़े आदमी भी थे, जिनके डील-डौल और बलको देखकर विरोधी काँप उठते। उनपर हत्या और डकैतीका इलज़ाम था, लेकिन वे इतने ख़तरनाक नहीं समझे जाते थे, जितने कि पृथ्वीसिंह। इतने दिनों जेलमें रहते हुए उन्होंने कोई कसूर नहीं किया, और न अपना पूरा काम करनेसे ही जी चुराया, तो भी उन्हें सबसे ज्यादा खतरनाक क़ैदी समझा जाता था। उनके लिए पहले ही से सेल चुन रक्खा गया था। हर रात उनकी सेल बदल दी जाती थी। हर रोज लोहेकी छड़ोंको ठोंक-ठोंककर परीक्षा होती। पहिचानके लिए सफ़ेद रंगसे भरी एक हंडिया सेलके सामने रक्खी रहती थी। इतना भी काफ़ी नहीं समझा हर दो-दो घंटे पर सिपाही आकर उन्हें खड़ा करता। फिर जोरसे चिल्लाकर खबर देता "ऑल इज वेल" (सब ठीक है) जो सुननेमें "ऑल इज हेल्" (सब नरक मालूम होता है)।

गिरफ्तारीके वक्त पृथ्वीसिंहका वजन १६० पौण्ड था, लेकिन पिछली कड़ी मेहनत और यातनाओंसे वह १३० पौण्ड रह गया। लाहोरमें साथियोंके साथ हो जानेपर उनका वजन तेजीसे बढ़ने लगा और एक महीनेमें वह १४५ पौण्ड हो गये। फाँसीकी सजा सुनते समय वह १५० पौंडतक पहुँच गये।

कितने ही महीनोंतक साखी–गवाही और जिरह–बहस चलती रही। ६५-६५ आदमियोंका मुकदमा देखना जजोंके लिए खेल नहीं था। अपना फैसला लिखनेके लिए उन्होंने किसी ठंडे पहाड़का रास्ता लिया, और अभियुक्त जिन्दगी और मौतके बीचमें लटकते दो महीने तक अलग-अलग सेलोंमें बन्द कर दिये गये। जुलाई और अगस्तकी लाहोरकी गर्मी थी, सेलोंमें हवाका पतातक न था। अदालतके लिए यह छुट्टीके दिन हो सकते थे, मगर अभियुक्तोंके लिए नरक-यातनाके

दिन थे। फैसला फाँसीका हो सकता था या आजन्म कारावासका। फाँसीकी आशा रखनेवाले सबसे ज्यादा खुश थे। पृथ्वीसिंहको भी यह समझनेका कोई कारण नहीं मालूम होता था कि उनका नाम फाँसीकी सूचीसे अलग होगा। वह उसी नावमें बैठना चाहते थे, खासकर कर्तार-सिंहसे वह अपने भाग्यको अलग नहीं रखना चाहते थे। कर्तारसिंहकी भी वही उम्र थी, पृथ्वीसिंहके लिए वह एक आदर्श पुरुष, पूर्ण पुरुष मालूम होते थे। हिम्मत तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी। सातों आदमी शपथपूर्वक अपना बयान दे रहे थे। कर्तारसिंह मौतसे दबनेवाले नहीं थे। क्रान्तिकारियोंको एक बार पैसेकी कमी थी, पार्टीकी नीतिके विरुद्ध कुछको इसके लिए डकैती करनी पड़ी, जिनमें एक खून हुआ। कर्तार-सिंहने कहा, उस डकैतीका नेता मैं था, और उस खूनकी जिम्मेदारी सिर्फ मेरे ऊपर है। उन्होंने यह भी कहा कि मैंने अपने एक निरपराध देश-भाईकी हत्या की, मैं उसके दंडसे बचना नहीं चाहता। जज कर्तार-सिंहके चेहरे, हिम्मत और सच्चाईसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। उन्होंने कहा कि कर्तारसिंह ऐसा बयान न दें, मगर कर्तारसिंह तुले हुए थे। उन्होंने फिर उसे ही दोहराया। जजोंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ उनके बयानको लिखा।

१५ सितम्बर (१९१५) को ६५ ठों अभियुक्तोंको सेलोंसे निकाला गया और अदालतने फैसला सुनाया। पृथ्वीसिंह और उनके २४ साथियों-को फाँसीकी सजा सुनायी गयी; २५ को आजन्म काला-पानी, बाकीको भिन्न-भिन्न अवधिकी सजा। जिन ५ को छोड़ दिया गया; उन्हें जेलके दरवाजेतक पहुँचते-पहुँचते दूसरे अपराधमें गिरफ्तार कर लिया गया। फाँसीकी सजा पानेवाले सबसे ज्यादा खुश थे। पण्डित जगत-रामने इस खुशीको जाहिर करते एक कविता लिखी।

१९१५ का पंजाब ओडायर शाहीके नीचे पिसा पंजाब था। किसीकी हिम्मत नहीं थी कि इस सजाके विरुद्ध कुछ लिखता या बोलता। पीछे पता लगा कि सरदार सुन्दरसिंह मजीठियाने सिक्खों-

की सभा की, और उसमें सिक्खोंसे बड़ी जोरदार अपील की कि आप-लोग सरकारसे प्रार्थना करें कि इन दुष्टोंको फाँसी चढ़ानेमें जरा भी देर न की जाये; क्योंकि इन्होंने सिक्खोंके नामको बट्टा लगाया। इस तरहकी खबरें (अफवाहें) अक्सर उड़ा करती थीं, लेकिन उसमें कितना सच है, कितना झूठ, यह कौन कह सकता। जिन २५ आद-मियोंको फाँसीकी सजा हुई थी, उनमें ३ ही ऐसे थे, जो एक सूत्रमें शामिल थे, १५ तो सीधे जहाज पर ही पकड़ लिये गये थे और सर-कारने उन्हें जेलोंमें बन्द रक्खा था। उनका अपराध यही था कि अमेरिकाके स्वतन्त्र वातावरणमें उन्होंने देशके कन्धेसे विदेशी जूए को निकाल फेंकनेका निश्चय किया था।

अध्याय ६

कालापानी

ट्रिब्यूनलके फैसलेकी अपील नहीं हो सकती थी। दूसरे ही दिन सभी फाँसी पर चढ़नेवाले थे। आखिर देरका कोई कारण नहीं मालूम होता था। जेलकी खबरोंसे मालूम होता था कि एक एक बार पाँच-पाँच आदमी तख्ते पर लटकाये जायँगे। पृथ्वीसिंहके पासके पाँच साथी बड़ी गम्भीरतासे बहस कर रहे थे, देखें कि वे कौन पाँच भाग्यवान हैं, जो पहले तख्तेपर पैर रक्खेंगे। सभी अपने पक्षमें कारण दे रहे थे। लेकिन मृत्युका नेता कौन बनेगा, इसका निश्चय उनके हाथोंमें नहीं था। सबेरे चार बजे हर सेलके दरवाजेपर पानीकी बाल्टी रक्खी गयी। इसका अर्थ था, तैयार हो जाओ। सबने छड़ेके भीतरसे हाथ डाल छोटे बर्तनोंमें पानी ले स्नान किया। फिर फर्शको धोया और आखिरी पूजा-प्रार्थनामें लग गये। पूजाके बाद वे सिपाहियोंके आनेका इन्तजार करने लगे। लेकिन वहाँ किसीका पता नहीं था। घण्टे बीतते गये, लेकिन कोई खबर नहीं। कोई कहता, शायद सरकारने फाँसी देनेका खयाल छोड़ दिया, अब वह पचीसों आदमियोंको लाहौरके किसी चौकपर ले जायगी और लोगोंके सामने रस्सीसे लटका देगी। शामतक इसी तरह इन्तजारमें बीता, कोई खबर नहीं मिली।

दूसरे दिन सबेरे जेलका अंग्रेज सुपरिन्टेण्डेण्ट फाँसीवालोंके पास आया। लोग समझ रहे थे कि वह फाँसीका समय बताने आया है; लेकिन लोगोंको आश्चर्य और क्षोभ हुआ, जब उसने कहा कि तुम वायसरायके पास क्षमा-प्रार्थना कर सकते हो। क्षमा-प्रार्थना, प्राणोंकी भीख! अपने क्रान्तिकारी जीवनकी संध्यामें शहीदोंका यह काम!

पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंने घृणा-पूर्वक इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। सुपरिन्टेण्डेण्ट बहुत बहुत तरहसे समझाने लगा, लेकिन कोई इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जिनसे लड़ना, उन्हींसे क्षमा माँगना! सब तरह असफल हो उसने अभियुक्तोंके वकीलोंसे क्षमा-प्रार्थनाके लिए लिखनेके लिए कहा। उन्होंने तरह-तरहसे समझाया और जीवनमें दुबारा अवसरकी बात कही। उधर उड़ती खबर मिली कि बाहरसे क्रान्तिकारी जेलपर हमला करके उन्हें छुड़ानेकी बड़ी तैयारी कर रहे हैं। आखिर सब लोगोंने आखिरी अपीलपर दस्तखत कर दिये, कर्तारसिंहने किये या नहीं यह मालूम नहीं। अभियुक्तोंको न एक दूसरेसे सलाह लेनेका मौका दिया गया, न खुद अपनी अपील आप लिखनेका। पृथ्वीसिंहने इस शर्तपर अपील भेजना कबूल किया कि मैं खुद उसे लिखूँगा और उसमें एक भी शब्द घटाना-बढ़ाना नहीं होगा। अपील कुछ इस प्रकारकी थी—

"मैंने जो कुछ भी किया उसके परिणामको खूब सोच समझकर ही वैसा किया। मैं यह भी समझता हूँ कि मैंने जो कुछ भी किया वह सभ्य समाजके खिलाफ कोई ऐसा अपराध न था, जिसके लिए मुझे फाँसी दी जा रही है। मैंने अपने देशकी आजादीसे प्रेम किया, मैं उसे विदेशी गुलामीसे मुक्त करना चाहता था। अगर अपने देशसे प्रेम करना ऐसा कसूर है, जिसके लिए आदमीको फाँसीपर चढ़ाया जाय, तो मेरी यही प्रार्थना है कि बिना देर किये तुरन्त उसकी आज्ञा दी जाय।"

पृथ्वीसिंह यह नहीं चाहते थे कि कोई दूसरा उनकी तरफसे अपने मनकी अपील लिखे और फिर अंग्रेज सरकार दुनियामें घोषित करती फिरे कि हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी फाँसीसे डरते हैं और क्षमाके लिए गिड़गिड़ाते हैं।

सुपरिन्टेण्डेण्टने जब अपील देखी, तो वह पृथ्वीसिंहके पास आया— "पृथ्वीसिंह यह तुम्हारी अपील है? इसे तुम अपील कहते हो।"

मुस्कुराते हुए पृथ्वीसिंहने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, "हाँ साहब, यदि आपको पसन्द नहीं है, तो न भेजिये। अगर आप मेरे दस्तखतसे भेजना चाहते हैं, तो उसमें एक शब्दको घटाना-बढ़ाना नहीं होगा।"

सुपरिन्टेण्डेण्ट बड़ा नर्म-दिल आदमी था। एक संस्कृत नवयुवकको इस भोली उमरमें फाँसीपर भेजे जाते देखकर उसका हृदय विचलित हो गया। नहीं मालूम वह अपील भेजी गयी या नहीं।

आजकल करते हफ्ता बीत गया, लेकिन कोई खबर नहीं। उनके लिए दिन शताब्दियाँ बन रहे थे। मौतका डर पहिले ही दिलसे निकल चुका था। अब तो दिन काटनेकी बेकरारी थी। आगेके लिए उन्हें सोचनेके लिए भी जरूरत नहीं थी, क्योंकि उनका बही-खाता तो बन्द हो चुका था। पढ़नेके लिए कोई वैसी पुस्तक भी नहीं थी। सभी आवागमनके माननेवाले थे, इसलिए समझते थे, अब सोचना दूसरे जन्ममें होगा, जब हम यहाँ फिर जन्मभूमिका उद्धार करनेके लिए आयेंगे।

वह मरना चाहते थे, लेकिन मौत अभी रास्तेमें कहाँ है इसका पता नहीं था।

आखिरमें २१ मई (१९१५) के दिन सुपरिन्टेण्डेण्ट उनके सेलके द्वारपर आकर खड़ा हुआ। उसके हाथमें एक कागजका टुकड़ा था। उसने एक-एकका नाम पुकारा। बार-बारीसे उन्हें सेलसे बाहर निकाला गया, बेड़ियाँ काट दी गयीं और जेलके दूसरे वॉर्डमें ले जाया गया। पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंको सुपरिन्टेण्डेण्टने जीवित रहनेका अधिकार पानेके लिए बधाई दी। उन्हें यह नहीं मालूम कि कौन पीछे छूट गये। नयी सेलोंमें अब वे जीनेके लिए बन्द किये गये थे, इसलिए उनकी खुशीका ठिकाना न था। धीरे-धीरे उन्होंने जाननेकी कोशिश की कि कौन पीछे छूट गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि अट्ठारह आदमी यहाँ लाये गये तो सात आदमियोंके पीछे छूट जानेसे उनकी सारी खुशी गायब हो गयी। उनका दिल फटने लगा, जब एक-एक करके

नाम मालूम हुआ :—(१) कर्तारसिंह सराभा (आयु बीस साल); (२) वी.जी. पिंगले; (३) जगतसिंह सुरसिंग; (४) हरनामसिंह; (५) सरणसिंह (अमृतसर); (६) बखसीससिंह और (७) पंडित काशीराम। कर्तारसिंह पृथ्वीसिंहके समवयस्क थे, गदर-आश्रममें दोनों साथ रहे थे, साथ काम किया था। उनके दिलमें कर्तारसिंहको शहादतका जाम पीते देख ईर्ष्या हुई और अपने लिए अफसोस! पिंगले एक सुन्दर महाराष्ट्री तरुण था। उसकी बुद्धि बहुत तीखी थी, उसमें बनावटका नाम न था। कर्तारसिंह फाँसीपर चढ़ेगा यह सुनकर सारे जेलपर शोक छा गया। उसके साथी ही नहीं, जेलके साधारण कैदीतक उसकी ओर आकृष्ट हुए थे। यदि कर्तारसिंहके छुड़ानेकी कोई भी सुगबुगाहट होती, तो जेलके साधारण कैदीतक उसमें शामिल हो जाते। पण्डित जगतरामने उस वक्त एक कविता लिखी थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ थीं—

"सन उन्नीससौ बहत्तर माह मगहर दूसरी;
गदरकी पलटनका दस्ता मुक्तिको जाता है आज;
है जगाया हिन्दको कर्तार तेरी मौत ने;
कसम हर हिन्दी तेरे ही खूनकी खाता है आज!"

सात शहीदोंके खूनके साथ पहला नाटक खतम हुआ।

अंडमानकी राहमें

कुछ दिनों बाद पृथ्वीसिंह और उनके कितने ही साथियोंके पैरोंमें फिर भारी बेड़ी डाल चौदह नम्बरमें भेज दिया गया। उनमेंसे दो-दो के एक-एक हाथमें हथकड़ी थी। सूर्यास्तके बाद उन्हें फौजी लॉरीमें बन्द किया गया और अंग्रेज सैनिकोंके पहरेमें मुगलपुरा स्टेशनपर एक अलग खड़े डिब्बेमें डाल दिया गया। डिब्बा डाकगाड़ीसे जोड़ दिया गया, और वह एक अज्ञात दिशाकी ओर चल पड़े। पूरे ६० घंटे उन्हें बैठे ही बिताने पड़े। पाखाना जाते वक्त भी हथकड़ियाँ वैसे ही पड़ी रहती थीं। लेकिन जो फाँसी और मौतसे जरा भी विचलित नहीं हुए

थे, वे हृदय अब भी वैसे ही निर्भय थे। स्टेशनपर जब गाड़ी खड़ी होती तो अठारहों जने कोई क्रांतिकारी गीत गाने लगते। लोग उसे सुननेके लिए खड़े हो जाते। बन्दूक देखकर किसीको पास आनेकी हिम्मत नहीं होती, लेकिन वे एक दूसरेसे इनके बारेमें पूछते और तरह-तरहका कयास दौड़ाते।

शामको गाड़ी हबड़ा स्टेशनपर पहुँची। पुलिसके कड़े पहरेमें घोड़ा-गाड़ियोंमें बैठाकर उन्हें अलीपुर सेन्ट्रल जेलमें पहुँचा अलग-अलग सेलोंमें बन्द कर दिया गया। शायद दूसरा दिन था। सुपरिन्टेण्डेण्ट आनेवाला था। कैदी जमादार और सिपाहीने आकर उन्हें सिखलाया कि किस तरह सुपरिन्टेण्डेण्टके आते वक्त जमादार "सरकार, सलाम" बोलेगा, फिर सब लोगोंको दोनों हथेलियोंको दिखाते कंधेसे मिलाते हाथको खड़ा रखना होगा, मुँहसे जीभ निकालनी होगी। जेलके बड़े जमादारने भी सभी बातें सिखायीं-पढ़ायीं।

"सरकार" की आवाज सुनाई दी। कैदीने पृथ्वीसिंहको खड़ा कर दिया। सिपाहीने आकर देखा कि पृथ्वीसिंह सीधे खड़े हैं। उसने गुस्सेमें होकर कहा "ऐसे नहीं, ऐसे" और ढंग बतलाते हुए खड़ा हो गया। लेकिन फिर वही बात। बड़े जमादारने देखा। वह बहुत गुस्सा हुआ और बोला, "हूँ, तुम नहीं जानता, ऐसा खड़ा है!" पृथ्वीसिंहने हँसते हुए कहा, "बहुत अच्छा।" अब जेलरके साथ सुपरिन्टेडेण्ट पहुँचा। पृथ्वीसिंह खड़े थे और उनकी आँखें सुपरिन्टेण्डेण्टके चेहरेपर गड़ी थीं। उसने भाँप लिया और बिना कुछ कहे अपना रास्ता लिया। पीछे पृथ्वीसिंहको मालूम हुआ कि उनके सभी साथियोंने वैसा ही किया था। दूसरे दिन उन्हें बेंत मारनेकी धमकी दी गयी, लेकिन कोई वैसे अपमानजनक रूपमें खड़ा होनेके लिए तैयार नहीं था। जेलवाले उतावले हो रहे थे कि किसी तरह यह बला टले, लेकिन अंडमान ले जानेवाला "महाराजा" जहाजके आनेमें देर थी।

आखिर जहाज आया, आदमियोंको जहाजपर पहुँचाया गया। उन्हें

कोठरियों या दबोंमें बंद कर दिया गया, जिनके गोल-गोल छेदोंसे वे कलकत्तेको देख रहे थे। मन उदास था, क्योंकि क्या आशा थी कि वे जीतेजी फिर अपनी मातृभूमिको देख सकेंगे। अब वे भविष्यके बारेमें सोचने लगे। फाँसीकी अपेक्षा यह कहीं मुश्किल था। फाँसी तो कुछ मिनटोंकी बात थी, लेकिन अब था २० साल अंडमानमें रहना। कैसे यह साल कटेंगे? जहाजमें कुछ मामूली कैदी भी थे, जिनमें कुछ अंड-मान देख चुके थे। उन्होंने वहाँकी भयंकर यातनाकी कहानी सुनायी। मालूम हुआ, अंडमान धरतीपर नरक है। लेकिन, पृथ्वीसिंह अठारह आदमी थे, सभी निर्भय, सभी बहादुर, सभी एक-राय, सभी एक आदर्शवाले; इसलिए उन्हें अपनेपर पूर्ण विश्वास था। यदि अंडमान नरक है, तो हम भी उस यातनाको बर्दाश्त करनेवाले नहीं हैं। चौथे दिन पोर्टब्लेयर और सुन्दर हरियाली आँखोंके सामने आयी। जहाज किनारे लगा। अठारहों जने जेलके फाटकपर पहुँचे। फाटकके भीतर घुसते ही जेलर बारीने ठठाकर हँसते हुए उनका स्वागत किया; फिर उसने जोरसे कहा, "राज लेनेवाला लोग राज माँगता, राज। राज नई कोल्हू डेगा।" पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंको ताज्जुब नहीं हुआ, क्योंकि वे पहिले ही बहुत सी बातें सुन चुके थे। अठारहों जनोंने भी अब जबरदस्त ठहाका लगाया। बारीका मुँह गुस्सेसे लाल हो गया। वह अंडमानका सुल्तान था। सारा द्वीप उससे थर-थर काँपता था। उसके सामने ये नवागन्तुक कैदी ऐसी गुस्ताखी दिखलायें! जेलमें सात ब्लाक और सात सौ चालीस सेल (कोठरियाँ) थीं। अठारहों आदमियोंको दो-दो तीन-तीनकी टोलियोंमें बाँट दिया गया। पुराने कपड़ोंको लेकर नये कपड़े दिये गये। वे नंगे पैर चलनेके आदी न थे और आँगनकी कंकड़ियाँ चुभती थीं। पृथ्वीसिंहको दो नम्बरके ब्लाकमें रक्खा गया। जब वह वहाँ पहुँचे तो शामके भोजनका वक्त था। १०० के करीब कैदी दो पाँतियोंमें बैठे थे। एक पाँतीमें हिन्दू थे, दूसरीमें मुसलमान। और बरमी परोसनेवाले बिजलीकी चालसे चल रहे थे। चावल, दो

चपाती, भाजी और दाल फेंकते जाते थे। यदि आदमी सावधान न रहता, तो खाना बर्तनमें नहीं जमीनमें पड़ता, फिर चाहे वह जमीनसे बटोर कर खाता, चाहे भूखा रहता।

पृथ्वीसिंहको खाना शुरू किये दो-चार ही मिनट हुए थे कि खड़े होनेका हुक्म हुआ। उन्हें जल्दी खानेकी आदत नहीं। पंजाबमें खाना अपनी सेलमें मिलता था और वह इतमीनानसे धीरे-धीरे खाते थे। उन्हें भूखे उठना पड़ा। दो बर्तनोंमेंसे एकमें पानी भरकर सेलमें ले जानेका हुक्म हुआ और दूसरेको दरवाजेसे बाहर रख देना पड़ा। कड़कती हुई आवाजमें हुक्म हुआ, "जोड़ी जोड़ी बैठ जाओ।" बोलने चालनेकी सख्त मनाही थी। राजनीतिक बन्दी दूसरे कैदियोंके साथ बैठनेके आदी न थे। फिर दूसरा हुक्म आया, "कपड़ा निकालो।"

कैदियोंके पास दो ही कपड़े थे—एक अधबहियाँ कुर्ता और एक जाँघिया। कैदी वार्डरने दोनोंको खूब टटोल-टटोल कर देखा। फिर हुक्म हुआ, "कपड़ा उठाओ, बैठ जाओ।"

पृथ्वीसिंहकी सेल कोठे पर थी। ज्यादा खतरनाक कैदियोंको ऐसी सेलोंमें रक्खा जाता था। लेकिन, पृथ्वीसिंह इससे खुश थे। छड़ोंके भीतरसे वे हरे-हरे पहाड़ोंको देख सकते थे। नीले आसमानका कितना ही भाग और चमकते सितारे भी उनके सामने झिलमिलाते थे। एक कम्बल था, जिसे चाहे ओढ़ो चाहे बिछाओ। पेशाब-पाखानेके लिए पासमें एक मिट्टीका बर्तन था, जो बहुत छोटा था।

सबेरे सेलसे निकलते ही फिर जोड़ी जोड़ी बैठनेका हुक्म होता और चन्द ही मिनटों बाद भात मिला माँड़ (काँजी) आ जाता। यदि वे पाखाने जाना या मुँह-हाथ धोना चाहते, तो काँजीसे महरूम रहना पड़ता। काँजी लेते ही सीधे कामकी ओर दौड़ना पड़ता। काँजी लेते ही पृथ्वीसिंहको नीचेवाली सेलमें जाना पड़ा। वहाँ नारियलके कुछ खोल, एक मोटा डण्डा, और लकड़ीका टुकड़ा पड़ा था। डंडेसे

पीट-पीटकर खोलसे रेशेको अलग करना था। उन्होंने समझा, बहुत आसान काम है। सूखे खोलका कूटना आसान काम नहीं था और कितनी ही बार लकड़ी उछलकर सिरपर आती थी। २० सेर आटा पीस डालना आसान था। वहाँ दोपहरके खानेके वक्ततक वह कूटते रहे, लेकिन अभी बहुत सा काम पड़ा ही हुआ था। सेलमें बाहरसे ताला बन्द था, इसलिए वह किसीसे काम सिखानेके लिए नहीं कह सकते थे। चार बजे शामतक नौ छटाँक साफ रेशेको खूब अच्छी तरह लपेटकर देना था। वह सारी ताकत लगा रहे थे; अँगुलियाँ और कलाई फूल गयी, लेकिन काम पूरा होनेकी कोई उम्मीद नहीं थी। जब दोपहरके खानेके लिए दरवाजा खुला, तो बाहर बरामदेमें कूटते कैदियोंसे उन्होंने अपनी दिक्कत बतायी। कैदियोंने दिखलाया कि कैसे खोलको पानीमें पहिले भिगो लेनेसे कूटना आसान हो जाता है। खानेके बाद फिर अपने काममें लगे, लेकिन हाथ जवाब दे रहा था। यद्यपि रेशा परिमाणमें कम नहीं था; लेकिन, वह सूखा, अच्छी तरह झाड़ा तथा सिलसिलेसे लगाकर बाँधा नहीं था।

अंडमानमें उस वक्त अम्बाला जिलेका एक मशहूर कैदी चौधरी रहमत अली खाँ भी कैद काट रहा था। वह राजपूत था। जब उसे मालूम हुआ, कि मेरे ही जिलेका एक दूसरा राजपूत कैदी आया है, तो उसकी सहानुभूति पृथ्वीसिंहके साथ हो गयी। रहमत अलीने आकर पृथ्वीसिंहके मुट्ठेको देखा, समझ लिया कि परिणाम क्या होगा। फिर उसने खूब साफ अच्छी तरह बँधा नौ छटाँकका मुट्ठा उनके हाथमें दे दिया। वह उसे लेकर उस जगह गये, जहाँ तौल-तौलकर डिप्टी-जेलर कैदीके टिकटपर लिखता था। पृथ्वीसिंहका रेशा मुट्ठा ठीक और साफ उतरा। डिप्टी-जेलरने मुस्करा दिया, लेकिन अठारहमें सभी इतने खुश-किस्मत न थे, पाँचका काम ठीक नहीं समझा गया। उन्हें जेलर बारीके सामने पेश किया गया। शायद बारीके पास उस वक्त समय नहीं था, इसलिए उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

संघर्षका आरम्भ

दूसरे दिन सिर्फ पण्डित परमानन्द (झाँसी) की पेशी हुई। बारी आरामसे अपनी कुर्सीपर बैठा था। परमानन्द अपने स्वाभाविक हँसमुख चेहरेके साथ उसके सामने गये। कैदीके चेहरेपर मुस्कराहट ! बारी इसे कैसे बर्दाश्त कर सकता था। बारी आग बगूला हो गन्दी-गन्दी गालियाँ देने लगा। लेकिन जीवनकी बाजी लगानेवाले कब किसीसे डरते हैं ? परमानन्दने भी उसका जवाब दिया। जेलर कड़क कर खड़ा हो गया। चर्बी और माँससे भरा उसका दानव-सा शरीर और परमानन्द उसके सामने बिलकुल छोटेसे बच्चे ! लेकिन उनके दिमागने बतला दिया कि बारी क्या करना चाहता है। बारीका हाथ अभी परमानन्दतक पहुँचे ही पहुँचे, कि उन्होंने जरासा पीछे हटकर उसकी निकली हुई तोंदपर ऐसे जोरका मुक्का मारा कि बारी धड़ामसे गिरा। पहिला वार जो करना था, वह हो चुका, फिर इसके कहनेकी जरूरत नहीं कि लाठियोंसे मार-मारकर परमानन्दको जमीनपर गिरा दिया गया।

यह खबर सारे जेलमें तेजीसे फैल गयी। "बारीको पीटा, सालेको पीटा, शाबाश बंबवाला" कहकर लोग परमानन्दके साहसकी सराहना करने लगे। परमानन्दको पीटकर सेलमें डाल दिया गया।

दूसरे दिन सबेरे सुपरिन्टेण्डेण्ट मेजर मरे हर रोजकी तरह देख-भालके लिए आया। वह परमानन्दकी सेलमें गया, लेकिन शरीरकी अवस्थाके बारेमें कुछ भी पूछे बिना बोल उठा, "कुट्टाका माफक क्या पड़ा है ?" "कुत्ता तुम कुत्ता तुम्हारा वाप" कहकर परमानन्दने जवाब दिया। मरे कुछ भी बोले बिना वहाँसे निकल भागा। दूसरे दिन जब सभी साथी तालोंमें बन्द नारियल कूटनेमें लगे थे, उस वक्त परमानन्द-को बिचली गोमटीमें ले जा हाथ-पैर बाँधकर बीस बेंत मारे। परमा-नन्दसे कोई बात नहीं पूछी गयी, न डाक्टरसे उनकी परीक्षा करायी गयी।

पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंके लिए यह चुपचाप बर्दाश्त करनेकी बात नहीं थी। वे अपमान सहनेके लिए नहीं जिन्दा थे। भाई परमानन्द और सावरकर जैसे क्रांतिकारी भले ही इसे बर्दाश्त कर लें, लेकिन पृथ्वीसिंहके साथियोंको कुछ करना था। तुरत पोर्टब्लेयरके चीफ-कमिश्नरको इसकी सूचना दी गयी। वह तुरन्त आया। लोगोंने समझा था कि सी. सी. (चीफ कमिश्नर) में शिक्षा और संस्कृतिका कुछ प्रभाव होगा, लेकिन उन्होंने देखा, वह कुछ भी सुनना नहीं चाहता। लोग काम छोड़ बैठे थे और सी. सी. सबसे सिर्फ यही कह रहा था, "काम करो, नहीं तो बेट लगेगा।" जब वह पृथ्वीसिंहकी सेलके पास आया, तो जेलरने कह दिया, यह थोड़ा अंग्रेजी जानता है। सी. सी. ने कहा—"चाल ठीक करो, नहीं तो बेत खाओगे"।

पृथ्वीसिंहने तुरन्त जवाब दिया, "करो जो तुम कर सकते हो।"

दूसरे दिन सुपरिन्टेण्डेण्ट पृथ्वीसिंहके और साथियोंके पास गया। हर एकके टिकटपर लिख दिया—छः महीना एकान्तवास, छः महीना डंडा-बेड़ी, बीमारका भोजन, सजावाला भोजन, और सात दिन खड़ी हथखड़ी।"

लेकिन ऐसी सजाओंको वे खेल-सा समझते थे। सभी शरीरसे बहुत लम्बे-चौड़े और मजबूत थे। एक दोको छोड़कर बाकी सभी तीन-तीन चार-चारका मुकाबला कर सकते थे। वे ईंटका जवाब पत्थरसे देनेके लिए तैयार थे। जेलवालोंको यह भी पता लगा कि पचीस ओर क्रान्तिकारी आ रहे हैं। उनकी घबड़ाहट और बढ़ी।

पृथ्वीसिंह और उनके साथी सजाके तौरपर सेलोंमें बन्द थे। दिनमें कोई कम्बल या बिछौना नहीं रख सकते थे, पेशाबके लिए कोई बर्तन नहीं था और उन्हें पेशाब-पाखाना रोके रहना पड़ता। यह कैदियोंके टिकटपर लिखी हुई सजाओंसे भी ज्यादा बुरी थी।

पृथ्वीसिंहके ब्लाकमें उनके दो और साथी थे, मगर वे एक दूसरेसे मिल नहीं सकते थे और न दूसरा कैदी ही उनके पास जा सकता

था। दिनमें सेलका ताला सिर्फ तीन बार खुलता था; सबेरे २० मिनटके लिए पाखाने जाने, हाथ-मुँह धोने आदिके लिए, दोपहरके जल्दी जल्दी खाना खा सकनेके लिए चन्द मिनटोंके वास्ते, और इसी तरह शामको भी। उन्हें सबेरेकी कांजी नहीं मिलती थी, बाकी वक्त खाना खानेके लिए नहीं, बल्कि जीनेके लिए मिलता, जिसमें कि जेल-वाले उनपर और अत्याचार कर सकें। दोपहरके वक्त मुट्ठीभर भात, दालके नामपर पीला पानी, और उबली हुई घास, जिसे जेलवाले साग कहते थे। शामको दो चपातियाँ, आधी कच्ची आधी जली। और यह खाना कैसे लोगोंको मिल रहा था, जिनमेंसे दो-तीनको छोड़-कर सभी छ फुट लम्बे थे, वजन भी १५० पौंडसे ज्यादा। प्रायः सभी मिलों, फैक्ट्रियों, खेतोंमें काम करनेवाले हट्ठे-कट्ठे कामकर थे। इस खूराकने उनके स्वास्थ्यपर बहुत बुरा असर डाला और कितने ही जिन्दगी भरके लिए लुंज हो गये, कितनोंका हाजमा बिगड़ गया।

आजन्म कालेपानीकी सजा पाये २५ और पंजाबी साथी अंडमान पहुँच गये। वे भी आते ही काम न करनेकी हड़तालमें शामिल हो गये। जेलके मालिक जेल-जीवनको नरम करनेके लिए तैयार न थे, यह उनके लिए अपमानकी बात थी। अंडमान जेलमें वैसे ही वार्डरों और जमादारोंकी कमी नहीं थी, लेकिन नये क्रान्तिकारियोंके आनेपर वह संख्या काफी नहीं समझी गयी, टापूके बेतार-स्टेशन आदिकी रक्षा-के लिए कुछ गोरे सिपाही वहाँ तैनात थे। उनमेंसे कद्दावर १ दर्जन जवानोंको जेलमें लाया गया। बिना गोरे सिपाहीके किसीका दर-वाजा नहीं खुलता। पेशाब-पाखानेके रोकनेकी यातना, बीमारीमें दवा-दारू न देनेकी यातना, प्यासेको पानीसे महरूम रखना आदि आदि तरह तरहकी पीड़ाएँ उन्हें दी जाने लगीं, मरणासन्न व्यक्तियों तककी कोई खोज-खबर न लेता था।

एक दिन पृथ्वीसिंह सख्त बीमार पड़े। रातका वक्त था। उनके पेटमें असह्य शूल उठने लगा। ड्यूटी परके आदमीने खबर दी, मगर

कौन पूछता है। दो घण्टे बाद कै-दस्त शुरू हुए। वह अपनेको रोक नहीं सकते थे। सवेरे तक सारी सेल मैलेकी दुर्गन्धसे भर गयी। कोई पहरेवाला पास भी नहीं आ सकता था। बीमारीकी खबर दी गयी, पर फिर वही उपेक्षा। उन्होंने बाहर जाकर स्नान किया, किसी कैदीकी बतलायी एक जड़ी खायी, जिससे कुछ फायदा भी हुआ।

जब बारीके पास पूरी रिपोर्ट पहुँची, तो उसने कहा, "साला मरा नहीं।" कैदी जमादारको उसने चढ़ा रक्खा था, चाहे जितना तंग करे। नहा लेनेके बाद उसने पृथ्वीसिंहको उसी गन्दे सेलमें बन्द करने-की बात कही, तो यह पृथ्वीसिंहकी बर्दाश्तके बाहरकी हो गयी। यद्यपि वह कै-दस्तसे कमजोर हो गये थे, लेकिन उन्होंने अपना सारा बल समेटकर कहा; "आओ, जिसको मरना है, जो मुझे सेलमें ढकेलने आयेगा, वह बच नहीं सकता।" पहरेवालोंकी हिम्मत नहीं हुई। अंग्रेज सिपाही तमाशा देखता मुस्करा रहा था।

कुछ इसी तरहकी बात सरदार विशनसिंह (पहलवान) के साथ हुई। सरदार विशनसिंहको एक मैले सेलमें जानेके लिए कहा गया। आज बुढ़ापेमें भी उनके हाथी जैसे बदन और बड़े पंजेको देखकर आदमी अनुमान कर सकता है कि सरदार अगर बाहर जिन्दगी बिताने पाये होते, तो छोटे-मोटे नहीं पंजाबके बड़े-बड़े पहलवानोंमें होते। उन्होंने गन्दे सेलमें जानेसे इनकार कर दिया। छ फुट लम्बे, २२० पौण्डके इस भीमको जबरदस्ती भीतर ढकेलनेके लिए दस आदमी आये। सरदारके शान्त चेहरेपर क्रोध झलकने लगा, और उन्होंने गरजते हुए कहा—"केडा मौत मँगदा ए" (कौन मौत चाहता है) ? यदि किसीने आगे पैर बढ़ाया, तो चीर कर दो कर दूँगा।" विशन-सिंह सेलके बाहर खड़े थे। बारी सौ गजके भीतर जानेकी हिम्मत नहीं रखता था। कोई आगे बढ़नेके लिए तैयार नहीं था। वे लाठी भी इस्तेमाल नहीं कर सकते थे, क्योंकि जानते थे कि एक लाठीसे उसका कुछ होनेवाला नहीं, और जहाँ उसने लाठी छीनी कि सबकी

मौत है। सब पैर दबाकर भागे। विशनसिंहने अपने मनका सेल चुना। इस तरहकी कितनी ही घटनाएँ हुईं। वीरोंकी बहादुरी देखकर जेलके कैदी सराहना ही नहीं करने लगे, बल्कि वे उनके पक्षमें हो गये। बेचारे बारीकी बुरी हालत थी, उसका सारा रोब मिट्टीमें मिल रहा था। जब वह जान लेता कि सब लोग तालेके भीतर बन्द हो गये हैं, तो पन्द्रह-बीस आदमियोंको लेकर आता और सेलके बाहर खड़ा होकर हिन्दीमें खूब गन्दी-गन्दी गालियाँ देता, जिसमें कि दूसरे कैदी सुनकर समझें कि बारी और उसका रोब अब भी बरकरार है; लेकिन पंजाबी बहादुर एककी दो सुनाते, और दूनी आवाजमें। दो-तीन दिन बाद वह अकेले चुपकेसे आता और नर्मीके साथ कहता, "देखो, मैं बाज वक्त आपेसे बाहर हो जाता हूँ और तुम्हें गाली देने लगता हूँ, लेकिन तुम्हें कैदियोंके सामने मुझे हिन्दुस्तानीमें गाली नहीं देना चाहिये और कुत्तेका बच्चा नहीं कहना चाहिये।"

बारी और सुपरिन्टेण्डेण्टने पंजाबियोंके बारेमें जो रिपोर्ट भारत सरकारके पास भेजी थी, उसीको लेकर भारत सरकारने आत्म-सम्मानके लिए मर मिटनेवाले इन क्रान्तिकारियोंको "भेड़ियोंका झुंड" कहा था।

छ महीनेका समय बीत गया, बेड़ियाँ उतार ली गयीं। लोगोंने फिर काम करना शुरू किया, लेकिन अब भी उन्हें सेलमें अकेले बन्द रक्खा जाता, पढ़नेके लिए किताबें नहीं दी जातीं। बारी, सुपरिन्टेण्डेण्ट मरे और सी० सी० के जुल्मोंकी अंडमानमें हद न थी, इसीलिए बाबा बिसाखासिंह जैसे शान्त सन्त पुरुषको भी गाना पड़ा—

> "अंडमन् विच सी डाकू तिन्न बड्के।
> सी. सी. मरे ते बारी पठाण तिन्नों।
> रहे खून निचोड़ सी कैदियाँ दा,
> एक दूसरे तो बेइमान तिन्नों॥
> जो चाँवदे जुलुम सी करे जाँदे,
> बेरहम, बेतुख्म शैतान तिन्नों।

अक्खीं वेख्या, सच "बसाख" लिखदा,
जान कैदियाँ दी उत्थे खाण तिन्नों।

यह जुल्म लोगोंको सिर्फ शारीरिक और मानसिक कष्ट देनेतक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि इसमें आठ बहादुरोंने अपने प्राण दिये, जिनके नाम हैं—

(१) केहरसिंह (मराण), (२) नन्दनसिंह (बुर्ज) (३) नत्थासिंह (लोरियाँ), (४) बुड्ढासिंह (गुजरात), (५) माड़सिंह (सनैते), (६) रुलियासिंह सरम, (७) रामरक्खा (जेहलम) और (८) रोडासिंह (लंडे)।

बारी और मरेने सारे कैदियोंकी नाकमें दम कर रक्खा था। जब उन्होंने देखा कि मौतसे खेलकर भी बारी-मरेकी नाकमें दम करनेवाले आ गये हैं, तो सबकी श्रद्धा उनकी ओर हो गयी। जब कोई अपना छिलका पूरा नहीं कूट पाता, तो दूसरे उसे पूरा कर देते। जेलके कानूनके मुताबिक भी इतवारको छुट्टी होनी चाहिये, लेकिन बारी-मरेका अपना कानून था। वे इतवारको भी वार्डके हातोंको साफ करनेके लिए कहते। पहरेवाले उनसे बोलते, "बाबू, जाओ उस कोनेमें घास पर बैठो, यदि कोई आया, तो हम कह देंगे कि घास चुन रहे हैं।" एक कैदी जमादार बारीका विशेष फरमाँबरदार था। उसने एक दिन पृथ्वीसिंहके सात साथियोंको इतवारके दिन भी पूरा काम करनेके लिए कहा। उन्होंने इनकार किया। उन्हें बारीके पास ले जाया गया; उसने उन्हें मेजर मरेके सामने पेश किया कि ये काम नहीं करते और गुस्ताखी करते हैं। मेजर मरेने उनके टिकटोंपर लिख दिया, "छ महीनेका एकान्तवास, बीमारोंका खाना, हथकड़ी, आदि।"

पृथ्वीसिंहको बहुत बुरा लगा। जब मरे उधरसे गुजरा, तो उन्होंने सलाम करके कहा, "साहब, हमारे साथियोंके साथ अन्याय हो रहा है, उनके मामलेको आप फिरसे देखें।" मरेको कहाँ सुननेकी

फुर्सत थी। उसने ताना देते हुए कहा, "अन्याय ?" और अर्दलीको हुक्म दिया कि इसका टिकट ले लो। शामको पृथ्वीसिंहने देखा तो उनके टिकटपर लिखा हुआ था "जेलके जवाबदेह अफसरोंके खिलाफ बुरी नियतसे निराधार इल्जाम लगाना चाहता है।" दूसरे दिन मरेके सामने पेशी हुई, और उसने डंडा-बेड़ी और एकान्तवासकी सजा दी। एक सालके बाद औरोंको सेलसे बाहर आनेका मौका मिलने लगा, लेकिन पृथ्वीसिंह बीस महीनेतक एकान्त कोठरीमें ही बन्द रहे। लेकिन उसीके अनुसार जेलके सारे कैदी उनका सम्मान भी करते। हर एक उनकी सहायता करनेको तैयार था। कभी-कभी किताबें भी पढ़नेको मिल जातीं।

बहुत सालोंतक पंजाब सरकार अंडमानमें कैदी भेजती रही, यद्यपि हर साल उनकी संख्या चार-पाँचसे ज्यादा कभी नहीं होती थी। सिक्खोंके बालकी सफाई, साबुन, मीठे पानी और तेल आदिका कभी खयाल नहीं किया गया। अब वहाँ चालीस सिक्ख थे। उन्होंने इसके लिए अधिकारियोंसे प्रार्थना की, मगर वहाँ कौन सुननेके लिए तैयार था ? यदि कहींसे एक टुकड़ा पैदा करके कोई साबुन और मीठे पानीसे सर धोते देखा जाता, तो उसे सजा होती। तजर्बासे मालूम हुआ कि नारियलकी खलीसे बालोंको धोया जा सकता है। उसके लिए मीठे पानीकी जरूरत नहीं, समुन्दरका खारा पानी ही काफी है। उन्होंने उसे इस्तेमाल करना शुरू किया, जिसपर उन्हें हथकड़ी-बेड़ी, एकान्त सेल, टाट पहिनना, भूखा रहना आदि आदि सजाएँ भुगतनी पड़ीं। पृथ्वीसिंह स्वयं सिक्ख नहीं थे, उन्होंने कभी केश नहीं रक्खे थे, लेकिन सिक्खोंकी लड़ाईसे अलग नहीं रहना चाहते थे। दाढ़ी-बाल कुछ बढ़ ही चुके थे। उन्होंने जेलरसे कहा, मैं भी सिक्ख हूँ, मैं टोपी नहीं रक्खूँगा, मुझे भी सिर ढँकनेके लिए कपड़ेका टुकड़ा मिलना चाहिये। उन्होंने टोपी पहिनना छोड़ दिया और कुछ दिनों बाद कपड़ेके टुकड़ेका जोगाड़ हो गया।

और कड़ा संघर्ष

बारी क्यों शान्तिसे रहने देने लगा ? वह बराबर कोई न कोई छेड़छाड़ करता ही रहता। बंगालके एक क्रान्तिकारी ग्रेजुएट आशुतोष लाहिड़ी जब स्वस्थ थे, तो पन्द्रह सेर तेल पेर दिया करते थे, लेकिन अब उनका स्वास्थ्य वैसा न था, इसलिए छिलकेको पूरी मात्रामें कूट-कर नहीं दे सकते थे। छोटी-मोटी सजाओंके बाद उन्हें बेंतकी सजा दी गयी। सारे जेलमें सनसनी फैल गयी। इसके बाद बाबा ज्वाला-सिंह और अमरसिंहको—जो एक ही ब्लाकमें रहते थे—एक जगह खड़े देखकर बारीने मरेके सामने पेशी कर दी। मरेने उन्हें सजा दे दी। सावरकर, भाई परमानन्द, वारेन्द्र जैसे राजबन्दी अपने जीवनको शान्तिपूर्वक बिता देना चाहते थे। वे बेत और अपमानकी कड़वी घूँट पी जानेके लिए तैयार थे; मगर पृथ्वीसिंह और उनके साथी एक दूसरी ही धातुके बने थे। वे बीस-बीस सालतक बारी, मरेके सारे अपमानोंको सहनेके लिए जेलमें नहीं आये थे। लाहिड़ीके बेत मारे जानेपर जब राजबन्दियोंने कोई कड़ा कदम नहीं उठाया, तो बारीका साहस और बढ़ गया और उसने फिर छेड़खानी शुरू कर दी। बारी अब ब्लाकोंमें आने लगा। वह बातें शुरू करता, और फिर गालियों पर उतर आता। एक दिन वह पृथ्वीसिंहके सेलके सामने आया और बात करने लगा। पृथ्वीसिंहने हँसते हुए जवाब दिया, इस पर बारी बोला, "तुम पक्का आदमी है, मुँहपर हँसी रहती है, मगर दिल तुम्हारा साँप जैसा है।"

"हो सकता है जनाब, मेरे हृदयमें साँपका हृदय देखते हों, क्योंकि मेरे पास उसे ढाँकनेके लिए चर्बी नहीं है। लेकिन तुम्हारे हृदयमें क्या है यह देखना मेरे लिए बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसपर चर्बीकी एक बहुत मोटी तह जमी हुई है, और वह भी जिन्दा चर्बी नहीं मुर्देकी चर्बी।" बारी चुप-चाप चला गया।

बाबा भानसिंह साठ सालके बूढ़े क्रान्तिकारी थे। एक दिन बारी

उधरसे गुज़रा और अपने स्वभावके अनुसार बोल उठा, "देखा, साला राज लेने आया है।" बाबा भानसिंह बड़े शान्त प्रकृतिके आदमी थे, लेकिन वे क्रान्तिकारी थे; इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने बारीको मुँह-तोड़ जबाब दिया। उस हातेमें उनके साथियोंमेंसे कोई नहीं था। बारीने हुक्म दिया, आठ कैदी पहरेवाले बाबा भानसिंहके सेलमें घुसे और उन्हें मारते-मारते बेहोश कर दिया। दो दिन बाद वह मर गये।

अभीतक लोग यह नहीं समझते थे कि बारी इतनी दूरतक चला जायेगा। शामको जब सेल बन्द कर दिये गये, तो एक पहरेवालेने सारी बात पृथ्वीसिंहको कह सुनायी। बाबा भानसिंहने कहलवाया था, "मार बेहद पड़ी है, मैं और बहुत दिन नहीं जी सकता।" पृथ्वीसिंह रातभर सोचते रहे। भानसिंहकी मृत्युके बाद उन्हें साफ मालूम होने लगा कि अब बारीने दूसरा हथियार उठाया है। वह जिसे चाहेगा, उसे एक-एक करके इसी तरह मारेगा। पृथ्वीसिंहका बाबा भानसिंहसे और भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। अमेरिकासे चलते वक्त वह बाबासे बिदाई लेते वक्त बोले थे—"बाबा, देशके कामके लिए मैं भारत जा रहा हूँ, तुमसे जो सहायता हो करना।" वह चुपचाप सुनते रहे। फिर उन्होंने हृदयके अन्तस्तलसे कहा—"तुम दुध-मुँहे बच्चे देशके लिए जान दो और मैं बूढ़ा जिन्दगीसे चिपटा रहूँ! यह बड़े शर्मकी बात है।"

बाबा भानसिंह अमेरिकामें खेतोंमें काम करते थे और पचहत्तर डालर (ढाई सौ रुपया) महीना कमाते थे। उन्होंने अपने सुखी जीवनकी परवाह न की और न बुढ़ापेही की। चन्द मिनटोंमें उन्होंने अपना बिस्तरा बाँध लिया और पृथ्वीसिंहने देखा कि बाबा उनके साथ चल रहे हैं। पृथ्वीसिंहके लिए बाबा भानसिंहकी मृत्यु भुलानेकी चीज न थी। वह कोई बड़ा कदम उठाना चाहते थे। आँखोंसे बहती आँसुओंकी धारा दिलकी आगको बुझा नहीं सकती थी। बारी और

मरे अंडमानके सर्व-शक्तिमान भगवान थे। लेकिन पंजाबी क्रांतिकारियोंने अपनी वीरतासे सारे कैदियोंके दिलमें घर कर लिया था। यदि कितने ही डकैत और गुंडे बारीका हुक्म मानकर सब कुछ करनेके लिए तैयार थे, तो उनसे भी अधिक खतरनाक, बहादुर कैदी तथा पहरेवाले पंजाबी क्रान्तिकारियोंका साथ देनेके लिए तैयार थे। यदि बारीके जासूस क्रांतिकारियोंकी एक-एक बातको वहाँ पहुँचाते थे, तो क्रांतिकारियोंके पास भी बारीकी हर एक बात पहुँचती थी, उनके मेजकी दराजोंमें क्या-क्या बन्द हैं, यह भी उनसे छिपा नहीं था। पृथ्वीसिंह जेलके सबसे निर्भय और खतरनाक कैदियोंके स्नेह और सम्मानके भाजन थे। जेलमें एक खूनी बलवा उठा देना आसान काम था, सिर्फ उन्हींके बलपर नहीं, बल्कि चालीस पंजाबी क्रांतिकारी भी शरीरमें देव और हिम्मतमें फौलाद जैसे थे! उनमेंसे कोई भी एक थप्पड़में बारी या मरेको खतम कर सकता था। लेकिन वे जानते थे कि बारी और मरे शतरंजके मोहरे हैं। इनसे नहीं, बल्कि निपटना है अंडमानके अमानुषिक शासनसे और उसका संचालन करनेवाली विदेशी सरकारसे।

अब संघर्ष करना जरूरी था। अबकी बार मामूली संघर्ष नहीं था। अब या तो अंडमानकी व्यवस्थाको बदलना होगा या मरना होगा। उनके सामने साधारण हड़तालकी कठिनाइयाँ भी स्पष्ट थीं। उनको "टाइम्स" और "स्टेट्स मैन' अखबार पढ़नेको मिलते थे, जिससे मालूम होता था कि लड़ाई कितनी घनघोर हो रही है। कितनी ही बार देशी समाचारपत्र भी छिपकर चले आते थे। वे जानते थे कि हम प्राणोंकी बाजी लगाने जा रहे हैं और इसकी कोई भी खबर बाहर नहीं जाने पायेगी।

पृथ्वीसिंहके ब्लॉकमें रातको बाहर पहरेवाले सभी सहानुभूति रखते थे। वह अपने दूसरे साथियोंके पास जबानी या लिखकर सन्देश भेज सकते थे। दोपहरके वक्त उनको पता चला कि पचासी राज-

बन्दियोंमें पैंतालीस काम छोड़नेकी हड़तालको तैयार हैं। उनमेंसे कुछ बीमार थे, जिन्हें हड़तालमें भाग न लेनेके लिए कहा गया। बंगाली राजबन्दियोंमें तीनने हड़तालमें भाग लिया। भाई परमानन्द यद्यपि पृथ्वीसिंहके साथके राजबन्दी थे, मगर वह हड़तालके लिए तैयार न थे। इसके लिए दूसरोंको शिकायत न हो सकती थी, वह किसी राजनीतिक कार्यके साथ नहीं थे, और न उनके विचार ही उनसे मिलते थे। पुलिसने पकड़कर उन्हें भी शहीदोंकी टोलीमें मिला दिया था। कोई चारा नहीं था, इसलिए वह वहाँ थे। यदि सावरकर, भाई परमानन्द, वीरेन्द्रकुमार घोष और उनके साथी हड़तालमें शामिल हुए होते, तो इसमें शक नहीं कि उसका वजन बढ़ जाता, लेकिन भाई परमानन्दको छोड़कर बाकी सभीके साथ खास रियायत थी। उनको पहिननेके लिए अच्छा कपड़ा मिलता, खाना भी वह अपने आप बनाते। ऊपरसे महीनेमें बारह आने पैसे भी मिल जाते थे। तब भी पृथ्वीसिंह और उनके साथी अपनी लड़ाई लड़नेके लिए तैयार थे।

मध्याह्न-भोजनके वक्त मालूम हुआ कि बाबा सोहनसिंहने भूख-हड़ताल शुरू कर दी। बाबा सोहनसिंह गदर पार्टीके संस्थापक और प्रेसीडेन्ट थे। पृथ्वीसिंहको अपने नेताके प्रति अपार भक्ति थी। खबर सुननेके बाद वह अपनेको रोक नहीं सकते थे। उनकी भूख-हड़तालका मतलब था, मौतको निमन्त्रण देना। फिर देर करनेकी जरूरत क्या? पृथ्वीसिंहने पानी लेना भी छोड़ दिया। भूख-हड़तालका यह पहला तजर्बा था। पेटकी अँतड़िया अलग तिलमिला रही थीं, और प्यासके मारे कण्ठमें काँटे चुभ रहे थे। शामको लोहार आया और उसने डण्डा-बेड़ी पहिना दी। उन्हें कोठेसे उतारकर नीचेकी सेलमें बिठा दिया गया। आस-पासकी सभी सेलें खाली करवा दी गयीं। तीसरे दिन उन्होंने सेलसे बाहर जाना छोड़ दिया। चौथे दिन भूख खतम हो गयी। लेकिन प्यासके मारे और बुरी हालत थी। रोज पहरेवाला एक बर्तनमें खानेकी चीजें और दूसरेमें पानी लेकर सेलमें रख देता, जिससे

कि खाने पीनेके लिए मन ललचाये। चौथे दिन प्यास बहुत तंग करने लगी। वह उठ खड़े हुए और पानीके बर्तनको ओठोंसे लगाना चाहते थे। उसी वक्त उनके मनने कोसना शुरू किया—'जिन्दगीके पीछे चिपके रहना चाहते हो।' उन्होंने पानी वहीं रख दिया। दो-तीन बार उनके पैर पानीकी तरफ बढ़े। उन्होंने मनको जवाब दिया, "मैं जीने नहीं मरनेके लिए तैयार हूँ," और फिर पानीके बर्तनको पटक दिया।

जाड़ेका महीना था, नहीं तो अबतक शायद काम खतम हो चुका होता। सातवीं रातके दो बज रहे थे, उस वक्त उन्होंने महसूस किया कि उनके हाथ पैर ठंडे हो गये, लेकिन मौत कहीं आसपास दिखलाई नहीं देती थी। नवें दिन मेजर मरे आया। उसने सेलका दरवाजा खुलवाया और पृथ्वीसिंहकी नब्ज देखी। वह एक शब्द भी न बोला। एक घंटे बाद उन्हें एक कम्बलमें लपेटकर लोग उठा ले चले। नहीं मालूम कहाँ ले जा रहे हैं। उनके साथियोंने जब कम्बलमें लपेटे उनके शरीरको जाते देखा तो, समझ लिया वह मर गया। अस्पतालमें ले जाकर उन्हें रक्खा गया। डाक्टर और कम्पाउंडरने खानेके लिए समझाया, लेकिन वहाँ उसके लिए कौन तैयार था? फिर उन्हें उठाकर सेलमें पहुँचा दिया गया। शायद अस्पतालमें ले जाकर लौटानेका मतलब यह होगा कि उन्हें नवें दिन जबरदस्ती भोजन कराया जाय, जिसमें मेजर मरे और उनके सहकारियोंको आगे अपनी सफाई देनेमें आसानी हो।

दसवें दिन फिर उसी तरह अस्पताल पहुँचाया गया। अबकी बार नाकके रास्ते जबरदस्ती खाना डालनेकी कोशिश की गयी। लेकिन पृथ्वीसिंहने सारी ताकत लगाकर बाधा डाली। नाकके रास्ते रबरकी नली डालते वक्त घाव हो गया और नाकसे खून गिरने लगा। दसवें दिनके बाद रोज यही कायदा था। सबेरे चार बर्मी कैदी आते और कम्बलमें लपेटकर कंधे या सिरपर उठाये पृथ्वीसिंहको अस्पताल ले जाते और वहीं नाकके रास्ते नलीसे दूध डाला जाता। दो-तीन दिन बाद अब वह

दिनमें दो बार दूध डालने लगे। इन कैदियोंको इसीलिए इस काममें लगाया जाता था कि भाषा न जाननेके कारण दूसरोंके पास बात न पहुँचने पाये। पृथ्वीसिंह बर्मी भाषा जानते थे। वह उनकी गालियोंका आनन्द लेते थे। बाबा सोहनसिंह तीसरे नम्बरके ब्लाकमें थे। उन्होंने पानी नहीं छोड़ा था। पृथ्वीसिंहको भी उसी ब्लॉकमें, यह खयाल करके भेजा गया कि उनपर भी कुछ प्रभाव पड़ेगा। उनके साथी बराबर जवाब देनेके लिए तंग किया करते थे। पहरेवाला रातको घंटों बातें करता, लेकिन जवाब देनेके लिए पृथ्वीसिंहके मुँहमें ताकत नहीं थी। जबान सूखकर काँटा हो गयी थी। पृथ्वीसिंहने बोलना छोड़ दिया। बारीने अब बोलवानेकी ठानी। वह अपने किसी कृपापात्र पहरेवालेको भेजता, जो पृथ्वीसिंहको गंदीसे गंदी गालियाँ देता। लेकिन पृथ्वीसिंह थे "बुन्द अघात सहहिं गिरि जैसे"। कुछ दिनों बाद उन्हें अस्पताल ले गये, यह देखनेके लिए कि कहीं दिमाग तो नहीं खराब हो गया। पृथ्वीसिंहने डाक्टर और कम्पाउन्डरसे कह दिया कि मेरी जिह्वा सूख जाती है, इसीलिए मैं नहीं बोलना चाहता। एक दिन चीफ कमिश्नर भी आया और बोला कि "प्राणोंको इस तरहसे मत फेंको।" लेकिन उसने इसके बारेमें एक बार भी न पूछा कि तुमने क्यों भूख हड़ताल की। दो महीने इसी तरह बीत गये। मौतका अब भी पता नहीं था, और जिसके लिए उन्होंने भूख-हड़ताल की थी, उसके बारेमें भी कोई फल नहीं दिखाई दिया। जेलवाले कुछ ढीले जरूर पड़े। हाँ, सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि बारी अपनी जीभपर अंकुश रखने लगा।

जेलके बाहरसे खबर मिली कि भूख-हड़तालका पता हिन्दुस्तानमें लग चुका है। जनता और अखबारोंमें भारी आन्दोलन हो रहा है। इस खबरमें कितनी सत्यता थी, इसके बारेमें तो कुछ नहीं कहा जा सकता था, लेकिन जेलके अधिकारी घुमा-फिराकर कहते, हड़ताल छोड़ो, हम तुम्हारे साथ बेहतर बर्ताव करनेकी कोशिश करेंगे। लेकिन यह कोई पक्का वादा न था। बाबा ज्ञानसिंहके मारनेवालोंके लिए भी कुछ नहीं

किया गया था। बाबा सोहनसिंहने समझा कि जिस कामके लिए हमने भूख-हड़ताल की थी, वह जेलके अधिकारियोंके वादेसे पूरी हो जाती है। उन्होंने भूख-हड़ताल तोड़ दी। लेकिन पृथ्वीसिंह उससे संतुष्ट नहीं थे, यद्यपि बाबा सोहनसिंहका अनुसरण न करनेके लिए उनके दिलमें अफसोस था। मित्र और चिन्तित हुए। उन्होंने हर तरहसे समझानेकी कोशिश की, लेकिन पृथ्वीसिंहका उस वक्त भगवानपर विश्वास था। वह समझते थे, जो दाताकी मर्जी। एक रात सोचते-सोचते उनके दिमागने कहा, जब तुमने जीवनकी आशा छोड़ दी है तो जाड़ेसे बचनेके लिए कपड़े-कम्बलकी क्या जरूरत है। दूसरे दिन सवेरे उन्होंने कम्बल ही नहीं छोड़ा, बल्कि बदनके सारे कपड़े भी फेंक दिये। अब वह दिगम्बर थे। हाँ, डंडा-बेड़ी निकाल फेंकना उनकी शक्तिसे बाहरकी बात थी। सीमेन्टका फर्श बहुत ठंडा था, उसपर वह लेट नहीं सकते थे। चौबीसों घंटे पल्थी मारकर फर्शपर बैठे रहते और डंडा-बेड़ी शरीरको अवलम्ब देनेके लिए कुबड़ीका काम देती। उनका वजन १६० पौंडसे घटकर ९८ पौंड रह गया। शरीर सूखकर काँटा और जीवनशक्ति बहुत ही क्षीण हो गयी। नंगे होनेकी बातसे सारे जेलमें तहलका मच गया। उनके साथी समझाने लगे, अब मौत बहुत दूर नहीं है। धीरे-धीरे बैठे ही बैठे उन्हें सोनेकी आदत हो गयी। १५५ दिनतक पृथ्वीसिंह भूख हड़ताल करते रहे। उन्होंने खाना, पीना, कपड़ा और बोलनातक छोड़ दिया था और साध ली थी सिर्फ एक मरनेकी। लेकिन मौत उन्हें भूल गयी थी। अब उन्हें समझमें आने लगा कि बाबा सोहनसिंहका ही निश्चय ठीक था। एक हदतक हम अधिकारियों-को दबा चुके, अब आगेकी लड़ाईके लिए मरना नहीं, जिन्दा रहना अच्छा है। यह बात समझनेमें उन्हें काफी देर लगी। उनके साथी चिन्तित थे और कोशिश करते थे कि पृथ्वीसिंह भूख-हड़ताल तोड़ दें, जिसमें दूसरे भी हड़ताल तोड़ सकें। बाबा शेरसिंहका पृथ्वीसिंहपर खास स्नेह था। उन्होने तै किया कि चलकर उस हठीले नौजवानको

समझायें। लेकिन १२० पौंडके स्वस्थ शरीरको अस्पताल कौन जाने देता? कोई रास्ता न देखकर, उन्होंने कोई जहरीली चीज उठाकर पी ली। खूनके दस्त आने शुरू हो गये। डाक्टरने उनकी यह हालत देख कर उन्हें एक रातके लिए अस्पताल भेज दिया। बाबा शेरसिंहने भूख-हड़तालियोंके कष्टकी गाथा सुनायी और कहा, तुम भूख-हड़ताल छोड़ दो, तो सबके सब इस कष्टसे त्राण पायेंगे। पृथ्वीसिंह अब भी कुछ तै न कर पाये थे। फिर उन्हें पंडित जगतरामकी चिट्ठी मिली, जिसे उन्होंने अपने खूनसे लिखा था और दलील देकर समझानेकी कोशिश की थी कि अब भूख-हड़ताल जारी रखना अच्छा नहीं।

१५५ वें दिन जब डाक्टर नाकसे दूध पिलानेके लिए आया तो पृथ्वीसिंहने उसे हाथसे उठाकर पी लिया, लम्बी हड़ताल खतम हुई।

विजय

अब मेजर मरेके बर्तावमें भारी अन्तर था। वह दो सालकी छुट्टीपर चला गया और उसे फिर अंडमानका मुख नहीं देखना था, लेकिन बेचारेके भाग्यमें न छुट्टी बदी थी न पेन्शन! वह अंडमानके अपने सारे पापोंके लिए इस दुनियासे चल बसा। बारीकी जगह उसका बहनोई जेलर बनकर आया। वह बड़ा भला-मानस था। उसके आनेपर लोग नहीं समझते थे कि हम कैदमें हैं, और वह जेलर है। क्रांतिकारी भी उसे किसी तरह हैरान करनेके लिए तैयार नहीं थे। इसके बाद किसी बे-इन्साफीके लिए बाबा सोहनसिंहको भूख-हड़ताल करनी पड़ी। पृथ्वीसिंहको जब पता लगा तो बाबा सोहनसिंहके बार-बार मना करनेपर भी वह शामिल हो गये और ग्यारह दिनतक बिना पानीके भूख-हड़ताल किये रहे।

अंडमानके कैदियोंमें छुआछूत बहुत थी। मुसलमानके हाथकी रोटी खा लेनेसे ही हिन्दू अपनेको मुसलमान समझने लगता था। पृथ्वीसिंहको यह छुआछूत बहुत बुरी लगती थी। वह मुसलमानोंके

हाथसे रोटी छीन-छीनकर खाने लगे और थोड़े ही दिनोंमें लोगोंका पुराना खयाल हट गया।

चलते-चलते

मेजर मरे भी कुछ दिनोंमें हिंदुस्तान भेज दिया गया। उसकी जगह मेजर बारकर सुपरिन्टेण्डेण्ट बनकर आया। नये जेलरकी तरह यह भी सज्जन था। कसूर करनेपर भी किसी कैदीको भरसक सजा नहीं देना चाहता था। डाक्टर एक फौजी आदमी था और जहाँतक कैदियोंके स्वास्थ्यका सवाल था, वह जेलर और सुपरिन्टेण्डेण्टकी परवाह नहीं करता। हर तरहसे ध्यान रखता था। पुराना अंडमान सपना होता जा रहा था। खबर उड़ने लगी थी कि कैदी अब हिंदुस्तान भेज दिये जायँगे और अंडमानका जेल बन्द कर दिया जायगा।

अध्याय ७

भारतकी जेलोंमें [१९२१-२२]

अक्टूबर १९१५ से अगस्त १९२१ तक ६ साल अंडमानमें रहनेके बाद पृथ्वीसिंहके मनमें फिर आशा अंकुरित होने लगी कि हमें मातृ-भूमिके दर्शनोंका मौका मिलेगा।

वे दिन असहयोगके थे। सारे हिन्दुस्तानमें गांधीजीकी जय-जय-कार हो रही थी। ये खबरें छन-छनकर अंडमान टापू और उसके जेलकी दीवारोंके भीतर भी पहुँचने लगीं। इसलिए पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंको भारत लौटनेकी और भी ज्यादा उत्सुकता होने लगी। मगर अभी एक बार और संघर्ष करना था। मेजर वारकरने जेलके खर्चेमें कमी करनेके लिए पहले कैदियोंके तेलपर हाथ उठाया और उसे बारह ड्रामकी जगह आठ ड्राम कर दिया। लोगोंको बुरा तो लगा लेकिन अब वे भारत चलनेके लिए उतावले हो रहे थे, इसलिए नहीं चाहते थे कि फिर कोई झगड़ा मोल लिया जाय। लेकिन पृथ्वीसिंह इसे अपनी शान-के खिलाफ समझते थे। युद्ध-क्षेत्रको सामने देखकर पीछे हट जाना—यह उनसे नहीं हो सकता था। सब लोग संघर्षके लिए तैयार नहीं हुए, लेकिन संघाईमें गदर पार्टीके स्तम्भ, ७० सालके बूढ़े बाबा निधानसिंह, उनके साथ थे। गदर पार्टीके महाकवि बाबा हरनामसिंह भी—जो अपने दाहिने हाथको भी क्रांतिकी बलि चढ़ा चुके थे, जिससे उन्हें "टुन्डी लाट"कहा जाता था—साथ-साथ चलनेके लिए तैयार थे। पंजाबकी जेलोंमें वर्षोंसे सड़ते रहे क्रांतिके वह महान् योद्धा, बाबा गुरमुखसिंह भी पृथ्वीसिंहके साथ थे। चारोंने अधिकारियोंको समझाया कि तेलकी मात्राको पहले ही के जितना कर देना चाहिये, लेकिन कुछ नहीं हुआ।

जेलरकी सहानुभूति सबको मालूम थी। उसने इन लोगोंको समझानेकी कोशिश की, लेकिन ये चारों जने चुप रहनेके लिए तैयार नहीं थे। चारोंने काम न करनेकी हड़ताल शुरू कर दी।

मेजर वारकरकी जगह एक छ फुट लम्बा असुर सुपरिन्टेण्डेण्ट बनकर आया। जेलका चक्कर लगाते वह पृथ्वीसिंहके सेलके दरवाजेपर आया। पृथ्वीसिंह वैसे ही बैठे रहे। सुपरिन्टेण्डेण्ट दरवाजा खुलवाकर चुप-चाप पृथ्वीसिंहके पास आगया। पृथ्वीसिंह एक शब्द भी न बोले। उसने पृथ्वीसिंहकी दाढ़ी पकड़ी और कैसे खड़ा होना चाहिये, वैसा बताकर चलता बना। सेल छोड़ते वक्त उसके मुखपर विजयकी हँसी थी। गाँधीजीके असहयोग और अहिंसाकी कितनी ही बातें पृथ्वीसिंह पढ़ चुके थे और उनका पालन भी करना चाहते थे। वह हर तरहकी सजा और बेंत खानेके लिए खुशीसे तैयार थे। लेकिन सुपरिन्टेण्डेण्टके इस बर्तावको बर्दाश्त करनेके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने इस बातकी सूचना अपने साथियों और जेलरको भी भेज दी। जेलर सुपरिन्टेण्डेण्टको अभी तक बतला नहीं सका था कि इसी बीच सुपरिन्टेण्डेण्ट फिर पृथ्वीसिंहकी सेलकी ओर आ गया। दरवाजा खुलवाकर भीतर आ उसने फिर दाढ़ी पकड़कर उन्हें खड़ा किया। पृथ्वीसिंहने उसके बाँये गालपर जोरसे एक चपत जड़ दी। लाठियाँ पड़ीं, और वह बेहोश होकर फ़र्शपर गिर पड़े। सुपरिन्टेण्डेण्टने तुरन्त सिपाहियोंको रोक दिया। सुपरिन्टेण्डेण्ट ने राजनीतिक व्यक्तियोंको समझाना चाहा कि मैंने दाढ़ी पकड़कर उठाया नहीं, बल्कि सिर्फ ठुड्डी छुई थी। पृथ्वीसिंह एक सेलमें डाल दिये गये, जहाँ बिना दवा-दारूके वे कुछ दिनमें अच्छे हो गये। अब उन्होंने किसीसे न बोलनेका निश्चय कर लिया। जेलके अफसर आते, बात करना चाहते, मगर वह आँख मूँदकर पल्थी मारे बैठे रहते। कुछ दिनों बाद उन्हें अस्पताल भेज दिया गया, और बाबा सोहनसिंह उनकी देख भाल करनेके लिए भेजे गये। मित्रोंने समझा कि अब जरूर दिमागमें कोई फितूर हुआ है। पृथ्वीसिंहने बाबाको विश्वास दिला दिया कि उनका

दिमाग दुरुस्त है। तब भी आँख-मुँह मूँदे उन्होंने अपनी तपस्या जारी रक्खी। सुपरिन्टेण्डेण्ट आता, कभी आँखोंको कभी मुखको खोलकर देखता, और कभी सारे शरीरकी परीक्षा करता। पृथ्वीसिंहको चन्द ही दिनोंमें मालूम हो गया कि समाधि तो क्या लगेगी, यह तो और आफत मोल लेनी है। उस दिन जब सुपरिन्टेण्डेण्ट सेलके भीतर आने लगा तो वह बोल उठे, "देखो, मेरे बदनको हाथ न लगाओ, सजा जो देना हो दो।" विश्वास हो गया कि यह आदमी पागल नहीं है।

तेलको फिर बारह ड्राम कर दिया। हड़ताल खतम हो गयी।

अंडमानसे प्रस्थान (अगस्त १९२१)

पृथ्वीसिंह अब अपनेको पक्का असहयोगी समझते और गांधीजीका चेला बननेकी धुनमें थे। सड़ी नौकरशाहीसे किसी तरहका सहयोग करना उनके लिए महापाप था। "महाराजा" जहाज उन्हें अंडमानसे निकाल कर भारत लानेके लिए आया। सब लोग खुशी-खुशी आनेको तैयार थे। जब स्वास्थ्य देखनेके लिए वज़न करनेकी बारी आयी, तो सबने वज़न करा लिया, लेकिन पृथ्वीसिंह कैसे अपनी खुशीसे जाकर वज़न कराते, यह तो सहयोग होता! सत्रह आदमियोंके बाद अठारहवें पृथ्वीसिंहको न आते देख पहरेवालोंने अहिंसक, असहयोगी, उन्तीस सालके पृथ्वीसिंहको उठाकर तराजू पर रक्खा। सुपरिन्टेण्डेण्टने टिकट-पर लिखा :

"Poses as a martyr, is a humbug, absolutely incorrigible, needs careful handling"

("शहीद बननेका दम भरता है; मूढ़, बिल्कुल सुधरनेके अयोग्य है, सावधानीसे व्यवहार करना चाहिये।")

पंजाबी क्रान्तिकारियोंको अपने यहाँ रखनेके लिए किसी सूबेकी सरकार तैयार न थी। आखिर मद्रासने स्वीकार किया। बेड़ी पहनाये वे जेलसे जहाजपर लाये गये। तोशामारू परसे क्रान्तिकारियोंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हुई। बेड़ियोंके साथ वह अंडमान पहुँचे,

भीषण संघर्ष और मौतका सामना करके उन्होंने राजबंदियोंके लिए अंडमानके जेलको बंद कराया, और छ वर्ष बाद जुलाई या अगस्त १९२१ को अब उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया, उन्हें अफ़सोस यही था कि उन आठों शहीदोंको फिर नहीं देख सकेंगे, जिन्होंने अंडमानके नरकको बन्द करानेके लिए आखिरी कुर्बानी दी थी; साथ ही बर्मा षड्यंत्रके राजबन्दी भी तेरह-चौदह सालतक वहीं सड़नेके लिए छोड़ दिये गये थे, इसका भी उन्हें अफसोस था।

मद्रास जेलमें उन्हें एक बैरकमें रक्खा गया। अब उनकी जाँच-पड़ताल करके उन्हें प्रान्तके भिन्न-भिन्न सेन्ट्रल जेलोंमें बाँटना था। जेलर और सुपरिन्टेण्डेण्ट कैदियोंको देखने आये। सब लोग खड़े थे, लेकिन असहयोगी पृथ्वीसिंह आसन मारे पड़े थे। सुपरिन्टेण्डेण्टने दूरसे देखा। उसने चिल्लाकर कहा, "खड़े हो जाओ।" लेकिन कौन सुनता है! दूसरी बार भी चिल्लाया, लेकिन लोमस ऋषिपर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। सुपरिन्टेण्डेण्टने आकर उनके टिकटको देखा। अंडमान के आखिरी नोटको पढ़कर वह ठंडा पड़ गया। एक दिनकी बात थी, उसने सोचा काहेको बखेड़ा मोल लें।

भाग निकलने का पहला प्रयास (जुलाई १९२१)

दूसरे दिन तीन-तीन चार-चारकी टोलीमें लोगोंको भिन्न-भिन्न जेलोंके लिए रवाना कर दिया गया। दो और तथा सरदार पृथ्वीसिंह तीन कान्सटेबुलोंके साथ राजमहेन्द्री भेजे गये। शामके वक्त कलकत्ता मेलपर चढ़े। पृथ्वीसिंहने देखा, पुलिसके तीनों जवान एक पंजाबीके लिए काफी नहीं हैं। पृथ्वीसिंहने अपने साथियोंसे कहा, "यह बड़े शर्मकी बात होगी, यदि ये लोग हमें राजमहेन्द्री जेलतक ले जा सकें।" साथी चुप रहे, जिसका मतलब था, वे सहमत नहीं हैं। मगर पृथ्वीसिंह इससे निराश नहीं हुए। उन्होंने अपना रास्ता सोच लिया, वह अब और अपने जीवनको सड़ानेके लिए तैयार नहीं थे।

डाक बड़ी तेजीसे दौड़ी जा रही थी। रात काफी बीत चुकी थी।

पृथ्वीसिंहकी नजर बार-बार सिपाहियोंके चेहरेपर जाती थी। अभी भी वह सजग थे। वहाँ नींदका कोई निशान न था। रातको एक बज रहा था। ट्रेन अंगोल स्टेशनपर खड़ी थी। मूसलाधार वर्षा पड़ रही थी और डिब्बेसे बाहर कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होंने सिपाहियों-की ओर देखा, वह झपकी ले रहे थे। साथी भी सो गये थे। पृथ्वीसिंहने सोचा, फिर ऐसा समय नहीं आयेगा। डाक छूटी, वेग बढ़ने लगा। जरा ही देरमें वह बाहरी सिगनलसे पार हो गयी। जंगलेसे बाहर देखनेपर कुछ नहीं दिखाई देता था। बिना इसका कुछ खयाल किये कि वहाँ पत्थर, काँटा-लकड़ी क्या है, उन्होंने डिब्बेमेंसे छलांग मार दी। जंगलेके पास केहरसिंह सोये थे। पृथ्वीसिंहका शरीर उनसे छू गया। उसने पैर पकड़ लिया। पृथ्वीसिंहने झटका दिया। पैर तो छूट गया, मगर जमीनपर जिस तरह कूदना चाहते थे, उस तरह नहीं कूद सके। उनके एक घुटनेकी हड्डी चटक गयी। उठना चाहा तो दर्दके मारे फिर गिर पड़े। तबतक खतरेकी जंजीर खींची जा चुकी थी और उन्होंने देखा, गाड़ी थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी। दो-तीन बार उठनेकी कोशिशमें वह गिर पड़े। लेकिन अब उन्हें न दर्दकी परवाह करनी थी न टुटे घुटनेकी। उन्होंने सारी ताकत लगाकर रेलकी लाइनसे दूर हटनेकी कोशिश की। आगे बढ़े तो देखा नागफनीके काँटे हैं। काँटे चुभते गये, लेकिन वह रुके नहीं। बीस गज जानेपर फिर नागफनीकी झाड़। लेकिन वहाँ पीछे लौटनेका कोई सवाल नहीं। सिपाही अब भी आवाज लगा रहे। सारे बदनमें न जाने कितने सौ नागफनीके काँटे चुभे थे। उनकी आँख बच गयी। वर्षाके पानीसे धानके खेत लबालब भरे थे। कहीं-कहीं पानी ज्यादा था। और घायल पैरसे चलनेकी जगह तैरना अच्छा मालूम होता था। कितनी ही देर बाद वह एक दीवारसे जाकर टकराये! वर्षा अब भी बन्द नहीं हुई थी। उन्हें कुछ नहीं दिखलाई पड़ता था। बड़े कष्ट और सावधानीसे दीवारके ऊपर चढ़कर वह दूसरी तरफ उतरे। ट्रेन अब भी खड़ी थी। लेकिन उस अँधेरेमें

भागे कैदीको ढूँढ़ना वैसे ही आसान न था, वहाँ उन्हें दो और कैदियोंको भी सँभालना था। पृथ्वीसिंह अपने शरीरको इसी तरह घसीटते-घसीटते चलते गये! अब दूर उन्हें एक रोशनी दिखाई दी। बदनमें सब जगहसे खून बह रहा था, और दर्द तो रोम-रोममें था। हिम्मत बाँधकर उन्होंने उस रोशनीतक पहुँचनेकी कोशिश की।

वह एक छोटा-सा गाँव था। कुछ बड़े घरोंमें चिराग जल रहे थे। वह एक बड़े घरमें जाना चाहते थे। उसी वक्त उनकी नजर एक छोटी झोंपड़ी पर पड़ी, जिसके भीतर एक छोटा-सा दिया टिमटिमा रहा था। पृथ्वीसिंह आसानीसे समझ सकते थे कि झोंपड़ीका मालिक कोई गरीब है। बड़ोंके कड़वे तजर्बे उन्हें अनेक हो चुके थे, इसलिए उन्होंने झोंपड़ीका रास्ता लिया। वहाँ एक मिट्टीके तेलकी डिबिया बल रही थी। दो गरीब औरत-मर्द लकड़ीके तख्तोंपर अलग-अलग सोये थे और एक कोनेमें एक छोटा-सा बछड़ा बँधा हुआ था। झोंपड़ी इतनी छोटी थी कि उसमें और जगह नहीं रह गयी थी। पृथ्वीसिंह कुछ देर तक एकटक देखते रहे। मुँहसे शब्द निकालनेकी हिम्मत नहीं होती थी। घायल पैरको आराम देनेके लिए जब उनका पैर जरा हिला, तो बेड़ीने झब किया। औरतने आँख खोल दी। इस रातमें भूत जैसे एक आदमी को सामने खड़ा देख वह घबड़ा उठी और वह चिल्लाना ही चाहती थी कि पृथ्वीसिंहने एक अँगुलीको ओठोंपर रक्खा। स्त्री चुप रही और उसने अपने हाथको फैलाकर पतिको जगाया। खड़े होकर उसने काली-काली दाढ़ी और बड़े-बड़े बालों वाले पृथ्वीसिंहके चेहरेको एक बार देखा तो उसके होश गुम हो गये। छाती पर की बंडी और नीचेके जाँघियाने और कसर पूरी कर दी। इसके बाद भी जो कमी थी, वह पूरी कर दी हाथ और खूनसे लथपथ कपड़ों ने। पृथ्वीसिंहने उसे भी इशारेसे चुप रहनेके लिए कहा। अभीतक उनकी नजर बेड़ीपर नहीं पहुँची थी। पृथ्वीसिंहने अपनी बेड़ीको हिलाया। शायद अब उनकी कुछ समझमें आया। वे कुछ बोले, मगर पृथ्वीसिंहको तेलगूका एक भी

शब्द मालूम न था। झटसे उनके दिमागमें कोई खयाल आया, और वह बोल उठे, "कांग्रेस; स्वराज्य, महात्मा गांधी।"

मालूम हुआ, ये शब्द नहीं, जादूके मंतर हैं। उनकी आँखें और मुँहकी आकृति बतला रही थी, कि वे सहायता करनेको तैयार हैं। वे दोनों तख्तोंके बीच फर्शपर बैठ गये और इशारेसे बताया कि इन बेड़ियोंको हटाना है। पासमें एक लोहेका टुकड़ा, शायद हलका फाल पड़ा था। उन्होंने उसकी तरफ इशारा किया। आदमीने उस लोहेसे बेड़ीको खोलना चाहा, मगर वह ज्यादा मजबूत थी। पृथ्वीसिंहने लोहेको खुद अपने हाथमें ले लिया। उस वक्त न जाने कहाँसे गजबकी ताकत आ गयी थी और कड़ोंके मुँहको उन्होंने खोल दिया। बेड़ी पैरोंसे निकल गयी। बेड़ी और जाँघियेको भी उतार दिया और इशारेसे बताया कि इन्हें खोदकर जमीनमें गाड़ दो। अब उनके बदनपर केवल एक लंगोट था। उन्होंने इशारेसे एक लुंगी माँगी, मगर गरीबके पास कोई कपड़ा न था। एक छोटेसे चीथड़ेसे अपने घायल घुटनेको बाँधा। चलनेके लिए ताकत तो नहीं रह गयी थी, मगर भिन्सार हो रहा था, और किसी सुरक्षित जगहकी तलाशकी जरूरत थी। पृथ्वीसिंहने समझा, अब बड़े घरमें जानेसे कोई हर्ज नहीं। जब वह उधर बढ़ने लगे, तो गरीबने हाथ पकड़कर कुछ कहा। पृथ्वीसिंहने समझा कि नहीं जाना चाहिये, यहाँ खतरा है। आदमीने उन्हें गाँवके बाहर लाकर छोड़ दिया। किधर जाना चाहिये इसका कोई पता नहीं।

वर्षा अब भी बन्द होना नहीं चाहती थी, लेकिन पृथ्वीसिंहको आगे जाना ही था। तैरते, लँगड़ाते वह आगे बढ़ते गये। बहुत-सा खून निकलनेसे कमजोरी अलग थी, उस परसे भूख, फिर यह चलना; लेकिन वह अपनी स्वतंत्रताको दोनों हाथोंसे पकड़े हुए थे, उसे किसी कीमतपर भी छोड़नेके लिए तैयार नहीं थे।

चलते-चलते वह रेलवे लाइनपर पहुँचे। दोनों तरफ पानी था और लाइन छोड़कर जानेका कोई रास्ता न था। स्वस्थ शरीर और लम्बी

दाढ़ीसे वह एक साधु समझे जाते, लेकिन शरीरमें घाव और काँटे चुभे हुए थे। अब वर्षा बन्द हो गयी और सूरज भी बादलोंको फाड़कर निकल आया। वह लाइनके पास बैठ गये, और खेतके पानीसे घावको धोने लगे। काँटोंको भी जो निकाल सके निकाला। थकावटके मारे वहीं भीगी जमीनपर पड़ गये। सूर्यकी कोमल किरणोंने थपकी दी और नींदने आकर सारे दुःख-सुख भुला दिये। जाती हुई ट्रेनके इंजनने सीटी दी, तब कहीं जाके नींद खुली। सारा बदन जकड़ गया था। हिम्मत करके एक झाड़ीसे उन्होंने एक बड़ी लकड़ी तोड़ी और उसका सहारा लेकर चलने लगे। आसपास खेतोंमें छातीभर पानी था, इसलिए रेलवे लाइनको छोड़कर चलना सम्भव नहीं था। वह तेनालीकी तरफ जा रहे थे। अब बचनेकी आशा बहुत कम रह गयी थी।

गिरफ्तार

एक स्टेशनपर पहुँचे। उसी वक्त सामनेसे एक पुलिसका सिपाही आता दिखाई पड़ा। अंगोल जिलाका सदर है। वहाँसे पुलिसकी टोलियाँ पृथ्वीसिंहको ढूँढ़नेके लिए भेजी गयी थीं। कान्स्टेबलने समझ लिया, लेकिन पृथ्वीसिंहकी शारीरिक अवस्थाको देखकर उसका दिल द्रवित हो गया। अपनी जगहपर ले जाकर उसने उन्हें खानेके लिए कुछ भात दिया, फिर वह अफसरको खबर देने गया। चन्द मिनटोंमें पृथ्वीसिंह पूरी तरह पुलिसकी टोलीके हाथमें थे! उनका मनोबल बिखर गया था, और शरीर शिथिल था। उस वक्त जो बिस्तरेपर पड़े तो आठ दिन तक न उठ सके।

जिस जगह वह गाड़ीसे कूदे थे, गिरफ्तारीकी जगह वहाँसे १६ मील पर थी। घायल, अंग-अंगमें काँटे छिदे वह कैसे उतनी दूर पहुँच सके, यह बड़े आश्चर्यकी बात थी। पुलिस अंगोल लेकर गयी। १९२१ के असहयोगकी आँचसे गुजरी जनता अब वह सात साल पहलेकी जनता न थी। बहादुर राजबन्दीके भागनेकी खबरको चारों ओर फैलानेमें पुलिसकी सरगर्मी खास हाथ रखती थी। चारों तरफसे लोग

इस वीरके दर्शनोंके लिए आने लगे। काउंसिलके एक ईसाई सज्जन इस साहसीको देखनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। उन्होंने पृथ्वीसिंहकी अवस्था देखी और एक जोड़ा कपड़ा देनेकी इच्छा प्रकट की। पृथ्वीसिंहने लेना स्वीकार किया। चार घण्टे बाद उक्त सज्जनने दो कमीज, एक जोड़ा धोती और दूसरे कपड़े भेजे। पृथ्वीसिंहने उन्हें लेकर एक कोनेमें रख दिया, विदेशी कपड़ोंको वह कैसे पहन सकते थे? जब लोगोंको कारण मालूम हुआ, तो उन्होंने खद्दरकी कमीज और धोती देनी चाही, लेकिन उसके लेनेकी आज्ञा न थी।

जब चलने-फिरने लायक हो गये, तो पृथ्वीसिंहको अस्पताल भेजा गया। उन्होंने डाक्टरसे काँटोंके निकालनेके लिए कहा, लेकिन दो-दो तीन-तीन सौ काँटे निकालनेकी फुर्सत कहाँ। वह धीरे-धीरे अपने ही निकालनेके लिए छोड़ दिये गये। एक छोटी-सी कंकड़ी दाहिनी जाँघमें नीचे घुस गयी जो निकलनेका नाम नहीं लेती थी।

अस्पतालसे उन्हें मजिस्ट्रेटकी कचहरीमें ले जा रहे थे। उनके बदन पर सिर्फ एक लंगोटी थी। पुलिसवाले जिस समय उन्हें अंगोलकी सड़कोंसे ले जा रहे थे, जगह-जगह इतनी भीड़ जमा हो जाती कि पुलिसले लिए आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता। लोग जगह-जगह पृथ्वीसिंहको बोलनेके लिए मजबूर करते। कितने ही अच्छे-अच्छे वकील मुकदमेकी पैरवी करनेके लिए तैयार थे, मगर पृथ्वीसिंह अंग्रेजी अदालतको मानें तब न? वह तो अपने पैरसे चलकर अदालतके भीतर जानेके लिए भी तैयार न थे। जजने दो दिनतक मुकदमा करनेके बाद एक सालकी सजा देते हुए लिखा था, "सारे शरीरमें इतने जख्मोंके होते हुए अभियुक्त १६ मील कैसे जा सका, यह समझना बहुत मुश्किल है; लेकिन गाड़ीसे कूदनेकी जगहसे १६ मील पर वह पकड़ा गया, यह निर्विवाद है।"

राजमहेन्द्री जेलमें

फैसलेके दिन ही पृथ्वीसिंहको राजमहेन्द्री जेलमें भेज दिया गया।

अंगोल सब-जेलके सुपरिण्टेण्डेण्टने विदाई देते वक्त कहा था, "पृथ्वीसिंह, तुम्हारा जीवन तुम्हारे हाथमें देशकी थाती है, इसे फेंक देनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुमने चलती ट्रेनसे कूदकर अपने जीवनके साथ जैसा बर्ताव किया, वह केवल पागलपन था। यह निरा संयोग था, जो तुम मौतसे बच गये। निराश मत होओ, जेलसे निकलकर राष्ट्रकी सेवा करनेका फिर तुम्हें मौका मिलेगा।" दो सिपाही पृथ्वीसिंहको लेकर रवाना हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "हम आपको कोई कष्ट नहीं देना चाहते। आप कौन हैं, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। हमारे पास जीविकाका कोई साधन नहीं है। हमारे ऊपर परिवारका बोझ है ऐसा करें जिसमें हमारा सत्यानाश न होने पाये।" पृथ्वीसिंहके दिलमें करुणा उमड़ आयी, उन्होंने इतना ही कहा, "तुम घबड़ाओ नहीं, बस मेरे पीछे पीछे जेलके फाटक पर चले आओ।"

रातकी उसी ट्रेनसे वह राजमहेन्द्रीके लिए रवाना हुए थे। सैकड़ों नौजवान विदाई देनेके लिए स्टेशनपर उनका इन्तिजार कर रहे थे। उधर राजमहेन्द्रीमें भी खबर पहुँच चुकी थी। लोग पहले ही स्टेशनपर पहुँच गये थे। पुलिसवाले चुप थे। लोग उन्हें गोदावरीकी ओर ले गये। पवित्र धारामें उन्होंने स्नान किया, फिर तीनों जनोंको सुन्दर भोजन करा, घोड़ा-गाड़ीपर चढ़ाकर सेण्ट्रल जेलके फाटकपर पहुँचा दिया गया।

जेलरको खबर मिली। वह अपने बँगलेसे देखनेके लिए आया। पृथ्वीसिंह वैसे ही बैठे रहे। जेलरने जो एंग्लो-इण्डियन था—इसे अपने रोबके खिलाफ समझा। वह दूर ही से चिल्लाने लगा, और नजदीक आकर जबरदस्ती उठानेकी धमकी देने लगा। पृथ्वीसिंहने कहा, "पहले मेरे टिकट पर क्या लिखा है, पढ़ लो।" पढ़कर वह कुछ ठंडा हो गया।

पैरके घावमें पीब भर गयी थी, जिससे कोई कैदी उस बैरकमें रहना नहीं चाहता था। सुपरिन्टेण्डेण्ट आया; उसने भी पृथ्वीसिंहको

बैठा देखकर गाली देनी शुरू की। गालीका उसे जवाब मिला। उसने पृथ्वीसिंहको फाँसी घरकी सेलमें भेजवा दिया। सुपरिन्टेण्डेण्ट एंग्लो-इण्डियन था और डाक्टर अंग्रेज, तीनों ही अपने सामने किसीको कुछ न समझते थे। पृथ्वीसिंह ४ बजे सबेरे ही उठते, और १० बजे दिनतक पूरे छः घंटे आँख मूँदे आसन मारे बैठे रहते। बोलना भी शायद ही होता। जेलके सिपाही और पहरेवाले कैदी समझते कि यह कोई जोगी महात्मा हैं। महात्माको खुश रखनेकी सभी कोशिश करते और खाने-पीनेकी जो चीज स्वीकार कर सकते, वह उनके पास पहुँचती रहती। लेकिन एंग्लो-इण्डियन जेलर ऐसे मिथ्या-विश्वासोंको माननेवाला न था। एक दिन सबेरे पृथ्वीसिंहको न उठते देख उसने सिपाहियोंको जबरदस्ती उठानेके लिए कहा। सिपाहियोंने साफ इनकार कर दिया, "हुजूर, यह कोई जोगी पुरुष हैं, हम इन्हें रात-दिन भजनमें देखते हैं। हम इनके शरीरमें हाथ नहीं लगा सकते।" जेलर उस दिन चला गया। दूसरे दिन हुक्म-बरदार कैदी पहरेवालोंको लेकर पहुँचा। सेल-का दरवाजा खुलवाकर उसने चिल्लाकर कहा, "पकड़ो सालेको।" गाली बर्दास्त करना पृथ्वीसिंहके बूतेसे बाहरकी बात थी। उन्होंने भी गाली देकर ललकारा कि यदि हिम्मत है तो नजदीक आओ। जेलरने उछलकर एक डंडा पृथ्वीसिंहके सरपर मारा। उन्होंने झपटकर जेलरकी गर्दन पकड़ ली और एक दो घुटने लगाये। चालीसों आदमी पृथ्वीसिंह पर टूट पड़े और जेलर जान लेकर वहाँसे भागा। पृथ्वीसिंह चार घंटे बेहोश रहे और फिर उन्हें अपने भाग्यपर छोड़ दिया गया। कुछ दिनोंमें वे अच्छे हो गये। जेलर फिर कभी उनकी सेलके भीतर नहीं गया।

अब हजारीबागसे कुछ और राजबन्दी आ गये थे; पंडित जगतराम भी राजमहेन्द्री भेज दिये गये। उन्हें अपना पंजाबी खाना अलग बनानेकी इजाजत थी। पृथ्वीसिंहको अब खानेकी कोई तकलीफ न थी।

जेलकी त्रिमूर्ति सजा देते-देते हार गयी, रह गया था सिर्फ फाँसी

चढ़ाना और बेत मारना। फाँसी चढ़ाना उनके हाथमें न था और बेत मारनेपर बाहर हल्ला होनेका डर था। आखिरमें उन्होंने निश्चय किया कि इसे पागल करके पागलखानेमें भेज दिया जाये! मित्रोंको जब मालूम हुआ, तो घबड़ाये। उन्होंने पृथ्वीसिंहको समझानेकी कोशिश की। लेकिन पृथ्वीसिंहको पागलखाना कोई डरावनी चीज नहीं मालूम होता था। इसी वक्त सिक्ख कैदियोंके साथ बुरे बर्तावकी खबरें पंजाबमें पहुँची थीं और उसके लिए वहाँ बहुत आन्दोलन हो रहा था। भिन्न-भिन्न जेलोंमें सिक्ख राजबन्दियोंको देखनेके लिए डेपुटेशन भेजा गया। सरदार तेजसिंह चूड़काना दो और सज्जनोंके साथ राजमहेन्द्री जेल देखने आये। सरदार तेजासिंह मार्शल-ला के कैदी बन अंडमानमें रह चुके थे और वह पृथ्वीसिंहको अच्छी तरह जानते थे। राजबंदियोंसे मिलवाकर जेलर सुपरिन्टेण्डेण्ट और डाक्टर उन्हें पृथ्वीसिंहके पास ले आये। उन्होंने सारा किस्सा सुना और देशके नामपर कहा कि इस जिदको छोड़ो। सुपरिन्टेण्डेण्टने दो घंटेका समय दिया। पृथ्वीसिंहने चूड़कानाकी बात स्वीकार कर ली! दूसरे दिन डाक्टरने परीक्षा की और कहा कि छ दिनके भीतर अपने लिए कोई काम चुन लो। पृथ्वीसिंहने अपने लिए दो काम चुने—(१) दो सौसे ऊपर असहयोगी राजबन्दियोंको हिन्दी सिखाना और (२) बीमारोंकी सेवा करना। अधिकारियोंने मंजूर किया, यद्यपि यह कड़वी गोली थी।

आज आँध्रमें हिन्दीका काफी प्रचार है, लेकिन १९२१ में इसके आरंभ करनेवालोंमें पृथ्वीसिंहका नाम पहले आता है। एक महीनेसे ज्यादा वह हिन्दी नहीं पढ़ा सके। मद्रास सरकारने नहीं पसन्द किया कि उन जैसा क्रांतिकारी आंध्रके तरुणोंके सम्पर्कमें आवे। हाँ, अस्पतालमें उनका काम जारी रहा। राजमहेन्द्री जेलमें आन्ध्र देशके डाक्टर सुब्रह्मण्यम्, बुलस् साम्बमूर्ति, जैसे बड़े-बड़े नेताओंसे उनकी मित्रता हुई। साम्बमूर्ति अब भी उन दिनोंको बड़े स्नेहसे याद करते हैं, जब वह तरुण थे।

राजमहेन्द्रीसे पहले-पहले उन्होंने एक पत्र अपने पिताके पास लिखा, जिसमें मालूम हो कि उनका पुत्र अब भी जीवित है।

सभी पंजाबी राजबन्दी उत्तरी भारतके किसी जेलमें भेज देनेके लिए अर्जी दे देकर थक गये, मगर किसीने न सुना। इसी समय ऐसी स्थिति पैदा हुई कि सरकारको स्वयं उन्हें दूसरे जेलमें भेजनेके लिए मजबूर होना पड़ा। उस वक्त आन्ध्रके कितने ही जिलोंमें रम्या-पितूरी (रम्याके गदर) का बड़ा जोर था।

सीताराम राजू नामक एक बहादुर तरुणने अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ युद्ध-घोषणा कर दी थी। राजूका दल धीरे-धीरे बहुत मजबूत हो गया। सरकारके नाकों दम था। तीन सालतक उसने सरकारकी नींद हराम कर दी। आन्ध्रके जंगलों और पहाड़ोंमें उसके छिपनेकी जगहें थीं, जहाँसे कभी किसी थानेपर और कभी किसी कचहरी पर वह टूट पड़ता। वह पहलेसे सरकारको खबर देकर हमला करता, लेकिन राजूकी मशीनके सामने सरकारी मशीन बहुत सुस्त थी, और वह हाथ नहीं आता। राजूके पास भी किसीने पृथ्वीसिंहकी बहादुरीकी बातें पहुँचायीं। राजूने पृथ्वीसिंहको राजमहेन्द्री जेलसे निकालनेका संकल्प किया। राजमहेन्द्रीमें अफवाह उड़ रही थी कि राजू जेलपर हल्ला बोलने-वाला है। जेलमें भी बहुत आतंक छा गया था। उसकी हिफाजतके लिए अतिरिक्त-पुलिस बुलायी गयी। राजमहेन्द्रीके पासके एक स्टेशनपर राजूने सफलता-पूर्वक आक्रमण भी किया।

अब पृथ्वीसिंह जैसे क्रांतिकारियोंको राजमहेन्द्रीमें रखना सरकारने खतरेकी बात समझी। उस वक्त पंडित जगतराम, सरदार धीरसिंह, सरदार करतारसिंह और सरदार पृथ्वीसिह चार उत्तर भारतीय राजमहेन्द्री में अंग्रेजी भाषा जाननेवाले थे। तै हुआ था कि पंडित जगतरामको जबलपुर भेजा जाय और बाकी तीन आदमियोंको नागपुर सेन्ट्रल जेल।

दूसरी छलांग (२९ नवम्बर १९२२)

मित्रोंसे मिलकर चारों जने सिपाहियोंके साथ ट्रेन पर चढ़े।

स्टेशनपर कितने ही लोग मिलने आये। अंग्रेज सारजंट भीड़ देख कर घबड़ा गया, यद्यपि उसके पास सात कान्सटेबिल थे। पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंके हाथोंमें न हथकड़ी थी, और न पैरोंमें बेड़ी। उनके शरीरपर कैदियोंके नहीं, साधारण कपड़े थे। सैकड़ोंकी भीड़में उनका निकल जाना बहुत आसान था, किन्तु उनके दिलमें इसका जरा भी खयाल नहीं था। ट्रेन बेजवाड़ा पहुँची। यहाँसे उन्हें दूसरी ट्रेन पकड़नी थी, लेकिन अभी भी उन्हें हैदराबाद और भुसावलमें गाड़ी बदलनी थी। इन जगहों पर भी पृथ्वीसिंह दो सिपाहियोंके साथ खानेकी चीजें लेने गये थे। उनके लिए दो सिपाही कुछ नहीं थे, और अपने सादे कपड़ोंमें वह आसानीसे निकल सकते थे; लेकिन उनके दिलमें भागनेका कोई खयाल नहीं था। भुसावलमें वह नागपूरकी गाड़ीमें बैठे। गाड़ी तेजीसे चलने लगी। भागते नजारेमें नागफनीकी बाढ़ सामने आयी, पंडित जगतरामने पूछ दिया,—"ट्रेनसे कूदकर क्या तुम इन काँटोंको पार कर सकते हो?" पृथ्वीसिंहने मुस्करा दिया, उनके दिलमें ऐसा कोई विचार नहीं था। जगतराम उसी वक्त सामने की बेंचपर जाकर बैठ गये। पृथ्वीसिंह जंगलेके पास बैठे थे। सारजन्टको कुछ चिन्ता तो हुई, मगर बोलनेकी हिम्मत न हुई। उसने जगतरामसे कहा, इन्हें कह दो कि जँगलेसे अलग हो जायँ। पृथ्वीसिंहको अभी तक कोई खयाल नहीं आया था। वह दूसरी ही दूसरी बातोंके सोचनेमें गर्क थे। जब जगतरामने सारजन्टकी बात कही, तो पृथ्वीसिंहको बुरा लगा, और उन्होंने जँगला छोड़नेसे इनकार कर दिया। सारजन्टने दो कान्सटेबलोंको इनके पास बैठनेका हुक्म दिया। पृथ्वीसिंहने इसे भारी अपमान समझा और उनका दिमाग तेजीसे सोचने लगा, शायद यह अपनी होशियारीके बलपर मुझे दूसरे जेलतक पहुँचानेका गर्व करता है। क्या मैं सिखलाऊँ इसे कुछ? लेकिन उन्होंने अपने मनको समझाया और वह खिड़की छोड़ बीचकी बेंचपर कम्बल बिछाकर लेट गये। सारजन्ट भी पासही में था। चन्द ही

घन्टे चलनेके बाद वह गम्भीर निद्रामें चले गये। उन्होंने स्वप्नमें देखा, कोई कह रहा है, "क्यों सोये हो, उठो, यही समय है"। उनकी नींद खुल गयी। देखा बाकी सभी सो गये हैं, सिर्फ तीन सिपाही ताश खेल रहे हैं। सीटी देकर गाड़ी स्टेशन छोड़नेवाली थी। अभी भी उनके दिमागमें भागनेका कोई खयाल नहीं था। वह पाखाना खोलकर पेशाब करने गये। ट्रेनकी गति कुछ तेज होने लगी थी। पेशाब करते-करते दिमागमें खयाल आया, "नहीं सचमुच यही समय है।" वह सोच रहे थे कि बाहर जाकर जँगलेसे निकलें, लेकिन देखा कि पाखानेकी खिड़कीके शीशेको नीचे गिराया जा सकता है। खिड़की बहुत छोटी थी, तो भी उसके भीतरसे उन्होंने अपने शरीरको बाहर किया। फिर कलैय्या मारके पैरोंके बल जमीनपर गिरे। रेल सिगनलसे बाहर हो चुकी थी और गति भी बहुत तीव्र थी! सिपाही अभी कितनी देरतक ताश खेलते रहे। पृथ्वीसिंह अब कैदी नहीं, स्वतन्त्र व्यक्ति थे और लम्बे अर्सेके लिए। यह २९ नवम्बर १९२२ की रात थी, चारों ओर दूधकी तरह चाँदनी छिटकी हुई थी।

———

अध्याय ८

अज्ञातवास

जाड़ेका दिन, चाँदनी रात, लेकिन उस ऊँची-नीची पहाड़ी जमीन-में जब वह तेजीसे चल रहे थे, तो प्यासका जोर होना स्वाभाविक था। पहली बारके साहसके वक्त पानीकी अधिकताने पृथ्वीसिंहको मुश्किलमें डाला था और अब एक-दो मील दौड़नेके बाद कड़ी प्यास लगी हुई थी। वहाँ पानीका बिलकुल पता न था। चाँदनी रातमें वह आस-पास काफी दूरतक देख सकते थे, लेकिन स्थान बिलकुल सुनसान, बियाबान था। रेलकी लाइनको वह पहले ही दूर छोड़ चुके थे और अब रास्तेका पता लगाना मुश्किल था। उन्होंने अन्दाजसे एक दिशाको चलना शुरू किया। दो बार सड़कोंकी चौमुहानियाँ मिलीं। आगे एक कुआँ मिला, वह बहुत गहरा था। पानी निकलनेका कोई साधन न था। कुएँके पास एक गड्हा था जो चाँदनीमें पंकसे भरा मालूम होता था। लेकिन हाथसे छूनेपर मालूम हुआ कि अंगुल आध-अंगुल पानी है। उन्होंने चारों हाथों-पैरोंके बल जीभसे चाटकर प्यास बुझानेकी कोशिश की और फिर चल पड़े।

अबकी बार भेष खतरेका नहीं था। उनके शरीरपर पाजामा, कुर्ता और पगड़ी थी, जिसके साथ काली लम्बी दाढ़ी भद्र वेषको प्रकट करती थी। कोई सन्देह करनेका वहाँ चिह्न न था। सबेरे ४ बजे तक वह चलते गये, तब उन्हें एक पक्की सड़क मिली। आध घण्टा और जानेपर उन्हें मीलका पत्थर मिला जिसपर लिखा था "अमरावती दो मील"। अभी भी उनको सन्देह था, लेकिन आगे "अमरावती एक मील" मिला। अब अमरावती भी नजदीक थी और सूर्योदय भी। सबसे ज्यादा

चिन्ता हुई किसके पास जायँ। उसी तरह चलते-चलते वह शहरके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँच गये। एक बड़े हालके दरवाजेपर एक साइन बोर्ड टँगा हुआ था। एक कमरेमें रोशनी दिखलाई पड़ रही थी, उसके भीतर एक विद्यार्थी था। पृथ्वीसिंह सीधे उसके पास गये और कहा कि मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। उसने एक भी सवाल नहीं पूछा और जरा-सा इन्तजार करनेके लिए कहा। जरा-सी प्रतीक्षाके बाद तरुण कपड़ा पहनकर बाहर निकलकर बोला, "मैं क्या मदद कर सकता हूँ?" पृथ्वीसिंहने कहा, "मेहरबानी करके मुझे शहरके सबसे सच्चे देशभक्तके पास ले चलो; मैं बहुत जरूरी कामसे आया हूँ।"

उसने फिर कोई सवाल नहीं किया और पृथ्वीसिंहको साथ लेकर चल दिया। दोनों एक बड़े मकानपर गये, लेकिन मालूम हुआ, मकान-मालिक बाहर गया हुआ है। पृथ्वीसिंहने कहा, "अच्छा तो दूसरे सच्चे देशभक्तके पास ले चलो" ? वहाँ भी वही बात हुई। तीसरी जगह मकान-मालिक को अनुपस्थित देखकर पृथ्वीसिंहको कुछ निराशा-सी हुई। उन्होंने फिर तरुणसे कहा, "अच्छा, क्या इन तीनोंके अतिरिक्त और भी कोई है?" उसने जरा देर सोचकर कहा, "हाँ, डाक्टर वरहाडपांडे।" गृहपति घरपर थे। किवाड़पर दस्तक लगाते ही वह बाहर चले आये। पृथ्वीसिंहने कहा, "क्या आपका ही नाम डाक्टर पांडे है। उत्तर मिला, "हाँ।" पृथ्वीसिंहने तरुणको धन्यवाद दे बिदा किया। तरुण दो घण्टेतक पृथ्वीसिंहके साथ घूमता रहा, उसे यह भी नहीं मालूम कि यह दाढ़ीवाला अजनबी आदमी किसलिए यह सब कुछ कर रहा है, तब भी उसने कोई सवाल नहीं पूछा। डाक्टरको इतने सबेरे एक अजनबी आदमीको देखकर कौतूहल होना जरूरी था। बैठनेके लिए कहा वह पृथ्वीसिंहके चेहरेकी ओर देखने लगे। तब भी उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। पृथ्वीसिंहने बिना पूछे अपनी सारी कथा कह सुनायी। वह चुपचाप सब सुनते रहे और अन्तमें बोले, "अच्छा, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?" पृथ्वीसिंहने कहा, "एक कैंची और

अच्छा-सा अस्तुरा लाइये।" वह दोनों चीजें ले आये। फिर कहा, "अब हजाम बन जाइये।" दाढ़ी और केस सफाचट कर दिये गये। डाक्टरने फिर पूछा, "अब क्या?" "एक जोड़ा कपड़ा लाइये।" वह भी आ गया। पृथ्वीसिंह खद्दरके उस धोती कुर्तेमें असहयोगी बन गये। डाक्टरने फिर पूछा, "अब क्या?" "इन सारे कपड़ोंको जला दीजिये, हो तो एक जोड़ा चप्पल दीजिये।" चप्पलें भी आ गयीं। एक घण्टेके भीतर ही पृथ्वीसिंह बिलकुल दूसरे बन गये। जिस वक्त यह नेपथ्य-परिवर्तन हो रहा था, उस वक्त डाक्टरने कोई और बात न की। अब उन्होंने पूछा, "तुम्हें जाना कहाँ है? और कैसे जानेका प्रबन्ध करोगे?" यह सवाल मुश्किल था। घरकी चीजोंको देखकर पृथ्वीसिंह जान सकते थे कि डाक्टर गरीब हैं। संकोच करते हुए भी उन्हें कहना पड़ा कि मुझे बम्बईका एक टिकट चाहिये। डाक्टरके पास एक भी रुपया न था। डाक्टरने कहा, "मेरे पास रुपया नहीं है, लेकिन अपने दोस्तसे माँगने जा रहा हूँ।"

शायद तड़के ही रुपयेकी क्या जरूरत है, यह सवाल दोस्तने किया हो, अथवा डाक्टरने अपने दोस्तको काफी विश्वास-पात्र समझा हो, उन्होंने साहसी तरुणकी सारी गाथा कह सुनायी। मित्र डाक्टरकी बात पर विश्वास करनेको तैयार न था। उसने कहा, "यह बिलकुल असम्भव है। सी. आई. डी. का जाल है। वह जरूर तुम्हें किसी राजनीतिक मुकदमेमें फँसाना चाहता है।" डाक्टरने कोई तर्क-वितर्क नहीं किया। उन्होंने कहा, "मैं नवागन्तुकपर पूरा विश्वास करता हूँ। उस आदमीकी आँखें ही बतलाती हैं कि वह सत्य बोल रहा है। तुम उसे एक बार अपनी आँखोंसे देखो तो।" डाक्टर पृथ्वीसिंहको उनके पास ले गये। उनके मित्रने बात-चीत नहीं की, सिर्फ दूरसे देखा। बम्बई जानेके लिये रुपया मिल गया। डाक्टर उन्हें ट्रेन पर बैठा आये।

ट्रेन पर लोगोंको कहते सुना कि पुलिस किसी भगोड़े कैदीकी तलाशमें हैं। पृथ्वीसिंहका चेहरा बदल चुका था।

बम्बईमें

बम्बई जाते वक्त ट्रेन भुसावलसे गुजरी। पुलिसवाले हर कम्पार्टमेंटमें झाँक-झाँककर देख रहे थे। पृथ्वीसिंहने देखा कि राजमहेन्द्रीका एक हवलदार भी ढूँढनेमें लगा हुआ है, लेकिन यहाँ वह पृथ्वीसिंह था कहाँ!

बम्बईमें उनका कोई परिचित नहीं था और न उन्होंने डाक्टर पाण्डेसे किसीके लिए परिचय-पत्र लिया था। उन्होंने अंडमानमें सुने डाक्टर नारायण दामोदर सावरकरके पास जानेका निश्चय किया। लेकिन बम्बई जैसे शहरमें बिना पतेके सिर्फ नामसे ढूँढ निकालना मुश्किल था। संयोग कहिये, उन्होंने जिस आदमीसे घर पूछा, वह उन्हें उनके आफिसपर छोड़ आया। आफिससे घर जानेमें कोई दिक्कत न हुई। अच्छा सुन्दर मकान था। देखनेसे ही मालूम होता था कि यहाँ लक्ष्मीका निवास है। पृथ्वीसिंह ड्राइंग रूममें बैठा दिये गये। चन्द मिनटोंके बाद उक्त सज्जन दूसरे कमरेसे उनके पास पहुँचे।

पृथ्वीसिंहके वस्त्र बिल्कुल मामूली थे, जिसका उस घरकी सजावटसे बिल्कुल विरोध था। डॉक्टरके सोनेका वक्त था, रात बहुत बीत चुकी थी। डॉक्टर आकर सोफेपर बैठ गये। पृथ्वीसिंहको चन्द मिनटोंतक कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि कैसे बात शुरू करें। डॉक्टर सावरकरने ही तब उनसे पूछा, "इतनी रातको किस कामसे मेरे पास आये?" पृथ्वीसिंहको कुछ हिम्मत हो आयी उन्होंने कहा, "क्या मैं आपके नजदीक आकर बैठ सकता हूँ" एक क्षणके लिए भी बिना रुके मुस्कराते हुए डॉक्टरने कहा, "हाँ जरूर आइये, यहाँ बैठिये!"

पृथ्वीसिंहने शुरू किया, "मेरा नाम है पृथ्वीसिंह। मैं अंडमानमें था। २९ नवम्बरको चलती गाड़ीसे भागा हूँ। किसी तरह कपड़े बदलकर यहाँतक पहुँचा हूँ। अब आपकी मदद चाहता हूँ। हम दोनों एक दूसरेसे अपरिचित हैं। मैंने आपका नाम सुना था और किसी तरह

ढूँढ़ते-ढूँढते यहाँ पहुँच गया !" डॉक्टर बड़े ध्यानसे पृथ्वीसिंहकी कथा सुन रहे थे। कथा समाप्त होते ही उन्होंने बड़े अकृत्रिम भावसे कहा, "आपका स्वागत है।"

पृथ्वीसिंहके भागनेकी खबर अखबारोंमें पहले ही छप चुकी थी।

खानेका समय खतम हो चुका था। डॉक्टरने नौकरको भेजकर कुछ मिठाई मँगवायी और यह कहकर वह वहाँसे बाहर चले गये कि आप इतमीनानसे खाइये।

डॉक्टरके बाहर चले जानेसे पृथ्वीसिंहके मनमें कुछ खटका जरूर होने लगा, मगर उन्होंने अपने मनकी लानत-मलामत की।

घंटा भर बीत जानेके बाद डाक्टर लौटकर आये। उनके साथ एक सुंदर तरुण था। उन्होंने तरुणसे परिचय कराया। एक क्रान्तिकारीकी सहायता करना तरुण अपने सौभाग्यकी बात समझता था। डाक्टरका स्थान सुरक्षित न था, इसलिए तरुण उन्हें एक सुरक्षित स्थानमें ले गया। ऐसे पक्के और तजर्बेकार क्रान्तिकारीको पाकर तरुण अपने हृदय-के भावोंको रोक न सका। उसने देशके लिए मरने-जीनेकी सारी उमंगों-को उनके सामने रख दिया। यह जगह गिरगाँव थानेके पास थी। पृथ्वीसिंह सबेरे-शाम कान्स्टेबलोंको अपनी ड्यूटीपर जाते देखते थे। दो और स्थान बदले गये। वह जिस तीसरे तरुणके स्थानपर गये, उसका चचा सी. आई. डी. में काम करता था। वह भी खतरेकी जगह थी।

डाक्टर सावरकरने बम्बईको सुरक्षित नहीं समझा। अब उन्हें बेलगाँव भेजनेका निश्चय हुआ। पूना होते वह बेलगाँव पहुँचे। पता उनको मालूम था। सीधे वह वहाँ पहुँच गये। एक लम्बे-चौड़े हातेके भीतर बड़ा सा बंगला था, जिसे देखनेसे ही मालूम हो जाता था कि यह सुरुचि रखनेवाले किसी धनीका मकान है। पृथ्वीसिंहके पास कोई परिचय-पत्र नहीं था। लेकिन गृहपतिको उनके आनेकी खबर मिल चुकी थी और उन्होंने स्टेशनपर एक आदमी भेज दिया था। आदमीने

समझा होगा कि चकित आँखोंको देखकर वह आनेवाले आदमीको पहचान लेगा, लेकिन चकित आँखें ही तो पुलिसको भेद बतलाती हैं। पृथ्वीसिंह ऐसे आये जैसे बेलगाँवके ही पुराने वासी हों।

देर होते देख गृहपतिको कुछ चिन्ता होने लगी थी। इसी वक्त पृथ्वीसिंह कपड़ोंकी गठरी लिये बँगलेके भीतर दाखिल हुए। गृहपतिको बहुत संतोष हुआ और यह जानकर पृथ्वीसिंहको उनसे भी अधिक संतोष हुआ, कि गृहपति बहुत कुशल है। रातहीको दोनोंने भविष्यके प्रोग्रामपर विचार किया। यद्यपि गृहपतिपर पुलिसको संदेह नहीं था, तो भी जगह खतरेकी थी और अन्तमें यही तै हुआ कि यहाँ रहना अच्छा नहीं है।

भावनगरमें (१९२३—३०)

पृथ्वीसिंहको फिर बम्बई आना पड़ा। पहलेके परिचित क्रान्तिकारी तरुण और दूसरोंसे बहुत सलाह-मशविरा हुआ। अन्तमें यही तै हुआ कि पृथ्वीसिंहका भावनगरमें ही रहना ठीक होगा। हाँ, अब वहाँ उन्हें क्रान्तिकारीके तौरपर नहीं एक साधारण आदमीकी तरह परिचय देना होगा। डाक्टर सावरकरने अपने मित्र और देशभक्त गणेश रघुनाथ वैशम्पायनको चिट्ठी लिखकर बुलवाया। वैशम्पायनजी पृथ्वीसिंहको भावनगर ले गये। काम मिला लड़कोंको अखाड़ा, कुश्ती, शारीरिक व्यायाम सिखलाना। पृथ्वीसिंह अब तीस सालके थे। उनका शरीर खूब स्वस्थ और बलिष्ठ था। वहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि एक बगीचेमें लाल सिन्दूरसे रँगी हनुमानकी मूर्तिके पास बैठकर लड़के शामको स्तुति करते थे। पृथ्वीसिंहने न अपने शैशवमें, न बर्मामेंही इसे देखा था। उनको लड़कोंकी हनुमान-भक्ति बहुत पसन्द आयी और कुछ ही समय बाद पृथ्वीसिंहने लड़कोंके हनुमानके लिए एक छोटा-सा मंदिर खड़ा कर दिया।

पृथ्वीसिंहका स्वभाव बहुत ही मधुर था। कभी-कभी वह क्रोधमें पागल भी देखे गये, मगर वहीं जहाँ कि आत्म-सम्मान खतरेमें पड़ता

दिखलाई पड़ता। भावनगरसे हजारों नर-नारी बच्चे-बूढ़े उनके सम्पर्क-में आये और सभीको उनके मधुर स्वभावने अपने स्नेहमें बाँध लिया। उनका काम बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा था। बच्चोंको बहुत नजदीकसे देखकर समझा कि यह भोला-भाला स्वभाव कितना अच्छा है। भावनगरमें भी उन्हें एक घनिष्ठ मित्र मिला। कुछ ही समयके परिचयके बाद मित्रने सोचा कि ऐसे आदमीको भावनगरसे जाने नहीं देना चाहिये। पृथ्वी-सिंहका जीवन बहुत सीधा-सादा था। उनकी आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। मित्रने अपने दोस्तोंसे किसी कामके ढूँढ़ निकालनेको कहा, किसीने पूछा, "आप अपने दोस्तके लिए क्या काम चाहते हैं।" मित्रने जवाब दिया, "चपरासीसे लेकर हाकिमतक।"

अध्याय ९

काठियावाड़में व्यायाम-शिक्षक

पृथ्वीसिंहके दोस्त वैशम्पायनकी एक समाजसेवकके तौरपर भावनगरमें बड़ी प्रसिद्धि थी। नगरके प्रमुख व्यक्ति उनका सम्मान करते थे। श्रीयुत गोपालजीभाई ठक्करने एक दिन उनसे कहा कि हमारे सनातन धर्म हाईस्कूलके लिए एक व्यायाम-शिक्षक ढूँढ़ दीजिये। मित्रने पृथ्वीसिंहसे कहा। दूसरे दिन उन्हें हेडमास्टरके पास जाना था। ठक्करने पृथ्वीसिंहके मित्रसे तनख्वाहके बारेमें जब पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया, "आप उनकी योग्यताके अनुसार नहीं दे सकते, आप अपनी योग्यताके अनुसार दे दीजियेगा!"

उत्तरप्रदेशवालोंको गुजरात और महाराष्ट्रके लोग भइया कहते हैं। भइया लोग मेहनत-मजदूरीका काम करते हैं, इसलिए उनकी नजरमें 'भइया'का अर्थ है, छोटा आदमी। बाजारमें भइयाकी कीमत बहुत कम होती है। इसलिए स्कूलवालोंने इस भइयाको १५) मासिक देना बहुत काफी समझा। खद्दरकी धोती और कुर्ता पहिने पृथ्वीसिंहने भी छगनलाल दवे हेड-मास्टरके पास पहुँचकर बड़ी नम्रतासे सलाम किया। घण्टी बजी, उनसे कहा गया कि एक अध्यापक आ रहे हैं, उनके साथ जाना। हेडमास्टरके कमरेमें बहुत सी खाली कुर्सियाँ पड़ी थीं, लेकिन भइयाको कुर्सीकी क्या जरूरत! अध्यापकके आनेतक भइयाको उसी तरह खड़ा रहना पड़ा।

अध्यापक उन्हें व्यायामगृहमें ले गये। भइयाने कई तरहकी कसरत दिखलायी। अध्यापक संतोषराम भट्ट बम्बई विश्वविद्यालयके बी. एस-सी. थे, उनको स्काउटिंगमें बहुत दिलचस्पी थी। वह अपनी

टूटी-फूटी भइया-बोली हिन्दीमें विस्तारके साथ व्यायामकी बाबत उन्हें बतलाने लगे। हिन्दी बोलनेमें उन्हें दिक्कत होने लगी। पृथ्वीसिंह गुजराती जानते नहीं थे, इसलिए उन्होंने अध्यापकको अंग्रेजीमें समझाया, पहला वाक्य जैसे ही खतम हुआ, भट्ट आश्चर्यसे उनकी ओर देखते हुए बोले, "चलिये हेडमास्टरके आफिसमें चलें।" पृथ्वीसिंहको इसका कारण नहीं मालूम हुआ कि क्यों बातको खतम किये बिना चलनेको कह रहे हैं। पृथ्वीसिंहका हाथ पकड़कर वह हेडमास्टरके कमरेमें ले चले और बोले, "यह तो कोई ग्रेजुएट मालूम होते हैं।" हेडमास्टर तुरन्त कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए और हाथ मिलाते हुए उनसे बैठनेके लिए कहा। बहुत अफसोस प्रकट करते हुए हेडमास्टर दबे बोले, "हमने समझा था, आप एक मामूली भइया हैं, इसीलिए हमने पन्द्रह रुपया महीना देनेका निश्चय किया था। कृपया कल आइये।"

पृथ्वीसिंह रास्ते भर सोचते आ रहे थे। वह अनुभव करने लगे कि उन्होंने अंग्रेजी बोलकर अच्छा नहीं किया; और तो और, अब शायद काम भी नहीं मिलेगा।

दूसरे दिन जब पृथ्वीसिंह हेडमास्टरके पास पहुँचे तो उनके दिलमें आशा बहुत कम रह गयी थी; लेकिन हेडमास्टरने बड़ी नर्मीके साथ कहा—"हमारी संस्था धनी नहीं है, इसलिए हम आपकी योग्यताके अनुसार वेतन नहीं दे सकते। आप समाजसेवक मालूम पड़ते हैं, इसलिए आशा है, आप हमारे ३०) मासिकको स्वीकार करेंगे, और अपराह्णमें बालकोंको एक घंटा व्यायामकी शिक्षा देंगे।"

पृथ्वीसिंहको बहुत प्रसन्नता हुई। दूसरे दिनसे उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया।

पृथ्वीसिंहका शरीर देखनेसेही मालूम होता था कि वह पहलवान हैं, लेकिन सिवाय दंड-बैठकके वह और कोई व्यायाम नहीं जानते थे और यहाँ बने थे व्यायाम-शिक्षक। वह अपने दिलमें अपनी कमज़ोरीको खूब महसूस करते थे। स्वस्थ शरीर, सुन्दर मुख, और सौम्य स्वभाव,

उन्हें प्रकृतिकी ओरसे मिला था, मगर यही तीन गुण व्यायाम-शिक्षकके लिए काफ़ी नहीं हैं। अब उन्होंने पुस्तकोंको अपना गुरू बनाया, और शारीरिक व्यायाम, शारीरिक स्वास्थ्य, शरीर शास्त्रके बारेमें ज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। कभी-कभी वह परेडके मैदानमें चले जाते और सिपाहियोंकी कसरतको अच्छी तरह देखते। भूख हड़ताल छोड़ बाक़ी समय अंडमानमें वह रोज दंडबैठक किया करते थे जिससे उनकी छातीका खूब विकास हुआ था, रग पट्ठे भी खूब उभड़े थे। जांघियामें उनके शरीरको देख कर भला कौन कह सकता था कि वह अच्छे व्यायाम-शिक्षक नहीं हैं। जबतक उन्हें और व्यायाम-क्रियाओंके बारेमें मालूम नहीं था, तबतक वह अपनी छाती, बाजू, जाँघ, पिंडली, और रग पट्ठोंको दिखला कर अपनी जानी हुई कसरतोंको बतलाते और जब उनका ज्ञान और बढ़ा तो शिक्षामें भी नयी बातें शामिल कीं।

काठियावाड़में शारीरिक व्यायामका बहुत कम रवाज है। पृथ्वीसिंहने बहुत जल्द तरुणोंमें व्यायामके प्रति आकर्षण पैदा किया। उन्होंने आवाज उठायी कि तरुणोंका स्वास्थ्य सबसे बड़ा धन है, व्यायामके बिना काठियावाड़ इस धनको बड़ी तेजीसे खो रहा है। उनके पुराने मित्रने भावनगरके प्रभावशाली आदमियोंको व्यायाम-शिक्षामें सहायता देनेके लिए प्रेरित किया। स्कूलमें जो वह समय देते थे, उसके बादका समय वह दूसरे तरुणोंकी व्यायाम-शिक्षामें लगाते। चन्द महीने बीतते-बीतते व्यायामके आन्दोलनके लिए सुन्दर वातावरण पैदा हो गया।

तरुण व्यायामकी बहुत-सी बातें जानना चाहते थे, लेकिन पृथ्वीसिंहकी पूँजी बहुत थोड़ी थी।

हाँ, यहाँ एक बात कहना भूल गये। जब महीनेकी तनख्वाह लेनेके बाद चपरासीने पृथ्वीसिंहको रजिस्टरपर दस्तखत करनेके लिए कहा तो उनके सामने नामका सवाल आया। उन्होंने कलम उठाकर स्वामीराव लिख दिया। उन्हें यह खयाल नहीं आया कि भइयोंमें "स्वामी" नाम शायद ही कहीं मिले, मगर 'राव' तो वहाँ छप्पन जन्म ढूँढ़नेपर

भी न मिलेगा। खैर ! गुजरात काठियावाड़के लिए तो पृथ्वीसिंह अब स्वामीराव ही बन गये, जिसे उनकी साधु-ब्रह्मचारी वृत्ति देखकर लोगों ने "स्वामी" बना दिया।

स्वामीरावके मित्रका नासिकके प्रसिद्ध व्यायाम-आचार्य, के. बी. महाबलसे घनिष्ठ परिचय था। उनके साथ बात-चीत करके इन्तजाम किया गया कि वह व्यायामके बड़े विद्यार्थियोंको कुछ व्यायाम सिखायें। महाबल अपने पुत्र और दो शिष्योंके साथ भावनगर आये। स्वामी-रावने लाज-संकोच छोड़ा और खुद भी विद्यार्थियोंमें शामिल हो गये। उन्होंने कोशिश की कि इस कलाको अधिकसे अधिक सीखें। लेकिन जेलके संघर्ष-पूर्ण जीवनने उनके शरीरको उतना लचीला नहीं रहने दिया, इसलिए वह उतने सफल नहीं हो सकते थे, जितने कि उनके दूसरे तरुण शिष्य। महाबलकी व्यायाम-विधि और उनकी शिक्षासे भावनगरके शिक्षित तरुणोंमें व्यायामके लिए काफी रुचि पैदा हो गयी। छैल-चिकनिया तरुण जो शारीरिक व्यायामको नीची निगाहसे देखते थे—भी अखाड़ेकी तरफ आकृष्ट हुए। इस सफलतासे स्वामी-रावका उत्साह इतना बढ़ा कि वह काठियावाड़के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानोंपर महाबलको ले गये।

मालिशकी कलामें निपुणता

गर्मीके दिनोंमें बम्बई प्रान्तके स्कूलों और कालेजोंमें ४० दिनकी छुट्टी होती है। पुस्तकोंको पढ़ने और महाबल जैसे विशेषज्ञोंके सम्पर्कमें आनेसे स्वामीरावको व्यायाम-कलाकी बहुत-सी बातोंके जाननेका मौका मिला। स्वामीरावने छुट्टियोंको इसी काममें लगाना चाहा। महाबल-जीने उन्हें बड़ौदाके व्यायाम-कलाचार्य माणिकरावजीके पास जानेको कहा और खुद वहाँ चिट्ठी भी भेज दी। स्वामीराव बड़ौदा पहुँचे और जुम्मादादा व्यायाम-मन्दिरके छात्रावासमें एक महीनेके लिए भर्ती हो गये। माणिकरावजीने अपने एक निपुण बलिष्ठ शागिर्दके जिम्मे लगाया, जो कुश्तीकी कलामें बहुत निपुण था। तरुणमें खूब बल था और साथ-

ही दावका ज्ञान भी। स्वामीरावके शरीरमें बल तो था मगर कुश्तीकी कला नहीं थी। तरुण स्वामीरावको एक बच्चेकी तरह जैसे चाहता वैसे उलट-पुलट देता, स्वामीराव हताश नहीं हुए। उन्होंने तै कर लिया था कि इस कलाको सीखना है। पहली यात्रामें वह बहुत तो नहीं सीख सके, मगर उन्हें इस कलाका महत्त्व मालूम हो गया, साथ ही माणिक-रावसे परिचय प्राप्त करने तथा उनका शिष्य बननेका गौरव मिला। अब काठियावाड़में वे स्वामीराव ही नहीं, माणिकरावके शागिर्द भी थे।

स्वयंसेवक संघटनका अनुभव

थ्योसोफिकल सोसायटीका भावनगरमें कोई सम्मेलन होनेवाला था, जिसके साथ प्रदर्शनी भी होनेवाली थी। सनातनधर्म स्कूलके हेड-मास्टरने विद्यार्थियोंको स्वयंसेवक बननेके लिए कहा, लेकिन सफलता नहीं हुई। सम्मेलनके प्रबन्धक इसके लिए पुलिसकी मदद लेनेकी बात सोच रहे थे। स्वामीरावको यह पसन्द नहीं आया। उन्होंने हेडमास्टर-से कहा कि जरा मुझे हर क्लासमें जाकर स्वयंसेवक बनानेकी इजाजत दीजिये। हेडमास्टर निराश थे, लेकिन उन्होंने स्वामीरावको जानेकी इजाजत दे दी। वह पहले छठे दर्जेके लड़कोंमें गये। वहाँ उन्हें जो सफलता हुई, उससे उत्साहित हो वे सातवें दर्जेमें गये। वहाँ कोई सज्जन फिलासफी और ब्रह्म-विद्याको घोलकर पिलानेमें लगे हुए थे। स्वमीरावने एक शब्दमें स्वयं-सेवक बननेके लिए कहा लेकिन कोई विद्यार्थी तैयार नहीं हुआ। वह हताश नहीं हुए। उन्होंने व्याख्यातासे चन्द मिनट बोलनेकी इजाजत माँगी, फिर कहा, "खद्दर पहिनने और गांधी टोपी लगानेका क्या फायदा, यदि तुम उस संस्थाकी सामाजिक सेवा करना नहीं चाहते, जहाँ बैठकर तुम विद्यारसका आस्वादन कर रहे हो?" व्याख्याता गुस्सेमें बोल उठे, "इसे गांधी टोपी मत कहो। वह सफेद टोपी है। इसे विद्यार्थियोंपर छोड़ दीजिये।" पूछनेपर लड़-कोंने एक स्वरसे कहा, "गांधी टोपी"। वालंटियर बननेके लिए कहने पर, कई लड़कोंने अपना नाम दिया।

स्वामीरावने वालंटियरोंको एक निश्चित समयपर निश्चित पोशाक और लाठीके साथ बुलाया। दूसरे दिन वर्दीधारी तरुण लाठियाँ सँभाले पहुँच गये। भावनगरकी जनताने कभी सम्भ्रान्त परिवारके तरुण बच्चोंको इस तरह वर्दी पहने, लाठी लिये परेड करते नहीं देखा था। कुछ प्रमुख नागरिक यह कह आलोचना करते थे—"आ माणस शा माटे नाना छोकराओंना हाथ माँ बाँसड़ा आपे छे?" (यह आदमी छोटे बच्चोंके हाथमें क्यों बाँस दे रहा है?) लड़के भी पहले कुछ शर्माते-से मालूम होते थे, खासकर लाठीकी जरूरतको तो न हेडमास्टर ही समझते थे और न गोपालजीभाई ही। सम्मेलनके बाद शामको प्रदर्शनीमें जानेके लिए बड़ी भीड़ थी। कुछ शरारती फाटकपर जमा हो गये थे, और गड़बड़ी मचानेके लिए तैयार थे। कुछ फौजी सिपाही भी उनके साथ हो बिना टिकट ही प्रदर्शनीके भीतर घुसना चाहते थे। टिकट सिर्फ चार आना था।

स्वामीराव लड़कोंको फाटकपर तैनात कर खाना खाने गये थे। उनके पास खबर पहुँची। वह दौड़े आये। प्रबन्धकारकोंसे पूछनेपर उन्होंने कहा, "जैसे हो वैसे प्रदर्शनीकी रक्षा करनी चाहिये।" स्वामीरावने अपने अखाड़ेवाले नौजवानोंको लाठी लेकर आनेके लिए कहा। सारेके सारे वहाँ पहुँच गये। अखाड़िया तरुणोंको लाठी ले खड़े देखकर शरारती वहाँसे रफू-चक्कर हो गये।

स्वामीराव भावनगरके तरुणों और उनकी वजहसे वृद्धोंमें भी बहुत प्रिय होते जा रहे थे, क्योंकि व्यायामकी रुचि फैलाकर उन्होंने सचमुच तरुणोंके स्वास्थ्यमें भारी परिवर्तन किया था। साथ ही उनके रहन-सहन और सादे जीवनने बहुतोंके दिलमें श्रद्धा पैदा कर दी। वह व्यायाम ही नहीं, खद्दरके भी बड़े भक्त थे। उन्होंने देखा, स्कूलके अध्यापकों और विद्यार्थियोंमें खद्दर पहिननेवाले बहुत कम हैं। हेडमास्टरसे कहने पर उन्होंने उन्हें सभामें बोलनेकी इजाजत दी। खड़े तो हुए सिर्फ खद्दरका गुण गानेको किन्तु उसमें भारतमाताकी गरीबी, परतन्त्रता,

आदि कितनी ही बातें बड़े करुण ढंगमें कह डाली। बोल जानेके बाद स्वामीरावको अपनी गलती मालूम हुई। श्रोताओंमें बहुतसे उन्हें और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे, "देखो इस आदमीको जिसने देशके लिए अपने सुख और आरामको ठुकरा दिया।" कोई कोई कह रहे थे, "क्या बात है, जो इतना शिक्षित और संस्कृत व्यक्ति ३० रुपल्लीकी नौकरी करता है? जरूर इसमें कोई रहस्य है।" कुछ राजनीतिक-कर्मी तो समझने लगे कि यह जरूर कोई सरकारका खुफिया है।

एक शपथ

स्वामीरावने भावनगरमें बच्चोंके क्रीड़ा-मण्डलसे अपना काम शुरू किया था। क्रीड़ा-मण्डल था कुश्ती और कसरतके लिए। अखाड़ेको जिस रूपसे उन्होंने पाया था, वह था सौ फुट लम्बा, सौ फुट चौड़ा एक खुला स्थान, जो एक बागके भीतर स्थित था। अखाड़ेके एक ओर कुआँ था और एक कोनेपर सिन्दूरसे रँगी हनूमानकी मूर्ति। यहीं बारह फुट लम्बी, बारह फुट चौड़ी जगहको खोदकर कुश्तीकी जगह बना ली गयी थी। अखाड़ेमें कुछ लाठियाँ, कुछ मुद्गर थे, जिसे मालीके जिम्मे छोड़ आते थे।

एक शामको स्वामीराव अखाड़ेकी ओर गये। दूरसे ही देखा, कुछ लड़के झाड़ू लेकर अखाड़ेको साफ कर रहे हैं और दूसरे तमाशा देख रहे हैं। स्वामीरावको यह खयाल आसानीसे आ सकता था कि हाथका काम सभीको करना चाहिये, मगर इस वक्त उन्हें यह भी खयाल आया, इस जगहको कुछ और बेहतर रूप देना चाहिये, ताकि लड़के जिस कामके लिए आते हैं, उस काममें उनका समय ज्यादा लगे। उन्होंने निश्चय किया कि क्रीड़ा-मण्डल या अखाड़ेको एक सुन्दर रूप देना होगा।

दूध और चीनी स्वामीरावका प्रिय भोजन था। उन्होंने तय किया, कि जबतक क्रीड़ा-मण्डलको सुन्दर रूप न दे लेंगे, तबतक दूध चीनी हराम है। यह प्रतिज्ञा स्वामीरावने बच्चोंके सामने ली थी। इसकी

सूचना उनके माता-पिताओंके पास भी पहुँची, लेकिन कोई सहायता नहीं कर सका। छः महीना बीते, स्वामीराव अठारह पौण्ड घट गये, लेकिन अभी भी कोई रास्ता नहीं निकला। इसी समय नयें महाराज कृष्णकुमारसिंहको गद्दी हो रही थी। उत्सव बड़ी शान-शौकतसे मनाया जानेवाला था। उस वक्त शिक्षा-विभागके अध्यक्षने स्वामीरावको भी व्यायाम-प्रदर्शन करनेके लिए कहा। प्रदर्शनमें महाराजा और उनके दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी भी आये। स्वामीरावके क्रीड़ा-मण्डलके प्रदर्शनको देखकर वह इतने प्रसन्न हुए कि सर प्रभाशंकरने वहीं हुक्म पास किया कि अखाड़ेके लिए स्वामीरावको एक सुन्दर जगह दी जाय। क्रीड़ा-मण्डलको मोतीबागमें एक जगह दी गयी। मालीको हुकुम हुआ कि बड़े वृक्षोंकी जड़ोंके पास फूलवाले पौदे लगाये जायँ, जिसमें अखाड़ेवाले तरुण सुगन्धित हवामें साँस लें। अखाड़ेके ऊपर छत भी पड़ गयी, कसरतके सामान भी काफी खरीद लिये गये। माणिकरावजीसे प्रार्थना की और उन्होंने अपने एक तरुण शागिर्द बहाउद्दीन उस्मान शेखको स्वामीरावका सहायक बननेके लिए भेज दिया। क्रीड़ा-मण्डल सचमुच ही अब भावनगरकी एक उपयोगी ही नहीं, सुन्दर और प्रसिद्ध संस्था बन गयी। क्रीड़ा-मण्डलके प्रारम्भ करने वाले थे स्वामीरावके मित्र, गणेश रघुनाथ वैशम्पायन, अब स्वामीरावने उसका नाम रख दिया गणेश क्रीड़ा-मण्डल।

× × ×

स्वामीराव लड़कोंमें जितने प्रिय थे, उतने ही अध्यापकोंमें अप्रिय। कारण था, उन्हें वह अपनी ही तरह चुस्त देखनेके लिए उनकी नुक्ताचीनी करते थे। एक दिन उनकी असिस्टेण्ट-हेडमास्टरसे व्यायामके सिलसिलेमें बहस छिड़ गयी। अध्यापक कह रहे थे कि सर प्रभाशंकर पट्टनी जिन्दगीके लिए व्यायामकी कोई जरूरत नहीं समझते। स्वामी-रावने जवाब दिया, "सर प्रभाशंकर जैसा आदमी कभी ऐसा कह नहीं सकता, और यदि कहे भी तो मेरे लिए उसका कोई मूल्य नहीं। वह

एक चतुर शासक हो सकते हैं, लेकिन व्यायामके विशेषज्ञ और डाक्टर नहीं हैं।"

अध्यापक गुस्सेमें आकर बोला, "तो तुम सर प्रभाशंकरसे भी अपनेको ज्यादा होशियार समझते हो ?"

"हाँ, जहाँतक कि व्यायामका सम्बन्ध है।"

अध्यापकने इसपर गाली निकाली। स्वामीराव उठ खड़े हुए और उनके लाल चेहरेको देखकर अध्यापक भाग गया। कुछ दूर पीछा किया, मगर फिर अपनेको सँभाला। हेडमास्टरको इसकी कोई सूचना नहीं दी और स्कूल छोड़कर चले आये। गोपालजीभाईने बहुत कोशिश की लेकिन स्वामीराव फिर लौटकर नहीं गये।

स्वामीराव जब भावनगर पहुँचे, तभी दक्षिणामूर्ति विद्याभवनके कामोंको सुनकर उनकी ओर आकृष्ट हुए। स्कूल छोड़नेके बाद भवनके नजदीक सम्पर्कमें आनेका उन्हें मौका मिला और वह भवनमें व्यायाम-की शिक्षा देने लगे। पीछे इतिहास और भूगोल भी पढ़ाने लगे। वह हिन्दी नहीं समझ सकते थे, इसलिए स्वामीराव गुजरातीमें बोलनेकी कोशिश करते, जिसमें काफी गलतियाँ होतीं और विद्यार्थियोंका मनो-रंजन होता। दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवनमें कितने ही उच्च आदर्शके अध्यापक कार्य करते थे। स्वामीरावका सम्बन्ध उनसे भी घनिष्ठ होता गया। पीछे हाथोंमें घाव हो जानेसे अस्पताल जाना जरूरी हुआ और इस तरह भवनसे सम्बन्ध छूट गया।

\+ \+ \+

स्वामीरावने अपनेको छिपानेकी पूरी कोशिश की थी, लेकिन वह एक सजीव पुरुष थे, इसलिए चौबीसों घंटे आत्म-गोपन करना मुश्किल था। किसी-न-किसी वक्त उनकी प्रतिज्ञा झलक जाती और उनके बर्ताव-से लोगोंको यह भी मालूम होता कि इतना योग्य आदमी क्यों इस तरह मामूली जीवन बिता रहा है। उस वक्त वह अपने एक सहकारी अध्यापकके साथ एक मकानमें रहते थे। रातको वह बेधड़क सोये हुए

थे। अध्यापकने आकर उन्हें जगाया और कठोर शब्दोंमें कहा, "तुम सरकारी जासूस हो। मेरे जैसे देश-प्रेमीके घरमें तुम नहीं रह सकते।" स्वामीराव कैसे अपनी सफाई देते? लेकिन वह ऐसी बातोंके लिए तैयार थे। उन्होंने अपना बिस्तरा समेटा और मुस्कराते हुए उसी रात उस घरको छोड़ दिया।

एक दिन विद्यार्थियोंके साथ (स्वामीराव) टहलने जा रहे थे। रास्तेमें सामनेसे पाँच साधु आ रहे थे। वे बहुत हट्टे-कट्टे उत्तरी भारतके रहनेवाले थे। खादीका कपड़ा और गाँधी टोपी पहिने गुजरातियोंको देख कर उन्होंने महात्मा गाँधीको गाली देना शुरू किया। गालीको भी शायद किसी साधुने दोहामें जोड़ रक्खा था। काठियावाड़ी विद्यार्थियोंने तो नहीं समझा, लेकिन स्वामीराव समझ रहे थे। स्वामीरावने उनसे पूछा, "बाबा आप क्या गाना गा रहे हैं?"

"जो भी हमारी मर्जी।"

"मैं भी आपके गानेको सुनना चाहता हूँ।" उन्होंने महात्माजीके प्रति गंदी गालियोंसे भरा एक दोहा सुनाया। स्वामीराव इसे बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने जोरसे कहा, "आपने गाँधीजीको गाली दी; अब मैं कहता हूँ कि तीन बार 'महात्मा गाँधीकी जय बोलो'।" साधु भला क्यों मानने लगे? उन्होंने मजाक उड़ाया। स्वामीरावका डंडा उनके एक विद्यार्थी बालजी पटेलके पास रहता था। उन्होंने बालजीको ढंडा लानेको कहा। मुसटंडे साधुओंने हँसते हुए कहा, "हम तुम्हारे डंडा दिखलानेसे डर जायँगे?" स्वामीरावने कहा, "अच्छी बात, मैं डंडा नहीं दिखाऊँगा। अब तुम सजग हो जाओ" उन्होंने सबसे तगड़े साधूको जाकर गर्दनसे पकड़ा और कहा, "अब मैं तुम्हें जमीनपर पटकने जा रहा हूँ तुमसे जो बने करो।" हाथके पकड़ने हीसे साधूको पता चल गया कि आदमीमें कितना बल है। उसने जरा भी देर किये बिना चिल्ला दिया, "महात्मा गाँधीकी जय।" उसके साथियोंने भी

अनुकरण किया। स्वामीरावके साथ-साथ सौ विद्यार्थी चल रहे थे, उनके लिए यह अच्छा मनोरंजन रहा।

× × ×

स्वामीरावको रहनेके लिए एक मकानकी तलाश थी, लेकिन वह किराया नहीं दे सकते थे। किसी दोस्तने कहा कि शहरसे बाहर किन्तु दक्षिणामूर्ति-भवनके नजदीक ही एक अच्छा बँगला खाली पड़ा है। वह बँगला किसी भक्तने एक जैनी साधुके लिए बनवाया था। साधु बहुत दिन नहीं रह सका और उसी बँगलेमें उसकी मृत्यु हो गयी। शहरमें मशहूर हो गया कि उस बँगलेमें भूत रहता है। कोई उस बँगलेमें रहनेके लिए तैयार नहीं होता। स्वामीरावको कभी भूतपर विश्वास नहीं था। बँगला देखनेपर उन्हें पसन्द आया। उन्होंने मालिकसे रहनेकी इजाजत माँगी और उसने बड़ी खुशीसे इजाजत दे दी। दोस्तोंको जब मालूम हुआ, तो उन्होंने स्वामीरावको बहुत समझाया और अपने घरोंमें रखना चाहा, लेकिन स्वामीराव भूतोंका तमाशा देखनेके लिए तुले हुए थे।

स्वामीराव अपना बिस्तरा, चारपाई और एक लालटेन ले भूतों-वाले बँगलेमें पहुँचे। गर्मियोंके दिन थे, उन्होंने अपनी चारपाई बाहर आसमानके नीचे बिछायी। खूब गहरी नींदमें सोये थे। एकाएक उनके कानोंमें आवाज आयी, "कोन छे।" स्वामीरावने आँखें खोलकर इधर-उधर देखा, मगर कोई नजर न पड़ा। चन्द मिनटों बाद फिर वही आवाज आयी। जिस तरफसे आवाज आ रही थी, उधर नजर डालनेपर कोई खड़ा दिखलाई पड़ा। स्वामीरावने भी "कोन छे" कह-कर पुकारा, जिसपर उसने उसी शब्दको दोहराया। स्वामीराव उसकी ओर दौड़ पड़े। भूत वहाँसे भाग निकला और वहाँ फिर कभी दिख-लाई न पड़ा। वस्तुतः वह भूतोंका बँगला नहीं, बदमाशोंका अड्डा था। स्वामीरावके छोड़नेके बाद बँगलेमें रहनेवाले आने लगे।

वर्माकी यात्रा

१९२४ आया। स्वामीरावको भावनगरमें रहते दो साल हो गये थे। अगर सरकारी मेहरबानीपर रहे होते तो उन्हें १९५१ में छूटना था, लेकिन अपनी मर्जीसे वह अब स्वतंत्र थे। वह पिताको मिलनेके लिए काठियावाड़ बुला नहीं सकते थे, और साथ ही वृद्ध पिताको मरनेसे पहले देखनेके लिए भी उनका दिल बेकरार था! किसी मित्रने २००) दिये और वह चन्द दिनोंमें बर्मा पहुँच गये। निराश पिताको एकाएक इस तरह पृथ्वीसिंहको सामने देखकर पहले आश्चर्य, फिर अपार आनन्द हुआ। पृथ्वीसिंहने उन्हें सारी बात बतलाकर आशीर्वाद माँगा, "मैंने अपना सारा जीवन देशसेवाके लिए अर्पित किया है, आप खुशीसे मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दें।" पिताका आशीर्वाद ले विदा होते वक्त पृथ्वीसिंहने कहा—"यदि देशके दुश्मनोंसे लड़ते-लड़ते मैं मारा जाऊँगा, तो बड़े बड़े अक्षरोंमें उसकी खबर सब जगह छप जायगी और आपको मालूम हो जायगा। यदि मैं बीमार होकर चारपाई पर मरा, तो मेरे मित्र किसी न किसी तरह आपको खबर देंगे। हाँ, यदि देश-सेवा करते मैं जिंदा रहा, तो आप कोई खबर नहीं पा सकते।"

दो साल भारतमें अज्ञात-वास करनेके बाद पृथ्वीसिंहकी इच्छा हुई कि अँग्रेजोंके चंगुलसे बचकर किसी दूसरे देशको चले चलें। बर्माकी सीमापर स्यामका मुल्क है। रास्तेके खतरेके बारेमें वह सुन चुके थे, तो भी उन्होंने स्याममें छलाँग मारनेका निश्चय किया। रंगूनमें उन्होंने एक खिलौना-पिस्तौल खरीदी, जिससे काफी आवाज निकलती थी। कुछ आतिशबाजीके पटाखे भी लिये, जिनसे जंगली जानवरोंको डराया जा सकता था। कुछ दवाइयाँ और एक अच्छा छुरा पासमें रक्खा।

मोल्मिन छोड़नेके बाद उन्हें नावसे एक नदी पार करनी पड़ी। अब घना जंगल था, जिसमें खूँख्वार जानवर थे। तीन दिनतक उस जंगलमें चलते रहे। जानवर उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके, लेकिन

सरदार पृथ्वीसिंह

सरदार पृथ्वीसिंह अपने विद्यार्थियोंके साथ

मच्छरोंने उन्हें परास्त कर दिया। एक शामको उन्होंने देखा कि १०४ डिग्रीका बुखार चढ़ा हुआ है। अब आगे चलना सम्भव नहीं था। इधर-उधर ढूँढ़नेपर एक तारवाले आदमीका घर मिला। वह नौजवान हिन्दू था। पृथ्वीसिंहकी बातपर उसने विश्वास किया, "मैं रंगूनके एक व्यापारीके लिए बहुतसी गायें खरीदने आया था, यहाँ जंगलमें आकर बीमार पड़ गया! रातको मुझे अपने पास रहनेकी जगह दीजिये।"

पृथ्वीसिंह मुसलमानों जैसा कपड़ा पहने थे, इसलिए नाम भी मुसलमानों जैसा बतलाया। हिन्दू तरुणने जितना भी हो सकता था, उन्हें अच्छी तरह रखनेका इन्तजाम किया। वह बिस्तरेपर पड़े थे, बुखारके जोरमें अकबक करने लगे। उन्होंने तरुणको कागज पेन्सिल लानेको कहा, और लानेके बाद यह भी, "जो मैं कहता हूँ, उसे लिखते जाओ।"

दूसरे दिन बुखार उतर गया। तरुणने पृथ्वीसिंहसे कहा, "आप तो कहते थे कि मैं अपने मालिकके लिए गायें खरीदने आया हूँ, मगर रातको आप क्या बोल गये, जरा उसे भी तो देखें।" यद्यपि पृथ्वीसिंहने अपने जीवनका कोई रहस्य नहीं खोला था, लेकिन उन्होंने देशकी आजादी और मरने-मारनेपर गरमागरम लेक्चर जरूर झाड़ा था। तरुणने शायद बात समझ ली, लेकिन उसने और जाननेके लिए कोई सवाल नहीं किया। तीन दिनतक वह उस हिंदू तरुणके साथ रहे। मुसलमान जानते हुए भी तरुणने उन्हें अपने भाईकी तरह रक्खा। जब पृथ्वीसिंह कुछ अच्छे हुए और उन्होंने आगे जानेकी बात कही, तो तरुणने सारे खतरोंको बतलाकर आगे न जानेकी सलाह दी। वह फिर मोलमिलन लौट आये। बुखारने दुहरा दिया। उस दिन वह एक मुसलमान सरायमें गये। उन्हें रहनेके लिए कोठरी मिली। भीतर जाकर उन्होंने ताला बन्द कर लिया, जिसमें फिर कोई उनकी अकबकको न सुन ले।

रंगून आकर उन्होंने कलकत्ताके लिए जहाज पकड़ना चाहा। जेटीपर पहुँचते-पहुँचते फिर बुखार आ धमका। दो तीन बार कलकत्तावाले

जहाजके छूटनेके बारेमें किसी आदमीसे पूछा। वह खुफिया आदमी था, उसे संदेह हो गया। उसने तरह-तरहके सवाल करने शुरू किये। जवाब सन्तोषजनक नहीं थे, इसलिए उसका सन्देह और बढ़ा। उसने पृथ्वीसिंहको थानेपर चलनेके लिए कहा। जब दोनोंमें सवाल-जवाब हो रहा था, उसी वक्त एक खुफियाका अफसर उधरसे जा रहा था। वह किसी बड़े कामपर जा रहा था, इसलिए उसने उसी आदमीको ले जानेके लिए कह दिया। पृथ्वीसिंहने आदमीसे एक धनी व्यापारीके यहाँसे होकर चलनेके लिए कहा। आदमी मान गया।

पृथ्वीसिंह उसे एक सुनसानसे रास्ते पर ले गये। उन्होंने आदमीके हाथ पर ५८ रु. रख उसके कन्धेको छूते हुए कहा, "अगर तुम अपनी भलाई चाहते हो तो मुझसे छेड़छाड़ न करो।" आदमी बिना एक शब्द बोले वहाँसे चलता बना।

आदमीके बिदा होते ही उधरसे एक टैक्सी निकली, पृथ्वीसिंह उसपर बैठ गये और ड्राइवरसे खूब तेज चलनेके लिए कहा। आध घण्टेकी दौड़के बाद वह एक छोटेसे स्टेशनपर पहुँचे और टैक्सीसे उतर माँडलेवाले स्टेशनकी ओर गये। वहाँ पासकी नदीमें स्टीमर चलते थे। पृथ्वीसिंह किन्दत् जानेवाले स्टीमर पर बैठ गये। चिन्दविन नदीमें स्टीमरका यह आखिरी स्टेशन है। उत्तर बर्माका रास्ता लेते वक्त पृथ्वीसिंहने सोच लिया था कि अब मुझे मनीपुरके पहाड़ोंमेंसे होकर हिन्दुस्तान जाना होगा। स्टीमरसे उतर कर वह धर्मशालेमें गये। धर्म-शालेमें तीन मनीपूरी भी ठहरे हुए थे, जो दूसरे ही दिन अपने घरकी ओर प्रस्थान करनेवाले थे। पृथ्वीसिंहने जब साथ चलनेकी बात कही, तो उन्होंने कहा, "हाँ, आप चल सकते हैं" लेकिन सरहदके अफसरके पास जाना अपनेको खतरेमें डालना था। तीनों मनीपुरी सीधे-सादे आदमी थे। उन्होंने उनसे कहा, भाई, मैं कांग्रेसी हूँ, अँग्रेज अफसरके सामने मेरा जाना अच्छा नहीं है। क्या तुम कोई ऐसे पहाड़ी रास्तेसे नहीं चल सकते, जिसमें आज्ञा-पत्रकी जरूरत न हो?"

उन्होंने बताया, "रास्ता तो है, लेकिन उससे जानेपर तीन दिन और लग जायेंगे।"

"मनीपुरतक तीनों आदमियोंका जो खर्च होगा, मैं दूँगा, चलो ऐसे ही रास्ते जिसमें राहदारीकी जरूरत न हो।" उन्होंने स्वीकार किया। पृथ्वीसिंहने यह भी कहा कि मनीपुर पहुँचकर मैं इस बड़े छूरेको भी तुम्हें दे दूँगा।

दूसरे दिन उन्होंने पगडण्डी पकड़ी। जंगली पहाड़ी रास्तेसे वे परिचित थे, लेकिन पृथ्वीसिंह तो मलेरियासे और भी कमजोर हो गये थे। ऊपरसे पानी बरस गया था, इसलिए रास्तेमें बिछली बहुत थी। लेकिन पृथ्वीसिंहको अपनी सारी शक्ति लगाकर इस संकटसे पार होना था। कई जगह गिरे और उठे, कितनी ही दूर जानेके बाद उनके साथियोंने गन्ध सूँघकर कहा कि यहाँ आस-पास कहीं बाघ है। यह कहते हुए उनके चेहरोंपर मृत्युकी छाया दौड़ गयी थी। कुछ ही देरमें पृथ्वीसिंहको भी वह गन्ध मालूम हुई। वह मृत्युसे लड़नेके लिए तैयार थे। मृत्यु शायद चारों आदमियोंकी गन्ध पा दूर हट गयी। काफी देर बाद उनके साथियोंकी जानमें जान आयी और पीला पड़ गया चेहरा अपने स्वाभाविक रंगमें आया।

शामको वह एक छोटे-से गाँवके बाहर एक धर्मशालामें ठहरे। अपना सामान बीचमें रखकर चारों जने सो गये। आधी रातके बाद डाकू आये। उन्होंने पत्थर फेंकना शुरू किया। पृथ्वीसिंह और उनके साथी डण्डे सँभालकर जोरसे चिल्लाने लगे। कुछ देर बाद हल्ला सुनकर गाँवके भी कुछ लोग चले आये और डाकू उन्हें छोड़कर भाग गये। जंगलसे ढँका पहाड़ी दृश्य बहुत ही सुन्दर था, लेकिन पृथ्वीसिंह प्राकृतिक सौन्दर्यका आनन्द लूटने नहीं गये थे। वह किसी तरह हिन्दुस्तान पहुँचना चाहते थे। पथ भयानक था, इसमें सन्देह नहीं। दूसरे दिन शामको एक नदीके किनारे पहुँचे। नदीकी धार बहुत तेज थी। पानी बहुत गहरा नहीं था, ज्यादासे ज्यादा ४ फुट रहा होगा;

लेकिन उस तेज धारमें १०० गज पार करना था। नदीके तटपर खड़े होकर चारों जनें कुछ देरतक घाटकी ओर देखते रहे। शाम हो रही थी, हाथी आदि हिंसक पशुओंका डर था, इसलिए देर करना खतरेकी बात थी; साथ ही घाटको पार करना भी कम खतरेकी बात नहीं थी। उनके सामने नौ पहाड़ियोंने घाट पार करनेकी कोशिश की, लेकिन, पैर उखड़ गये और फिर उनका पता नहीं लगा। सूर्य नीचे उतरता जा रहा था और उसीके साथ-साथ उनकी आशा भी छूटती जा रही थी। लेकिन चुपचाप खड़ा रहना असह्य हो रहा था। पृथ्वीसिंहके तीनों साथी खूब हट्टे-कट्टे जवान थे। उन्होंने एक जगह देखी, जहाँ पत्थर कम लुढ़क रहे थे। उन्होंने पृथ्वीसिंहके कपड़े-लत्तेको ले लिया और उस पार पहुँचनेमें सफल हुए। पृथ्वीसिंह भी पीछे नहीं रह सकते थे, उन्होंने भी लंगर छोड़ दिया। प्रवाहके जोरका उतना डटकरके मुकाबला नहीं कर पाये तो भी किसी तरह हिलते-डोलते साथियोंके पार पहुँचनेके स्थानसे आध मील नीचे जाकर, धारसे बाहर निकले। अपनेको जीवित देखकर उन्हें खुशी हुई। पार पहुँचते ही जोरकी वर्षा होने लगी। सारे कपड़े भींग गये। न वहाँ आग बालनेके लिए सूखी लकड़ी थी, और न भींगी दियासलाई ही बल रही थी। बुखारसे उठनेके बाद यह कठिन यात्रा, ऊपरसे वर्षामें भींगना, आधी रातके बाद उन्हें सख्त बुखार आया और सारा शरीर काँपने लगा। लेटनेके लिए भींगी जमीन और भींगे कपड़े रह गये थे।

दूसरे दिन सबेरे बुखार उतर गया, कमजोर थे लेकिन उस निर्जन जंगलमें पीछे रह जानेके लिए तैयार न थे। रास्तेमें कई जगह कै हुई। चलना मुश्किल था, लेकिन मनपर जोर देकर वह दौड़ने लगे। आध मील दौड़नेके बाद शरीरसे पसीना चूने लगा। फिर साथियोंके लिए बैठ गये। वह सारा दिन इसी तरह दौड़ते-बैठते बीता और रातको अपने गंतव्य स्थानपर पहुँच गये। दूसरे दिन कोशिश करके दस रुपया रोजपर टाँघन किरायेपर किया। घोड़ेवाला मजबूरीको जानता था

खैरियत यही हुई कि उसने अधिक नहीं माँगा। उस दिन शामको जिस गाँवमें पहुँचे वहाँ पहाड़ियोंके कई जान पहचान वाले थे। पृथ्वी-सिंहकी आगे बढ़नेकी हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने दोस्तोंसे ठहरनेके लिए कहा। वे भी भलेमानुस थे और उन्होंने रहना स्वीकार किया। अब मनीपुर चालीस मील रह गया था। उन्होंने पाँच रुपयेपर एक घोड़ा किया और दूसरे दिन वहाँ पहुँच गये। साथियोंने अपने घरमें बड़े आरा-मसे रक्खा। चारों तरफ हरे-हरे पहाड़ोंसे घिरी इस सुंदर नगरी और उसके आसपासके छोटे-छोटे गाँव तथा खेत बड़े मनमोहक थे। आठ दिनतक उन्होंने इम्फालमें आराम किया। पूछनेपर मालूम हुआ कि बिना अँग्रेज रेजिडेण्टसे राहदारी लिए कोई आदमी सरहद पारकर आसामके भीतर नहीं जा सकता। पृथ्वीसिंह राहदारी लेनेकी हिम्मत नहीं कर सकते थे। मनीपुरकी सड़कोंपर घूमते उनका एक सरकसवालेसे परिचय हो गया। सरकस आसाम जानेवाला था। पृथ्वीसिंहने किसी तरह उसका विश्वास प्राप्त किया। ले चलनेके लिए प्रार्थना करनेपर उसने उत्तर दिया, "परवाह मत करो, मैं तुम्हें अपने सरकसका खिलाड़ी बनाकर ले चलूँगा।" मनीपुरसे मनीपुर रोड स्टेशन ३० मील है। उन्हें दस रुपये मोटरका किराया देना पड़ा। रास्तेमें बहुतसे खुफिया-वाले यात्रियोंकी देखभालके लिए तैनात थे। लेकिन पृथ्वीसिंह तो सर-कसके खिलाड़ी थे। अब वह रेलके स्टेशनपर थे। जो रेलवे लाईन उनके सामने थी वह एक दूसरेसे जुड़ी भावनगरतक चली गयी थी।

राजकी नौकरी

स्वामीराव अब फिर भावनगरमें थे। शिक्षा विभागके डाइरेक्टर विट्ठलराय मेहताके सभापतित्वमें शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्तियोंकी एक सभा हुई, जिसमें स्वामीराव व्यायामकी आवश्यकतापर बोले। उन्होंने बताया कि किस तरह गुजराती तरुणोंका शरीर और स्वास्थ्य गिरता जा रहा है और क्यों इसकी उपेक्षा करना आत्म-हत्या है। मेहता इस व्याख्यानसे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अब स्वामीरावको राज्यके शिक्षा-विभागमें ले

लिया। उनके जिम्मे काम था, रियासतके स्कूलोंमें व्यायामका प्रचार।

भावनगरमें जानेके बादसे ही स्वामीराव राजपूत विद्यार्थियोंके साथ संबंध स्थापित करनेकी कोशिश कर रहे थे, मगर उन्हें सफलता नहीं हुई थी। अब उन्होंने राजपूत लड़कोंको व्यायाम सिखानेके लिए अवैतनिक तौरसे अपनी सेवाएँ पेश कीं। यद्यपि राजपूत मुखिया उन्हें बनिया समझकर बड़ी नीची निगाहसे देखते थे, लेकिन थोड़े ही दिनोंमें विद्यार्थियोंके साथ वह बिलकुल घुल-मिल गये। राजपूत बोर्डिंग हाउस के सुपरिन्टेण्डेण्ट मकनजी मास्टर बहुत बूढ़े थे और बोर्डिंगका इन्तजाम करना उनके लिए आसान काम नहीं था। स्वामीरावको प्रबंधके संबंधमें भी कुछ काम करना पड़ता था, क्योंकि राजपूत नेता भी अब उनसे प्रभावित थे। बुढ़ापे और तरुणाईकी खटपट शुरू हुई। अधिकारियोंने धन्यवादपूर्वक मास्टर साहबकी सेवाओंका आभार स्वीकार करते हुए कुछ रुपये पेश किये। बूढ़े सुपरिन्टेण्डेण्टने बोर्डिंगसे बिदाई ली और अब स्वामीराव नये सुपरिन्टेण्डेण्ट नियुक्त हुए! राजपूत नौजवानोंको सँभालना आसान काम नहीं था, लेकिन स्वामीराव हमेशा तरुणोंको आसानीसे अपने प्रभावमें ला सकते थे, क्योंकि वह ऊपरसे हुक्म चलाना अपना फर्ज नहीं समझते थे, बल्कि समझते थे कि मैं भी उनमेंसे एक हूँ। राजपूत बोर्डिंग हाउसके लड़के शहरमें सबसे अधिक शरारती समझे जाते थे; लेकिन स्वामीरावने शरारतमें खर्च होनेवाली शक्तिको व्यायाम, मनोरंजन तथा दूसरे साहसपूर्ण कार्योंमें लगा दिया। अब वे लड़के अनुशासन-पसन्द पक्के सैनिक बन गये। स्वामीरावने उनकी एक स्वयंसेवक सेना संगठित की, जो सभाओं और जलसोंके अवसरपर बड़ी तत्परतासे काम करती थी। लाठी और कटार लिये हुए मेला हो या सभा, सब जगह राजपूत तरुण स्वामीरावके साथ-साथ मौजूद रहते। एक बनियाका प्रभाव इतना बढ़ते देख कुछ राजपूत नेताओंको उनसे ईर्ष्या होने लगी और थोड़े ही समय बाद उन्होंने बोर्डिंग छोड़ दिया, यद्यपि बहुत अफसोसके साथ।

सर प्रभाशंकर पट्टनीके सभापतित्वमें हुई मोतीबागवाली एक सभामें जब स्वामीरावने व्यायामके गुण बताये थे, तब उन्होंने स्वामीरावसे पूछा था कि क्या मेरे बूढ़े शरीरके लिए भी कुछ हो सकता है। स्वामीरावने जहाँतक हो सकता है, सहायता करना स्वीकार किया। हर रोज दीवान साहबकी मोटर स्वामीरावको लेनेके लिए आती और स्वामीराव वहाँ जाकर मालिश द्वारा व्यायाम कराते। सर प्रभाशंकरको इस तरुणको नजदीकसे देखनेका मौका मिला और मालिश करते वक्त उनकी किसी न किसी विषयपर बराबर बात चलती रहती। राजनीति, धर्म, इतिहास, अर्थ-शास्त्र या शासन-कला जिस किसी विषयपर सर प्रभाशंकर बात करते, वह देखते कि तरुण समझनेकी शक्ति रखता है। इससे वह स्वामीरावका और भी सम्मान करने लगे, विशेषकर यह देखकर कि स्वामीराव उनसे किसी वैयक्तिक लाभकी आशा या चाह नहीं रखता। वायसराय काठियावाड़की रियासतोंमें घूमने आये थे। सर प्रभाशंकर अपने खास सेलूनमें उनसे मिलने राजकोट और जामनगर गये। उस वक्त स्वामीराव भी उनके साथ थे और रियासतोंके शरीररक्षक, सर प्रभाशंकरको सेल्यूट देते तो स्वामीराव भी उनके भागी होते।

मालिशसे सर प्रभाशंकरको फायदा होता दिखाई पड़ा। उन्होंने स्वामीरावको आधुनिक मालिश कलाको सीखनेके लिए कहा, और गायकवाड़के मालिश वेत्ता मिस्टर वोलोशके पास और फिर प्राचीन भारतीय मालिश कलाको सीखनेके लिए मलाबारतक भेजा। अब स्वामीराव आधुनिक तथा पुरानी मालिश कलाके पण्डित थे, और साथ ही राज्यके दीवानके बड़े ही कृपा-पात्र।

काठियावाड़ नौजवान सम्मेलन

१९२८ के आस-पास राजकोटमें काठियावाड़ नौजवान सम्मेलन हुआ, पण्डित जवाहरलाल सभापति थे। काठियावाड़के तरुणोंकी भारी संख्या वहाँ जमा होनेवाली थी। अपने कांग्रेसी मित्र गोपालराव

कुलकर्णी, बलवन्तराय मेहता, आदिको पहुँचाने स्वामीराव भी स्टेशन-तक गये। स्वामीराव समझते थे कि सम्मेलनमें उनका जाना अच्छा नहीं है। स्टेशनपर उनके दोस्तोंने पूछ दिया, "क्या आप हमारे साथ सम्मेलनमें नहीं चलेंगे? आप नवयुवकोंके इतने प्रशंसक और प्रिय पथ-प्रदर्शक हैं, और आपही उनके सम्मेलनमें न जायँ, क्या यह अच्छी बात है?" पृथ्वीसिंहने वहीं निश्चय कर लिया कि जरूर सम्मेलनमें जायेंगे, लेकिन ट्रेनसे जाकर खुफिया पुलिसके भेड़ियोंके मुँहमें नहीं पड़ेंगे। स्वामीरावको मालूम था कि भावनगरसे राजकोटतक मोटरकी अच्छी खासी सड़क है। उन्होंने किसी दोस्तसे एक अच्छी साइकिल ली, और सबेरे ट्रेनके पहुँचनेतक खुद भी वहाँ पहुँच जानेका निश्चय किया। अधबहियाँ कमीज और हाफ-पैण्ट पहने, डण्डा हाथमें लिये वह साइ-किलपर चल पड़े। कितनी ही देर बाद वह सोनागढ़ पहुँचे। वहाँ गुरुकुलके परिचित मित्रोंने खाना खिलाया और रातको न जानेके लिए कहा। रात थी अँधेरी और उनके पास न लैम्प था न टॉर्च। उन्हें रातके बारेमें कुछ भी नहीं मालूम था। पानी या विश्राम-स्थानके बारेमें किसीसे कुछ पूछा भी नहीं।

१० बजे रातको जब वह साइकिल दौड़ाये जा रहे थे, तो सड़ककी दाहिनी ओरसे एक जंगली सूअर आ निकला। हिलती चीजको देखकर वह डर गया और इधर-उधर भागनेकी जगह साइकिलके साथ-साथ दौड़ने लगा। जंगली सूअर, कितना खतरनाक होता है, वह स्वामीराव अपने बचपनके दिनो ही से जानते थे। उन्होंने शोर मचाकर उसे भगाना चाहा, मगर वह पहले ही होश-हवास खो चुका था। सूअर अपनी जानके लिए दौड़ रहा था और पृथ्वीसिंह अपनी जानके लिए। उन्होंने सारी ताकत लगाकर साइकिलको तेज किया और कितनी ही देरकी कोशिशके बाद सूअरको पीछे छोड़ आगे निकलनेमें सफल हुए।

सूअर बहुत पीछे रह गया था। लेकिन वह इतने थक गये थे कि

एक मिनट भी साइकिलपर थमना सम्भव नहीं था। साइकिलसे उतर कर सड़कके किनारे वह लम्बे पड़ रहे। अब साँसकी गति ठीक थी और घबराहट भी दूर हो गयी थी; मगर प्यासके मारे गलेमें सुइयाँसी चुभ रही थीं। पानी कहाँ मिलेगा, इसका कोई पता नहीं था। अँधेरी रातमें आँखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी कहीं बस्तीका चिन्ह नहीं था। आधा घण्टा और चलनेके बाद वह एक गाँवमें पहुँचे। एक बड़े मकानके दर्वाजेको जाकर खटखटाया। भीतरके घरवालेने खटखटानेका कारण पूछा। स्वामीरावने नरम स्वरमें प्यासा मुसाफिर कह पानी माँगा। घरवालेने कड़कते स्वर में कहा, "हमसे चाल न चलो, इतनी रातको पानी नहीं मिला करता। हम एक अजनबीके लिए इस वक्त दरवाजा नहीं खोल सकते।" स्वामीरावने बार-बार विनती की। मालिकका उत्तर था, "यदि तुम प्यासे हो तो यहीं बैठे रहो, सबेरे हम तुम्हें पानी देंगे।

निराश हो स्वामीराव गाँवसे चल पड़े, लेकिन सौभाग्यसे एक ही मील आगे एक साधुकी कुटिया मिली। साधु बाहर सोया था। स्वामीरावने उसे जगाया और साधुने पानी और बिस्तरा दोनों दिया। पानी पीकर वह एक घंटाके लिए सो गये और फिर साइकिलपर चढ़ आगेके लिए रवाना हो गये। यद्यपि रास्तेमें कई जगह ऊँची-नीची जमीनके कारण वह गिरे भी, मगर ज्यादा चोट नहीं आयी। साइकिल कहीं नहीं बिगड़ी, नहीं तो निश्चित समयपर वह राजकोट नहीं पहुँच पाते।

सबेरे तड़के ही बहुत सी लारियाँ राजकोट जाती दीख पड़ीं। स्वामीरावको लोभ तो आया, मगर वह लारीपर नहीं चढ़े। आखिरी १० मीलकी यात्रा उनके लिए सबसे कठिन थी। स्वामीराव जिस वक्त स्टेशनपर पहुँचे, उसी वक्त उनके दोस्त प्लेटफॉर्मसे बाहर आ रहे थे। वह भी जलूसमें शामिल हो गये। सम्मेलनमें उनसे व्यायामकी उपयोगिता और उसके प्रचार तथा संगठनके बारेमें बोलनेके लिए कहा गया। स्वामीराव जवाहरलालके सामने अपना व्याख्यान दे रहे थे, पर

जवाहरलालको क्या मालूम था कि व्यायामपर भाषण देनेवाला यह वक्ता जेलकी फरार चिड़िया है।

सोनागढ गुरुकुलके मित्रोंने ताना देते हुए कहा था, "हम देखेंगे कैसे रात ही रात राजकोट पहुँच जाते हो!" दोपहर बाद फिर वह सायकिल पर सवार हो राजकोटसे रवाना हुए। ३० मील चलनेके बाद साइकिल पंचर हो गयी। साइकिल हाथमें पकड़े ४ मील और पैदल चले, फिर एक पुलिसका थाना आया, वह थानेके भीतर गये। सिपाहियोंने पंचर ठीक करनेमें मदद की, खानेके लिए भोजन और सोनेके लिए चारपायी दी। सूर्योदयसे पहले ही फिर रवाना हो गये और रास्तेमें दोस्तोंसे मिलते अपराह्नमें भावनगर पहुँच गये।

शिवाजी महोत्सव

शिवाजीका महोत्सव मनाया जानेवाला था। स्वामीरावने भी भाग लेना चाहा। उन्होंने गणेश क्रीड़ा-मण्डल और राजपूत बोर्डिंग हाउसके २०० लड़कोंमेंसे खूब मजबूत और तन्दुरुस्त ५० तरुणोंको चुना। अपने कैम्पके लिए उन्होंने विक्टोरिया बागके पासकी एक टेकरीको चुना, जिसका नाम पीछे शिवाजी हिल पड़ गया। स्वामीरावने अपने लड़कोंसे कहा कि तड़के ही पहाड़को छोड़ दो और ज्यादासे ज्यादा गाँवोंको घूमकर सूर्यास्तके बाद लौटो। खानेके लिए उन्हें दो-दो छटाँक गुड़ और १४ छटाँक भूना चना मिला था। विद्यार्थी चार-चारकी टोलीमें निकले और ३० से ४५ मीलका चक्कर लगाकर शामको लौट आये। उनके लौटनेकी खुशीमें पहाड़पर आग जलायी गयी और उसका नाम शिवाजी हिल रक्खा गया। तरुणों-को अपनी इस सफलताके लिए बड़ा अभिमान और आनन्द हुआ। स्वामीरावने उन्हें प्रोत्साहन देनेके लिए एक छोटा सा व्याख्यान दिया। अगले सालके शिवाजी महोत्सवमें स्वामीरावने लड़कोंसे शिवाजीका मुगल सेनाके भीतरसे निकल जानेका अभिनय कराया। शिवाजी बनने वाले

लड़केने "मुगल सेना" के सभी प्रयत्नोंको निष्फल करके भाग निकलनेमें सफलता दिखायी।

पोरबन्दरमें देशी राज प्रजाकी कान्फ्रेन्सके प्रबन्धकोंने स्वामीरावसे उनके सुशिक्षित वालन्टियर माँगे। स्वामीराव वहाँ पहुँचे। उन्होंने जहाँ अपने स्वयंसेवकों द्वारा कान्फ्रेन्सकी व्यवस्थामें हाथ बँटाया, वहाँ साथ ही व्यायाम-सम्बन्धी अपने भाषणों द्वारा काठियावाड़के कितने ही नेताओंसे परिचय प्राप्त किया।

सत्याग्रहमें

१९२८ में काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें काठियावाड़के विद्यार्थियोंका एक सम्मेलन हुआ था। स्वामीरावने यहाँपर भी व्यायाम और स्वास्थ्यसुधार पर व्याख्यान दिया। चोरवाड़के उदारमना धनी हरखचन्द शाहको उनके विचार बहुत पसन्द आये और गर्मियोंमें एक व्यायाम क्लास खोलनेके लिए उन्होंने हर तरह सहायता करनेका वचन दिया।

१९३० की मईको चोरवाड़में स्वामीरावने व्यायाम क्लास खोला। चोरवाड़ काठियावाड़में एक बहुतही स्वास्थ्यवर्धक जगह है, और गर्मियोंमें यहाँकी आबोहवा गर्म नहीं होती। १०० से भी अधिक विद्यार्थी क्लासमें शामिल हुए। भाई हरखचन्द शाहने क्लासकी सभी आवश्यकताओंको बड़े स्नेहके साथ पूर्ण किया। केम्प बहुत कामयाब रहा।

इसी वक्त स्वामीरावने नमक-सत्याग्रहमें गान्धीजीकी गिरफ्तारीकी खबर सुनी। केम्पमें इसके विरुद्ध सभा हुई, जिसमें स्वामीरावने भारतकी परतन्त्रता और आजादीकी कोशिशके बारेमें बहुत जोशीला भाषण किया। तरुणोंके लिए स्वामीरावके जीवनका यह एक नया पहलू था। स्वामीरावको रामपुरसे तार मिला कि सत्याग्रह आन्दोलनमें स्वयंसेवकोंकी भर्तीके लिए सहयोग दें। स्वामीराव सीधे चोरवाड़से रामपुर

चले गये और अमृतराव सेठ और उनके साथियोंके साथ काम करने लगे। वह जोशमें इतने बह गये थे कि सोच नहीं सके। रामपुर जाने पर उनका जोश उन्हें और एक कदम आगे खींच ले गया और बुद्धि-विवेकका रास्ता छोड़ केवल भावुकतामें पड़कर उन्होंने सत्याग्रहमें भाग लेनेका निश्चय किया। उनके पढ़ाये-सिखाये विद्यार्थी, दक्षिणामूर्ति भवन और क्रीड़ा-मण्डलके तरुण सत्याग्रहमें पूरे जोशसे भाग ले रहे थे। यह कैसे हो सकता था कि उनके गुरु स्वामीराव चुपचाप बैठे रहते? सत्याग्रही तरुणोंके ऊपर पुलिसकी ओरसे जो जुल्म हो रहे थे, उन्हें देखते उनका चुप रहना तरुणोंमें सन्देह पैदा करता, इसमें सन्देह नहीं। वह अच्छी तरह जानते थे कि जिधर वह कदम बढ़ा रहे हैं, वह बड़े जोखिमकी चीज है। जब स्वामीरावके साथियोंको मालूम हुआ कि वह राजनीतिक कार्योंमें भाग लेने जा रहे हैं, तो भावनगरमें एक सभा की। स्वामीरावने अपने भाषणमें कहा था, "मैं नहीं कह सकता कि सत्य और अहिंसापर मेरा विश्वास है। मेरा लक्ष्य है स्वराज्य और उसके लिए मैं कुछ भी उठा न रक्खूँगा।" भावनगरकी जनता और सरकारी अफसरोंने पहिली मर्तबा देखा कि स्वामीरावके पीछे एक दूसरा आदमी छिपा था। विदाके लिए नागरिकों और तरुणोंकी सभाको देखकर वह भली प्रकार जानते थे कि अब मेरा आठ वर्षका अज्ञातवास समाप्त हो रहा है, और फिर मुझे यहाँ काम करनेका मौका न मिलेगा। एक बार जहाँ कानूनके चंगुलमें फँसे, तो स्वामीराव जिन्दा फिर बाहर नहीं आ सकते। अखाड़ेके एक दर्जन तरुण स्वामीरावके साथ चले। रामपुरमें मित्रोंने बड़े तपाकसे स्वागत किया। कैम्पके कमान्डरने सत्य और अहिंसाकी प्रतिज्ञा पर दस्तखत करनेको कहा। स्वामीरावने इनकार करते हुए कहा, "अगर आप बिना प्रतिज्ञाके ही मुझे रहने देना चाहें और तरुणोंको भी सहायता देनेका मौका दें, तो मैं धन्यवादपूर्वक रहनेके लिए तैयार हूँ; नहीं तो मैं चला जाऊँगा।"

उन्होंने रहनेकी इजाजत दी और तरुणोंमें सचमुच ही ज्यादा जोश देखा जाने लगा। कैम्पके कमान्डर जानते थे, कि स्वामीरावका प्रभाव तरुणोंपर क्या है। वहाँ तैनात पुलिसवाले भी तरुणोंपर जादू फेरनेवाला यह स्वामीराव कौन है, इसे जाननेके लिए पूरी कोशिश करने लगे। जितनी ही उन्हें इसे जाननेमें असफलता हो रही थी, उतनी ही उनकी तत्परता भी बढ़ रही थी।

अध्याय १०

फिर लापता

दस दिन रहनेके बाद धंधू काका सब-इन्स्पेक्टर स्वामीरावको पकड़ने आया। स्वामीरावने कैम्पके नेता भाई जगजीवनदास मेहतासे गिरफ्तारीके लिए छुट्टी ली। नौजवानोंको आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने स्वामीरावका गिरफ्तारीके लायक कोई काम नहीं देखा था। तरुणोंसे दो-चार सीधे-सादे शब्द कहकर स्वामीरावने बिदाई ली।

क्या वह सारे जीवनभर जेलमें रहनेके लिए तैयार थे? जब वह सब-इन्स्पेक्टरके साथ-साथ जा रहे थे, तो उनके दिमागमें यह खयाल आया। सब-इन्स्पेक्टरके पास पिस्तौल थी। वह ४० वर्षका एक मजबूत और स्वस्थ आदमी था, लेकिन स्वामीरावके सामने वह कुछ नहीं था। स्वामीरावने सोच लिया था कि सब-इन्स्पेक्टरको दस सेकेण्ड सोचने और पॉकेटसे पिस्तौल निकालकर निशाना लगानेमें लगेंगे, वे ही उनके लिए काफी हैं। वह एक मोड़पर पहुँच रहे थे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा, "सलाम साहब, मैं जाता हूँ।" सब-इन्स्पेक्टर हक्का-बक्का रह गया। स्वामीराव दो ही छलांगमें मुड़कर आँखोंसे ओझल हो गये। भागनेके दस ही मिनट बाद एक भारी आँधी आयी और धूलके मारे कुछ भी देखना मुश्किल हो गया। फिर वर्षाने सहायता की। पुलिसके लिए काम आसान नहीं रह गया।

पुलिस सड़कोंपर मोटरोंमें दौड़ रही थी। वह घुटने भर कीचड़ और पानी भरे खेतोंमें नहीं जा सकती थी। स्वामीरावने अपने सब कपड़े फेंक दिये थे और लँगोट बाँधे खेतोंमेंसे चल रहे थे। अँधेरी रात-में वह एक गाँवसे गुजर रहे थे। एक आदमीने पहचान लिया और

बोला, "स्वामीजी यह क्या है ? किसीको छकानेकी तो नहीं सोच रहे हैं ?" स्वामीरावने कहा, "नहीं भाई, पागलपन मत करो, मुझे किसी सुरक्षित जगहपर ले चलो।" वह उन्हें एक गोशालामें ले गया, जहाँ उसके सिवा कोई नहीं जा सकता था। लम्बी दौड़के कारण वह बहुत थक गये थे। मित्रने गर्मागर्म दूध पीनेके लिए दिया। पीकर तीन घंटे विश्राम किया। पृथ्वीसिंहने अपनी सारी कथा कह सुनायी और फिर वहाँसे छुट्टी माँगी। लेकिन उनका राजपूत मित्र इतने हीसे अपने कर्तव्यकी पूर्ति नहीं समझता था। गाँवसे बाहर दो अच्छे घोड़े तैयार थे। उनपर चढ़कर दोनों खेतों-खेतों एक अज्ञात दिशाकी ओर चल पड़े। पैसेके लिए बिके आदमी खतरेका उतना सामना नहीं कर सकते, जितना कि स्वतन्त्रताके प्रेमी स्वामीराव कर सकते थे। सूर्योदयके वक्त उन्होंने घोड़ोंको छोड़ दिया और एक बैलगाड़ी किराया की। कुछ दूरतक बैलगाड़ीसे जाकर फिर मीलों, भावनगर खाड़ीके छाती भर पानीमें दोनों जने चलते रहे। इस प्रकार पुलिसके हाथसे भागनेके २४ घंटे बाद स्वामीराव फिर भावनगर पहुँचे। उन्होंने अपने साथीको नगरमें दोस्तोंको सूचना देनेके लिए भेजा और स्वयं एक आँख और आधे मुखको ढँके मुरेठेके साथ, एक गाड़ीमें सवार होकर शामको शहरमें आ गये।

पृथ्वीसिंह आसानीसे रामपुरसे दूसरी ओर भाग सकते थे। मगर भावनगरमें अपने मित्रोंको असली बात बताना जरूरी समझा, जिसमें वह यह न समझें कि स्वामीराव अन्तमें कायर निकला। स्वामीरावके मुँहसे आत्मकथा सुनकर उनके प्रति मित्रोंका सम्मान और भी बढ़ गया। आधी रातको एक दूरके गाँवके लिए टैक्सी की गयी। वहाँसे उन्हें भेष बदलकर ट्रेनमें बैठना था। उनका साथी पहले सामान और टिकटके साथ स्टेशनपर प्रतीक्षा कर रहा था। स्वामीराव यूरोपियन पोशाकमें ट्रेनपर जाकर बैठ गये।

स्वामीरावके भागनेके बारेमें कई तरहकी कथाएँ काठियावाड़में

प्रसिद्ध हुई। सब-इन्सपेक्टरने बयान दिया कि वह मुझे जोरका धक्का मार जमीनपर गिराकर रफूचक्कर हो गया। इसमें सचाईका लेशमात्र भी न था। दूसरी कथा प्रचलित थी कि कोई खुफियाका आदमी उनके पीछे पड़ा हुआ था। यह आदमी नागर खान्दानका था और उसने स्वामीरावके कितने ही नागर शिष्योंको प्रलोभन देकर फोड़नेकी कोशिश की। एक समय वह आदमी स्वामीरावको पकड़नेमें सफल हो रहा था, किन्तु उसी समय स्वामीने उसके सिरपर ऐसी ठोकर जड़ी कि वह हमेशाके लिए पागल हो गया। यह ठीक है कि एक ऐसा आदमी खुफियाकी ओरसे तैनात किया गया था और वह पागल होकर मरा; लेकिन स्वामीरावने कभी उसको कोई थप्पड़ नहीं लगाया। जेलसे मुक्त होनेके बाद पीछे जब वह एक बार भावनगर गये, तो वहाँके नागर तरुणोंने उनका स्वागत किया। उस वक्त यह सुनकर पृथ्वीसिंहको आश्चर्य हुआ कि कोई-कोई तरुण उन्हें सचमुच उक्त सज्जनकी मृत्युका कारण मानते हैं।

कैम्पके कमाण्डर और उनके सहायकने स्वामीरावके भागनेकी निन्दा करते हुए वक्तव्य निकाला था। सत्याग्रहीका भागना सचमुच ही बड़े शर्मकी बात समझी जाती थी, लेकिन उन्हें क्या मालूम था, कि स्वामीरावके न भागनेका क्या परिणाम होता।

पुलिसने स्वामीरावके पूर्व-इतिहासका पता लगानेके लिए छान-बीन शुरू की। राजकोटका सर्वोच्च पुलिस अफसर भावनगरमें जाँच करनेके लिए आया। स्कूलोंके रजिस्टरोंसे मालूम हुआ कि इस आदमीका नाम है, स्वामीराव दयाराम और घरका पता है—कमालपुर, जिला हलाल-पुर; मध्यप्रदेश। सी. आई. डी. के पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

पृथ्वीसिंह सेवा-समिति स्काउट-मंडलमें काम करनेके लिए प्रयाग गये थे, लेकिन देखा कि वहाँ पुलिससे बचना बहुत मुश्किल है। पं. श्रीराम बाजपेयीने व्यायाम-शिक्षकके तौरपर राजपूतानामें किसी अपने दोस्तके लिए परिचय-पत्र लिख दिया। उक्त सज्जन दिल खोलकर

मिले। प्रेमराज—अब यही उनका नाम था—ने अध्यापकों और विद्यार्थियोंके सामने व्यायामपर व्याख्यान दिया। उक्त सज्जनको उनपर सन्देह होने लगा और उन्होंने अपनी सफाई देनेकी कोशिश की। वह समझते थे कि कोई खुफियाका आदमी भेद लेने आया है। पहले ही दिन ४ घण्टा काम करनेके लिए ४५) महीना और मुफ्तके घरका इन्तजाम कर दिया गया। वहाँकी परिस्थितिको देखकर प्रेमराजने तीसरे ही दिन वहाँसे चलनेकी इच्छा प्रकट की। सज्जनने जब रुकनेके लिए जोर देना शुरू किया, तो प्रेमराजने उनके संदेहका जिक्र करके कहा कि अब मैं यहाँ नहीं रह सकता। असर न होते देख इन सज्जनने प्रधान-अध्यापकको बुलाया और दोनोंने रहनेके लिए उनपर बहुत जोर डाला; मगर जब प्रेमराज अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए, तो आँखोंमें आँसू भरकर बिदाई दी।

चन्द्रशेखर आजादसे भेंट

१९२२ में जब पृथ्वीसिंह घायल हुए थे, तभीसे पुलिस हीकी तरह क्रान्तिकारी भी पृथ्वीसिंहको ढूँढ़नेमें लगे थे। अमरीकाके उनके मित्र भी उनका पता लगानेके लिए बहुत चिन्तित थे। अन्तमें एक दिन सबेरे किसीने उनसे एक तरुण क्रान्तिकारीका परिचय कराया। एक ही नजरमें पृथ्वीसिंहको विश्वास हो गया कि यह तरुण विश्वासका पात्र है। दोनोंने एक दूसरेके सामने दिल खोल दिया। तरुणका प्रस्ताव था, कि तुम सोवियत रूस जाकर क्रान्तिकारी संस्थाओंके साथ संबन्ध स्थापित करो। अँधेरा होनेपर एक और तरुण आया, उसके चेहरे, उसकी एक-एक भाव-भंगीसे वीरता और निर्भयता टपक रही थी। यह तरुण था चन्द्रशेखर आजाद, जो कि पीछे इलाहाबादके अलफ्रेड पार्कमें पुलिसकी गोलियोंका जवाब देते-देते मरा।

आजाद क्रान्तिका बहादुर सिपाही था। पृथ्वीसिंहसे उसकी दो बार मुलाकात हुई और उसने उनके ऊपर अपनी अमिट छाप छोड़ी। भगतसिंह और उनके साथी आतंकवादके पूरे तजुर्बेके बाद इस परिणाम-

पर पहुँचे थे कि इक्के-दुक्के सरकारी अफसरोंकी हत्या करनेसे हमारी क्रान्ति सफल नहीं हो सकती। रास्ता एक ही है, वह है विशाल शोषित जनताका सहयोग लेकर अर्थात् मार्क्सवादी पद्धतिके आधारपर आगे बढ़ना। मरनेसे पहले भगतसिंहने अपने साथियोंको यह समझानेकी पूरी कोशिश की थी। चन्द्रशेखर आजाद भी अब इसी बातको मानते थे। पृथ्वीसिंह और आजाद दोनों इस बातसे सहमत थे। आजादने पृथ्वीसिंहपर बहुत जोर दिया कि वह विदेशमें जाकर मार्क्सवादका अच्छा अध्ययन करें और क्रान्तिके दाँव-पेंच सीखकर देशमें आ काम करें।

आजाद कोई पंडित नहीं थे, और न उन्हें मार्क्सवादके अध्ययन का मौका ही मिला। लेकिन उनके तजर्बेने उन्हें मार्क्सवादी सच्चाईकी झलक दिखला दी थी। चन्द्रशेखरमें नेताओंके स्वाभाविक गुण थे।

अक्तूबर १९३० में जिस दिन भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेवको फाँसीकी सजा सुनायी गयी, उसी दिन यू. पी. महाराष्ट्र, बम्बई और पंजाबके क्रान्तिकारियोंने फैसलेके खिलाफ अपना विरोध प्रकट करनेके लिए बम्बई (लेमिंग्टन रोड) में गोली कांड किया। पुलिसने बहुतसे आदमियोंको पकड़ा और उन्हें हवालातमें रखकर ६०,००० रु. खर्च करके ८ महीनेतक मुकदमा चलाया। सबूत कोई था नहीं, जूरीने अभियुक्तोंको निरपराध कहके छोड़ देनेके लिए कहा और अदालतने भी इसे मंजूर किया। पुलिसने हाईकोर्टमें अपील करनी चाही, लेकिन, सरकारी एडवोकेटने मुकदमेको बहुत कमजोर देखकर ऐसा करनेकी इजाजत न दी। लेमिंग्टन रोडके गोली-कांडमें पुलिसने स्वामीरावका भी नाम दिया और पकड़नेके लिये १००० रु. का इनाम घोषित करके सारे बम्बई प्रान्तमें उनके फोटो चिपकाये।

पृथ्वीसिंह रेलमें जा रहे थे। बलसाड़में खुफियावालोंको उनके ऊपर शक हो गया। उस कम्पार्टमेंटके सभी आदमी उतार दिये गये, और पुलिसके तीन आदमी सादे कपड़ोंमें उसमें बैठ गये। वे उन्हें अगले

स्टेशनपर काफी सिपाहियोंकी मददसे गिरफ्तार करना चाहते थे। पृथ्वीसिंह खतरेको अच्छी तरह समझने लगे। अगले स्टेशनपर सिगनल न होनेसे गाडी पहलेही खड़ी हो गयी। पृथ्वीसिंहने कोटके पॉकेटमें हाथ डालकर अपना पिस्तौल बाहर निकाला और वहाँसे नौ दो ग्यारह हुए। तीनों पुलिसवाले टुक-टुक देखते रह गये। रातके अँधेरेने उन्हें सहायता पहुँचायी। वह नवसारी शहरसे होते हुए बाहर निकलकर एक जंगलमें सो गये। शहरमें उन्होंने कपड़ा ले लिया था। किसानों जैसी धोती और कुर्ता पहनकर दूसरे कपड़ोंकी उन्होंने पोटली बना ली। सुबह वे गुरुकुल गये, खाना भी खाया, लेकिन किसी परिचितने उन्हें पहचाना नहीं। फिर पैदल ही २० मील चलकर वे सूरत पहुँचे। सूरतसे रेल द्वारा बड़ौदा गये। बड़ौदामें उनके एक परिचित मित्रने सारे खतरोंको जानते हुए भी अपने पास रखा, और रहनेके लिए आग्रह किया।

कराची कॉंग्रेस (मार्च १९३१)

पृथ्वीसिंहको साफ मालूम होने लगा कि देशमें रहकर अब वह कोई काम नहीं कर सकते। उस साल कराचीमें कांग्रेस होनेवाली थी। सोचा वहाँ उनके पुराने दोस्तोंमे से कोई जरूर मिलेंगे, इसलिए उन्होंने उधरका ही रास्ता लिया। वह दूसरी बार भावनगर पहुँचे। वहाँसे कई स्टेशनोंको पार करके एक जगह उतर गये और सिर मुँड़ाकर भगवा कपड़ा धारण किया; नाम रक्खा स्वामी सदानंद। सदानन्द गुरु-शिखरकी ओर चल पड़े। सूर्यास्तके समय वहाँ पहुँचे। साधू भोजन करने जा रहे थे। भोजनके बाद लोग धूनीके किनारे बैठे। यह स्थान एक बड़ी गुफामें था, जिसमें एक ही दरवाजा था। एक बड़ी गाँजेकी चिलम भरी गयी। दम लगानेके बाद लोगोंका तीसरा नेत्र खुला, फिर ब्रह्मज्ञानकी चर्चा छिड़ गयी।

गुफाका महन्त एक नौजवान आदमी था। स्वामी सदानन्दने गाँजा

छोड़नेके लिये लेक्चर दिया, लेकिन इसके सिवा कुछ असर नहीं हुआ, कि महन्त उनको ज्यादा सम्मानकी दृष्टि से देखने लगा। महन्तने बड़ी कोशिश की कि वह वहीं रहें।

लेकिन सदानन्द तीन ही दिनके बाद वहाँसे चल पड़े और अम्बाजीके स्थानपर पहुँचे। अम्बाजीका मन्दिर भी बहुत ही रमणीक स्थानपर है। महन्तने शक्ल सूरतसे स्वामी सदानन्दको एक शिक्षित संन्यासी समझ कर मठके ऊपरवाले कमरेमें ठहरनेकी जगह दी और रोज उनके लिए अपने हाथसे अच्छा-अच्छा भोजन लाता। स्वामीको निस्पृह और सुवक्ता देखकर महन्तने खूब गौरव प्रकट किया। एक दिन गृहस्थने महन्तसे कहा कि मैं आप जैसे एक महापुरुषको भोजन कराकर पुण्यका भागी बनना चाहता हूँ। महन्तने जवाब दिया "यदि आप सचमुच ही किसी महापुरुषका आशीर्वाद चाहते हैं तो जाइये ऊपर वहाँ एक महात्मा ध्यानमें मग्न हैं। गृहस्थ सज्जनने स्वामी सदानन्दके पास जाकर भोजन स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की। निश्चित समयपर स्वामी सदानन्द उस भद्र पुरुषके मकानपर पहुँचे। वह अपने सारे परिवारके साथ तीर्थ-यात्राके लिए आया था। स्वामीकी बहुत आवभगत हुई। पूछनेपर भद्र पुरुषने बताया कि मैं सरकारी नौकर, पुलिस इन्सपेक्टर हूँ। सदानन्द चेहरेका भाव छिपानेके लिए जोरसे हँसे। भद्र पुरुषके पूछनेपर कहा, "ओह तुम अपने पापोंका मार्जन कराने आये हो? तुम एक सीधे-सादे संन्यासीसे आशीर्वाद ले पहलेका पाप धोकर फिर उसी रास्ते जाना चाहते हो!" बात मजाकमें थी और मजाकमें ही उड़ गयी। लेकिन मजाक करते हुए भी स्वामी सदानन्द अच्छी तरह जानते थे कि कौन जाने इस इन्सपेक्टर की भी जेबमें मेरे पकड़नेका वारण्ट पड़ा हो।

भोजनके बाद स्वामीने इन्सपेक्टरको आशीर्वाद दिया। इन्सपेक्टरने १॥) दक्षिणा देनी चाही, लेकिन स्वामीने अपनी निरपेक्षता दिखलाते हुए लेनेसे इनकार किया।

अम्बाजीमें गुजराती तीर्थयात्री बहुत आया करते हैं। सदानन्दको वहाँ और रहना खतरेकी बात मालूम होने लगी।

अब उनकी इच्छा हुई महाराणा प्रतापके कुरुक्षेत्र हल्दी घाटी देखने की। जिससे भी वह हल्दी घाटीके बारेमें पूछते, वह अपनेको अजान बताता। जिन गाँवोंमें वह पूछताछ कर रहे थे, वे हल्दी घाटीसे ५० मीलसे भीतर ही थे, और उनके पूर्वजोंने जरूर हल्दी घाटीकी लड़ाईमें प्रतापके साथ भाग लिया होगा। वह राजपूतोंको इसके लिए फटकारते थे। रास्तेमें ऐसे वीर-भक्त संन्यासीकी आवभगत करनेमें सभी जगह ठाकुर लोग हाथ बाँधे खड़े रहते। हर जगह अगले गाँवके लिए पथ-प्रदर्शक और किसी प्रमुख व्यक्तिके लिए परिचयपत्र मिलता।

जब स्वामी सदानन्द केलवा पहुँचे, तो वहाँके ठाकुरने इस शिक्षित संन्यासीका बहुत सम्मान किया। उनके आग्रहके मारे वह २० दिन वहीं रह गये। ठाकुर साहब एक झीलके किनारे एक कुटिया बनवाना चाहते थे, मगर सदानन्द तो रमते राम थे। चलते वक्त ठाकुर साहबने उन्हें एक बाघम्बर और २०० रु० भेंट किये, लेकिन संन्यासीने रुपया लेनेसे इनकार कर दिया। ठाकुरको क्या मालूम था कि यह आदमी कपड़ोंके नीचे २०० रु० के नोट और भरी हुई पिस्तौल लिये चल रहा है। रास्तेमें और जगहोंको देखते वह उदयपुर पहुँचे। जब धीरे-धीरे वहाँ संन्यासीके गुणोंके बारेमें लोग ज्यादा जानने और जिज्ञासा करने लगे, तो उन्होंने साँड़नीकी सवारी करके हल्दी-घाटीका रास्ता लिया।

एक गाँवके पास कुछ साधू डेरा डाले पड़े थे। संन्यासीको देखकर उन्होंने बैठनेके लिए कहा। स्वामी सदानन्दकी बगलमें एक सुन्दर बाघम्बर था। साधुओंने देखनेके लिए माँगा। नया सुन्दर बाघम्बर देख कर उनके मुँहमें पानी भर आया। उन्होंने आसन बिछाकर अपने गुरुको बैठनेके लिए कहा। थोड़ी देरतक धर्म-चर्चा चली। स्वामी सदानन्द उम्मीद किये बैठे थे कि अब बाघम्बरको लौटा देंगे। देर होते देख जब उन्होंने जानेकी इजाजत माँगी, तो साधुओंने कहा, "हाँ,

हाँ, पधारिये।" सदानन्द पाँच मिनटतक बाघम्बरके पानेका इन्तजार करते रहे, लेकिन गुरुजी उठनेका नाम नहीं लेते थे। ऊपरसे साधु कह रहे थे—"जाइये, नहीं तो अँधेरा हो जायगा।" सदानन्दने एक मिनट की देर किये बिना कहा, "कृपा करके मेरा बाघम्बर दे दीजिये।"

"कौनसा बाघम्बर ?"

"वही, जिसपर तुम्हारे गुरु बैठे हैं !"

"हमारे गुरुजी अपने बाघम्बर पर बैठे हैं। तुम्हारा इतना दीदा कि गुरुजीका अपमान करो !"

इसपर स्वामीने कहा, "छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारे हकमें बहुत बुरा होगा !"

स्वामीके हाथमें एक अच्छा मोटासा डंडा था। यद्यपि साधुओंकी संख्या १५ या उससे अधिक थी, लेकिन वह समझ गये कि इस आदमीके हाथका डंडा यमराजका डंडा बन जायगा। स्वामीने और स्पष्ट शब्दोंमें कहा, "इधर सुनो ! मैं अब डण्डा उठाने जा रहा हूँ। जबतक इसके दो टुकड़े नहीं हो जाते, तबतक इससे तुम्हारे कपार और हड्डियोंको चूर करता जाऊँगा !" दो मिनटके भीतर ही गुरुजी खड़े हो गये और बाघम्बर स्वामीजीके हाथमें वापिस आ गया।

स्वामी सदानन्द रातको अगले गाँवमें ठहरकर दूसरे दिन हल्दी-घाटी पहुँचे।

एक तीर्थ-यात्रीके तौरपर स्वामी सदानन्द हल्दी-घाटीका दर्शन करने गये थे। वहाँके पत्थरों, ऊँची-नीची जगहों, नालों और खड्डोंको उन्होंने बहुत भक्ति-पूर्वक देखा। वहाँकी पीली भूमि उन्हें राजपूतोंके केसरिया बानाकी याद दिलाती थी। वहाँ उन्होंने राणा प्रतापके बहादुर घोड़े चेतककी समाधि देखी। इस ऐतिहासिक स्थानकी उपेक्षा देखकर स्वामी सदानन्दका हृदय बहुत क्षुब्ध हुआ। प्रतापके वंशज आज भी उदयपुरके शासक हैं। उदयपुर शहरमें वाइसरायों और दूसरोंके

कितने ही स्मारक तथा मूर्तियाँ लाखों रुपये खर्च करके खड़ी की गयीं, लेकिन हल्दी घाटीमें सिवा चेतकके स्मारकके कोई उसकी ऐतिहासिकताको बतानेवाला चिन्ह नहीं; और चेतकका स्मारक भी स्वयं प्रतापने खड़ा किया था।

स्वामी सदानन्दने अब पश्चिमका रुख लिया। मारवाड़के रेगिस्तानमें होकर पहले पैदल, फिर रेलसे एक दिन वह कराची स्टेशनपर अधिवेशनसे कुछ दिन पहले ही पहुँच गये। कांग्रेस नगर अभी बन रहा था। उन्हें शहरके एक छोरसे दूसरे छोरपर जाना था। इसी समय टैक्सीवाला पीछेसे आकर गाड़ी खड़ी करके बोला, "आपको कहाँ जाना है।" स्वामीजीने काँग्रेस नगरके पासके एक बड़े मन्दिरका नाम लिया। टैक्सीवालेने भीतर बैठनेके लिए कहा। इसपर स्वामीने कहा "मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"आपका आशीर्वाद मेरे लिए काफी है। आप बैठें, मैं आपके जानेकी जगहपर उतार दूँगा।" शायद स्वामीके स्वस्थ और सुन्दर गौर चेहरेपर टैक्सीवालेको ब्रह्मचर्यका तेज झलकता दिखायी पड़ा, इसलिए वह आशीर्वाद लेनेके लिए उतावला हो गया। चन्द मिनटोंमें स्वामी अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँच गये।

दो-तीन दिन इधर-उधर तलाश करनेके बाद बाबा गुरुमुखसिंह, बाबा प्यारासिंह, बाबा साहेबसिंह आदि गदर पार्टीके साथियोंसे उनकी भेंट हुई। उन्हींकी तरह बाबा गुरुमुखसिंह भी जेलसे भागे हुए थे और कम्युनिस्ट ही नहीं हो गये थे, बल्कि कम्युनिस्ट देश (सोवियत) में वर्षों रहकर आये थे। पृथ्वीसिंहको अबतक अपने पुराने साथियोंसे मिलनेका मौका नहीं मिला था। अब उन्हें अपने साथियोंसे क्रान्ति और राजनीतिके बारेमें खुलकर बात करनेका मौका मिला।

उन्होंने समझाया कि क्रान्ति करना सिर्फ चन्द बहादुर तरुणोंके बसका काम नहीं है। उसमें सारी जनता; मजदूरों-किसानोंकी बड़ी ताकतको शामिल करना होगा; और मजदूर-किसान क्रान्तिके महत्त्वको

समझकर तभी उसमें शामिल हो सकते हैं, जब कि उनके रोज-बरोजके कष्टोंकी लड़ाइयोंको क्रान्तिकी लड़ाईके साथ जोड़ा जा सके। दो-तीन दिनकी बातचीतके बाद पृथ्वीसिंहको नया मार्ग साफ दिखाई देने लगा। साथियोंने तै किया, अब पृथ्वीसिंहको देशमें रहकर जोखिम उठानेकी जरूरत नहीं। उन्हें पहले रूस जाकर मार्क्सवाद और क्रान्तिकारी कार्य-प्रणालीका अध्ययन कर आना चाहिये।

अध्याय ११

सोवियत रूसमें

(१९३१-३५)

अब पृथ्वीसिंहको सोवियतके लिए रवाना होना था। पृथ्वीसिंह-को पठानोंके स्वतन्त्र इलाके और अफगानिस्तानके रास्तेसे जाना था। वहाँसे वह पठान बनकर ही जा सकते थे। १५ दिन हजामत न बनानेसे कराचीमें ही दाढ़ी-मूँछ बढ़ गयी थी। वहाँपर वह करीमखाँके नामसे पठानोंकी पोशाक पहनकर खुदाई खिदमतगार बने। काँग्रेसके बाद खुदाई खिदमतगारोंके साथ वह भी पेशावरके लिए रवाना हो गये। लाहौरमें एक सी. आई. डी. का आदमी उनके डब्बेमें आया, लेकिन पठानोंने मजाक करके इतना तंग किया कि उसे भागना पड़ा। पेशावरसे वह फिटनमें उतमाजई गये, जहाँ आगेका इन्तजाम करनेके लिए १०—१५ दिन रहना पड़ा।

बड़े-बड़े नेता करीमखाँकी कदर करते थे और उनकी सहायता करनेके लिए तैयार थे। उनके शरीरपर अब एक गरीब पठानका मैलाकुचैला कुर्ता, सलवार और फटी पगड़ी थी। उन्होंने किसी पठानको सिरपर चप्पल रखकर चलते देखा, तो उसकी भी नकल की। एक दिन पथ-प्रदर्शकके द्वारा उन्हें सीमाकी ओर भेज दिया गया। इधर-उधर गाँवमें चक्कर लगाते दोपहरके चले रातको ७ बजे वह शबक-दरके आसपासके सीमान्तपर एक गाँवमें जा पहुँचे। उनमें आत्म-विश्वास पूरा था और अपने पार्टको यह पूरी तौरसे निभानेके लिए तैयार थे। भोजनमें भी एकाध दिन हिचकिचाहट हुई, लेकिन अब पूरे इतमीनानके साथ एक थालपर बैठकर वह बिसमिल्ला कर हर

पठानी खानेको जीभ चटकार-चटकार कर खा सकते थे। शकल-सूरत और पोशाकसे भी उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था, लेकिन यदि कोई सवाल कर बैठता तो? भाषा न जाननेके खयालसे कभी-कभी करीमखाँका दिल धड़क उठता।

मई १९२१ का आरम्भ था। वह एक छोटेसे गाँवमें किसी एक दोस्तके यहाँ ठहरे थे। गाँवमें अंग्रेजी गुप्तचरोंकी भरमार थी। रातके वक्त तारोंसे भरे खुले आसमानके नीचे लेटे हुए वह सोच रहे थे, कल या तो सूरज एक स्वतन्त्र भूमिमें उगेगा या बेड़ियोंसे जकड़े जेलखानेमें। चिन्ताके मारे वह सारी रात सो न सके। गाँवमें गैर-इलाकेका एक काफिला ठहरा हुआ था, उसीके साथ सबेरे करीमखाँको भी सरहद पार करना था। सुबह ४ बजे खस्सेदार सिपाही काफ़िलेके आदमियोंको देख गया। उसमें न जाने कितने करीमखाँ जैसे थे। झुटपुटेमें ही १०० आदमियोंका काफिला सीमा पार हुआ। लेकिन करीमखाँकी तब-तक जानमें जान न आयी, जब-तक कि वह बन्दूककी मारसे बाहर न हो गये। रातको उस पहाड़ी, ऊँची-नीची कंकरीली-पथरीली जमीनमें चलना आसान काम न था, कहीं-कहीं जूता फिसलता था।

काफिला शामतक चलता गया। मईकी गर्मी थी। सबसे ज्यादा तकलीफ पानीकी रही। अब वह स्वतन्त्र पठानोंके इलाकेमें जा रहे थे। दूसरे दिन दोपहरको मोहमन्द इलाकेमें होते तुरंगजई पहुँचे। करीमखाँके पास मुल्ला तुरंगजईके लड़के बादशाह गुलके लिए चिट्ठी थी, मगर बादशाह गुल उस वक्त घरपर नहीं थे। मुल्लाने खातिर की। बादशाह गुल भी आ गये, वह एक शिक्षित, समझदार और संस्कृत आदमी जान पड़े। करीमखाँको मोहाजिरके तौरपर परिचय देना पड़ा। बादशाह गुलने जलालाबादके गवर्नरके नाम चिट्ठी लिख, एक पथप्रदर्शक दे दिया। रातको उस दिन वह बादशाह गुलके दोस्तके घरपर ठहरे। जगह खतरेकी थी। हर जगह डाकुओंका भय था, लेकिन रास्ता बतानेवाला आदमी साथमें था, इसलिए वह जानते थे, कि

आगे क्या आनेवाला है। अफगानिस्तानकी सीमा पारकर वह डाक्का पहुँचे। रातको होटलमें सो गये। सबेरे लारीमें चढ़ जलालाबाद पहुँचे। गवर्नरको इन्तजाम करनेके लिए कहा; लेकिन पुलिस अफसर मुहम्मद अली (अब यही नाम था) को हिरासतमें ले उनसे बयान माँगने लगा। मुहम्मदअलीने कहा, "मैं हिन्दी मोहाजिर हूँ। अंग्रेजोंके राजसे भागकर इस्लामके मुल्कमें आया हूँ।" इससे ज्यादा उन्होंने पुलिस अफसरसे कुछ कहनेसे इनकार कर दिया और कहा कि मुझे गवर्नरके पास ले चलो। गवर्नरके पास गये और उससे कहा कि एक हिन्दी मोहाजिर मुसलमान इस्लामी मुल्कसे ज्यादा आशा रखता है। गवर्नरने पुलिस अफसरको उन्हें तुरन्त काबुल भेज देनेका हुक्म दिया। अफसरने पूछा कि क्या हिरासतमें? गवर्नरने कहा—"नहीं, मामूली तौरसे।"

पुलिस-अफसरने लारीवालोंसे उनको ले जानेके लिए कहा। लारीवाला समझ रहा था, सरकारी बेगार होगी। वह गाड़ीमें जगह न होनेका बहाना करने लगा। मुहम्मद अलीने उसके कानमें कहा, "मैं और पैसा दूँगा।" उसने चमड़ेके गट्ठरोंके ऊपर बैठनेके लिए कह दिया। रास्तेमें हिन्दू-ड्राइवरसे मुहम्मद अलीकी बातचीत हुई। वह कांगड़ेका राजपूत था। यात्रीको क्रान्ति और देशभक्तिकी बातें करते देखकर उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। उसने उन्हें खाना खिलाया। काबुलके भीतर दाखिल होते वक्त पुलिसने पासपोर्ट माँगा, लेकिन ड्राइवरने कह दिया यह मोहाजिर है, और गप्पें लगाता हुआ उन्हें साफ निकाल ले गया।

काबुलमें मुहम्मद अलीको डेढ़ माह रहना पड़ा। वहाँ कितने ही और हिन्दी मोहाजिर थे, किन्तु उनकी राजनीतिक चिन्तना बहुत निर्बल थी। मुहम्मद अलीके लिए दिन काटने मुश्किल हो गये। उनके साथी उन्हें किसी अच्छे विश्वासपात्र पथ-प्रदर्शकके साथ भेजना चाहते थे, लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति मिल नहीं रहा था। मुहम्मद

अलीको बराबर छिपकर ही रहना पड़ता। उधर उनके दोस्त पथ-प्रदर्शक खोजनेकी कोशिश कर रहे थे, इधर मुहम्मद अली भी चुपचाप न बैठे थे। संयोगसे उनका परिचय घरके तरुण पठानसे हो गया। महीने भर उसके घरमें रहना पड़ा, दोनोंमें राजनीतिक, सामाजिक बातें हुआ करतीं। तरुण एक देशभक्त अफगान था। उसने मुहम्मद अलीके दिलमें जलती स्वतन्त्रताकी आगका जब परिचय पाया, तो वह अनुरक्त बन गया। महीना बीतते दोनों घनिष्ठ मित्र हो गये। मुहम्मद अलीने उससे अपना उद्देश्य बताया। वह अच्छा पथ-प्रदर्शक बननेके लिए तैयार हो गया। जब मुहम्मद अलीने अपने साथियोंसे पथ-प्रदर्शक मिल जानेकी बात कही, तो उन्होंने बहुत समझाया। जब इसपर मुहम्मद अली जिद करने लगे, तो साथियोंने कहा, "तुम बड़े मूर्ख हो, यदि तुम इस तरहसे गये तो १० दिनके भीतर ही बेड़ियोंमें बँधे काबुल लौट आओगे।" मुहम्मद अलीने भी जवाब दिया, "तुम चिर-प्रवासी भर हो, तुम्हें क्रान्तिकारियोंका तजुर्बा क्या है?" आखिरमें उन्होंने जानेकी इजाजत दे दी।

हिरातको

मुहम्मद अलीकी पठानी पोशाकमें दाढ़ी थोड़ी और बढ़ गयी थी। उन्होंने हिरात जानेवाली एक लारीपर जाना ठीक किया। उनकी दोनों जेबोंमें अफगानी सिक्के भरे हुए थे और साथ ही काफी अमरीकन नोट भी। लारी चली। चार घण्टा चलनेके बाद वह एक फौजी चौकी पर खड़ी हुई। सिपाही यात्रियोंको देखने आये और उनमेंसे सिर्फ मुहम्मद अलीके पथ-प्रदर्शकको सन्देहजनक समझा। तरुण सीधे अफसरोंके पास गया, उनसे बात की और फिर आकर मोटरपर बैठ गया।

लारी गजनी पहुँची। उस वक्त उनके दिमागमें कभी पृथ्वीराजकी कैदका खयाल आता और "अब न चूक चौहान" कानोंमें सुनाई देता और कभी खच्चरोंपर लदे हीरा, मोती, सोने, चाँदीके विजय-पुरस्कार

याद आते। गजनीसे लारी कन्धार पहुँची। यहाँ मालूम हुआ कि वही लारी हिरात नहीं जा सकती। दूसरी लारीके लिए उन्हें पाँच दिनतक इन्तजार करना पड़ा। कन्धारके सस्ते मेवे और शहरके सुन्दर बाग उनके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनके मनकी धुन किसी दूसरी ओर थी।

आखिर खुदा-खुदा करके एक लारी मिली और वह हिरातके लिए रवाना हो गये। कन्धारसे कुछ मील चलनेके बाद उन्हें एक नदी मिली, जिसपर कोई पुल न था। लारीका इंजन धारके बीचमें जाकर बन्द हो गया। मुसाफिरोंको उतर कर अपना-अपना सामान सिरपर लादकर पार होना पड़ा। अब सवाल था लारीको उसके मालके साथ खींचकर बाहर लानेका। मुहम्मद अलीने सबसे पहले अपनेको पेश किया। कहने-सुनने पर २ या ४ आदमी और तैयार हो गये। महम्मद अलीने लारी निकालनेमें जितनी मेहनत की थी, उससे ड्राइवर और सभी मुसाफिर उन्हें विशेष सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगे। रातको भूखे ही लोगोंको वहीं पड़ा रहना पड़ा। एक दिनकी यात्राके बाद फिर लारी खड़ी हो गयी और घोर बियाबानमें जहाँ कोई मदद नहीं मिल सकती थी। ड्राइवर ४ दिनतक मत्था पटकता रहा। आखिर उसे सफलता हुई। यात्रियोंने चलनेके लिए जोर देना शुरू किया। ड्राइवर रातको चलनेके लिए तैयार नहीं था। चार घण्टा चलनेके बाद बन्दूककी आवाज सुनाई दी। यात्रियोंने समझा डाकू आ पहुँचे। लारी रोक दी गयी और लोग डाकुओंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। यात्रियोंमें ४ धनी आदमी थे, वह हज करके लौट रहे थे। वह तुरन्त लारीसे उतर पड़े और घुटनेके बल हो अल्लाहसे रहमकी भीख माँगने लगे। दो यात्रियोंके पास बन्दूकें थीं। लेकिन हिम्मत नहीं थी। हाजियोंको प्रार्थना करते देख मुहम्मद अली पेशाबके बहाने कुछ दूर चले गये और जमीन खोदकर सारे नोट और पैसोंको उसमें रखकर लौट आये। उन्होंने एक बन्दूकवालेसे पूछा, क्या तुम अच्छी तरह बन्दूक

चला सकते हो ? दुविधामें देखकर उन्होंने उससे बन्दूक माँग ली। यह शिकारी दुनाली थी। मुहम्मद अली बन्दूकमें गोली भर लरीके पीछे झुक कर निशाना लेनेकी मुद्रामें बैठ गये। ५ मिनट बाद फिर दुबारा गोली दगनेकी आवाज सुनायी दी। इस बार सभी यात्री घुटने टेककर प्रार्थना करने लगे। मुहम्मद अली भी घुटना टेके हुए थे, मगर बन्दूकका निशाना लेनेके लिए। दो घण्टेतक वह उसी तरहसे इन्तजार करते रहे, फिर एक गोलीकी आवाज आयी। आखिर लोगोंको पता लगा, यह डाकू नहीं हैं, किसान जंगली जानवरोंको खेतोंसे भगानेके लिए खाली फैर कर रहे हैं। लारी फिर चली।

हिरातमें

यद्यपि काबुलसे हिरात ४ दिनमें पहुँचा जा सकता है, लेकिन मुहम्मद अलीको २० दिन लगे। लारी जब हिरातके दरवाजे पर आयी तो देखा एक पहरेवाला काबुलसे आनेवाले मुसाफिरोंको बहुत ध्यानसे देख रहा है। हिरातका गवर्नर अमानुल्लाहके समय ही से चला आ रहा था। अब हुकूमत थी नादिरखानकी।

इसीलिए गवर्नरको हमेशा काबुलसे खुफियाके आनेका डर रहता था। मुहम्मद अलीने दो बार अपनी बहादुरी दिखलायी थी, इसलिए सभी यात्री अपनेको उनका कृतज्ञ समझते थे। सभी उन्हें हिन्दुस्तानी समझते थे और ख्याल करते थे कि यह कोई रहस्यपूर्ण कामके लिए हिरात जा रहा है। यात्रियोंने जानते हुए भी मुहम्मद अलीके बारेमें कुछ नहीं बताया और वह बिना कठिनाईके हिरात पहुँच गये।

तरुण पथ-प्रदर्शक सोवियत सीमातक साथ चलनेके बारेमें कोई निश्चय नहीं कर पाता था। सीमा पार पकड़े जाने पर बोल्शेविक बुरी तरह सताते हैं आदि आदि कितनी ही कथाएँ लोगोंमें प्रचलित थीं। मुहम्मद अली उसे और ७० मील ले जानेके लिए जोर नहीं देना चाहते थे। तरुण विश्वास-पात्र पथ-प्रदर्शक ढूँढ़ निकालनेके लिए

कोशिश करने लगा। मुहम्मद अली दो दिनके लिए १०० रु० देनेको तैयार थे। २० दिन बीत गये, इतनेमें पुलिसको पता लग गया। दोनों थानोंमें बुलाये गये और पूछा गया कि क्यों गवर्नरकी आज्ञा बिना तुम शहरमें रह रहे हो। मुहम्मद अली दो दिनतक अपना बयान लिखवाते रहे और पुलिस दुभाषियेकी मददसे उस बनावटी कहानीको लिखनेमें लगी हुई थी। तरुणको झूठी कहानी लिखनेकी जरूरत नहीं थी, उसके पिताके कई घनिष्ठ मित्र हिरातमें रहते थे।

चौथे दिन दोनोंको गवर्नरके सामने पेश होना था। गवर्नर बहुत कड़ा आदमी है, वह खुद अपने हाथोंसे पीटता है, इस तरहकी बहुत-सी बातें मशहूर थीं। मुहम्मद अलीका तरुण साथी घबड़ा गया। उसने क्लर्कसे प्रार्थना की कि आज हमें मत पेश करो। उस दिन दोनों पेशीसे बच गये। इसी बीच तरुणके पिताके मित्रोंको खबर लगी। उन्होंने पुलिस अफसरसे मिलकर उसे जमानतपर छोड़ने के लिए प्रार्थना की। एक आदमी छोड़नेका परवाना लेकर थानेपर आया और बोला "यह लो, जमानतपर छोड़नेका परवाना आ गया।" सिपाही पढ़ा लिखा नहीं था। उसने दोनोंको छोड़ दिया। मुहम्मद अली बाहर निकल आये। वह जानते थे कि एकही-दो घंटेमें गलती मालूम हो जायगी।

अब एक मिनट भी खोना भारी बेवकूफी थी। उन्होंने अपने तरुण पथ-प्रदर्शकको १००) देकर बिदाई ली, और पाँच ही मिनट बाद वह सोवियत सीमाकी ओर जानेवाले रास्तेपर चल रहे थे। बड़े रास्तेपर चलना खतरेकी चीज थी, इसलिए शहरसे बाहर निकलते ही उन्होंने खेतोंका रास्ता पकड़ा। वह जान छोड़कर दौड़ रहे थे, क्योंकि किसी वक्त भी पुलिसके सवारोंके आ धमकनेका डर था। जूनकी गर्मी थी, वह पूरे ४ घंटेतक दौड़ते चले गये। एक पहाड़पर पहुँचकर वह कुछ देरतक विश्राम लेने और सोचनेके लिए बैठ गये। सड़क पकड़कर

चलना खतरेसे खाली न था। यद्यपि वह जानते थे, सीमा उत्तर दिशा में है, लेकिन नाककी सीधमें वह जा नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने तारके खम्भोंके साथ-साथ चलनेका निश्चय किया।

सूर्यास्त हो रहा था, देखा दो सवार दौड़े आ रहे हैं। उनका दिल काँपने लगा। तो भी वह छिपनेके लिए पहाड़के पीछे दौड़ गये। कुछ देरतक चट्टानपर वह लेटे रहे। प्यास अलग सता रही थी और सवारोंके आ पहुँचनेका भय अलग।

चाँद निकल आया, ठंडी हवाके झोंकेने प्यासको कुछ दबाया। डाकुओंका जहाँ हरवक्त खतरा हो, वहाँ रातको कौन सफर करनेकी हिम्मत कर सकता है, लेकिन मुहम्मद अली तो जानको हथेलीपर लेकर चल रहे थे। वह रातभर चलते रहे। सूर्योदयके वक्त किसी खड्डमें छिपकर विश्राम लेने लगे। थकावट और भूखके मारे वह इस तरह दिन काट नहीं सकते थे। उनके पास रुपये थे। लेकिन, चाँदी-सोना तो नहीं खाया जा सकता। कुछ दूर जानेपर कुछ भिखमंगे आते दिखलायी पड़े। अपने फटे कपड़ोंमें वह भी भिखमंगेसे दीखते थे। उन्होंने उनसे कुछ खानेके लिये माँगा। भिखमंगोंने रोटीके कुछ सूखे टुकड़े अपने चीथड़ोंमेंसे निकालकर दिये। मुहम्मदअलीने खानेकी कोशिश की, लेकिन वह पत्थरकी तरह कड़े थे। आगे एक जलाशय मिला जिसमें टुकड़ोंको पहले भिगो दिया, फिर खाने लगे। इन टुकड़ोंका स्वाद इतना मधुर था, जितना कि उन्हें किसी खानेमें नहीं आया था। आखिर भूक भी तो गजबकी थी! रातको वह सड़कके साथ-साथ भले ही चल लेते, लेकिन दिनको उनके कदम तारके खम्भोंके साथ-साथ चलते थे। एक जगह तार और सड़क साथ-साथ जा रहे थे। मुहम्मदअलीने खेतोंका रास्ता लिया। पहाड़के किनारे कुछ खाना-बदोश डेरा डाले पड़े थे। मुहम्मदअलीने बच्चोंमें कुछ पैसे बाँटे, जिसपर घरवालोंने मक्खन, पनीर, रोटी और दूध दिया। मुहम्मदअलीने लड़कोंको पैसा प्रेम-प्रदर्शन करनेके लिए दिया था,

दान देनेके लिए नहीं, लेकिन वह डेरेवालोंकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए काफी था।

खानाबदोशोंने उनसे इस तरह पहाड़ोंमें घूमनेका कारण पूछा। मुहम्मद अलीने कहा, "मेरा प्यारा भाई कुश्कमें एक दूकानदारके यहाँ नौकर है। वह बीमार है। आखिर वक्तमें भाईको देख लेना चाहता हूँ। मेरे पास इतने पैसे नहीं थे कि हिरातसे लारीपर चढ़के जाता।

उन सीधे-साधे लोगोंने मुहम्मद अलीकी बातपर विश्वास किया और कुछकी तो आँखें भी गीलीं हो आयीं। जब उन्होंने देखा कि भाई-के प्यारमें मजनू इस आदमीके पाँवमें कितने छाले पड़ गये हैं, एक आदमीने कुश्कके पासतकके लिए अपना घोड़ा देना चाहा, जिसपर मुहम्मद अली अपनी टूटी-फूटी फारसीमें बोलने लगे, "ओह बिरादर, अल्लाहका हुक्म है कि मैं इन सब तकलीफोंको बर्दाश्त करूँ। मैं उसके हुक्मसे भागना नहीं चाहता। अल्लाह तुम्हारी भलाई करे।" जब मुहम्मद अलीने घोड़ा लेनेसे इनकार कर दिया तो उनकी करुणा और बढ़ गयी और उनमेंसे एकने उन्हें रास्ता पूरे विवरणके साथ बताया। सूर्यास्त होने लगा था, तभी मुहम्मद अलीने खानाबदोशोंके डेरेको छोड़ दिया। मील-डेढ़ मील जानेके बाद वह रातके अँधेरेकी प्रतीक्षामें एक जगह पड़ रहे। यद्यपि रात उजाली थी, मगर उस वक्त सड़कसे चलनेकी हिम्मत करनेवाले मुश्किलसे ही मिलेंगे, यह मुहम्मद अलीको मालूम था। अब उन्होंने सड़क पकड़ी। अगले २० मील उन्हें रात रातमें पूरे करने थे, और रास्तेमें ३ सरकारी चौकियोंसे बचते हुए। वह तेजीसे आगे बढ़ते जा रहे थे। एक जगह भेड़वालोंके बड़े-बड़े कुत्तोंने आ घेरा। मुहम्मद अलीके पास उन्हें मारनेके लिए डण्डा भी न था। यदि डण्डा होता, तो भी क्या वह कुत्तोंको मारकर भगा सकते? उसी वक्त उन्हें रूमालमें बँधी रोटी याद आयी। उन्होंने एक टुकड़ा कुत्तोंके सामने दूर फेंका। कुत्ते उधर दौड़े और इस बीचमें वह जितना भाग सकते थे, भागे। कुत्ते रोटी खतम कर फिर पीछा

करते और वह फिर एक टुकड़ा फेंकते। इस तरह वह कुत्तोंके डेरेसे दूर निकल आये। अब उन्होंने पीछा करना छोड़ दिया, मगर थकावटके मारे उनका शरीर चूर-चूर हो रहा था। कुछ देर फिर वह जमीनपर पड़े रहे, लेकिन दिन निकलनेसे पहले अफगानिस्तानकी सीमा न पार कर लेना खतरेकी बात होगी, यह वह अच्छी तरह जानते थे। फिर उठकर चलने लगे। कुछ देर बाद पीछेसे उन्हें घण्टीकी टुन-टुन आवाज सुनाई दी। देखा, एक लदा ऊँट बे-तहाशा दौड़ा आ रहा है और पीछे-से उसका मालिक पकड़नेकी कोशिश कर रहा है। मुहम्मद अली यद्यपि आदमियोंसे बचकर चल रहे थे, लेकिन उस वक्त मदद करना उन्होंने हानिकारक नहीं समझा। ऊँटके पास आते ही उन्होंने कूदकर उसकी नकेल पकड़ ली और थोड़ी सी दिक्कतके बाद ऊँटको खड़ा करनेमें सफल हुए। ऊँटवाला बहुत-बहुत धन्यवाद देने लगा। उसने ऊँटको बैठाया और साथ बैठनेके लिए कहा, लेकिन मुहम्मद अलीने धन्यवादके साथ बड़े नरम शब्दोंमें न चढ़नेकी बात कही। दोनों कितनी ही दूरतक पैदल ही चले। इस वक्त कुश्क और सोवियत सीमाके बारेमें उसने उन्हें कई ज्ञातव्य बातें बतायीं। उसने खास तौरसे सजग किया कि नदीके किनारेसे मत चलना। नदी उनके दाहिनेसे बह रही थी। नदी अफगानिस्तान और सोवियतकी सीमापर है, और उसे पार करनेकी कोशिश करनेमें गोली खानेका खतरा है। सबेरा होनेको आ रहा था। मुहम्मद अलीने नमाजके बहाने हाथ-मुँह धोनेके लिए ऊँटवालेसे छुट्टी ली।

सोवियतकी भूमिपर

पूर्व दिशामें सूर्यकी लाली फैल रही थी। मुहम्मद अली झाड़ियोंके बीचसे होते हुए नदीके किनारे पहुँचे। नदीमें पानी ज्यादा गहरा नहीं था, लेकिन धार चौड़ी थी। वह आखिरी छलांग मारनेसे पहिले जरा देर ठहर कर कुछ सोचने लगे। उन्होंने दौड़ते हुए ही धारको पार

करनेका निश्चय किया, जिसमें कि सीमा-रक्षक सिपाहियोंको निशाना ठीक करनेका मौका न मिले। आखिर खतरेके वे चन्द मिनट भी बीत गये और गोलियोंकी वर्षा नहीं हुई। इस प्रकार २८ जुलाई, १९३१ को पृथ्वीसिंह समाजवादकी भूमिपर पहुँच गये।

पिछले दो दिनोंकी दौड़-धूपने उन्हें इतना अधिक थका दिया था कि उनका सारा शरीर अकड़ गया। वह कितनी ही देरतक एक जगह लेटे रहे। यह भी खयालमें आया कि कोई आकर पकड़ेगा और किसी अधिकारीके पास ले जायगा। जब किसीको आते नहीं देखा तो खुद वहाँसे उठे और एक मजदूरके पास जाकर बोले कि मुझे किसी जवाबदेह पुरुषके पास ले चलो। मजदूर उन्हें एक अफसरके पास ले गया।

अफसरका पहला सवाल था, "तुम क्यों यहाँ आये हो? पृथ्वीसिंहने बड़ी नर्मीके साथ फारसी जबानमें कहा, "मैं एक भारतीय क्रान्तिकारी हूँ। मुझे किसी जवाबदेह अफसरके पास ले चलें, तो मैं वहाँ सब बातें बताऊँ!" उसके चेहरेसे मालूम हुआ कि वह बातोंको तो अच्छी तरह समझ नहीं पाया, लेकिन उनकी गम्भीरताको जान गया! वह पृथ्वीसिंहको एक अफसरके पास ले गया! अफसर एक अजनबीको आफिसमें देखकर एक दो मिनटतक कुछ सोचता रहा, फिर मुस्कराते हुए रूसी भाषामें बोला। पृथ्वीसिंहने अंग्रेजीमें बात करनी चाही। इस पर अफसरने कहा, "इंगलिश नेत्।" पृथ्वीसिंहने समझा कि वह अंग्रेजी नहीं जानता। पृथ्वीसिंहने फारसीमें बोलना शुरू किया, अफसरने एक दुभाषियेको बुला लिया। पृथ्वीसिंहने कहा कि पहले तो एक बाल्टी गर्म पानी मँगा दीजिये। पानी आया। पृथ्वीसिंहने बूट पहने ही दोनों पैरोंको बल्टीमें डाल दिया। बात चीत आधा घंटेतक होती रही। फिर सावधानीके साथ हल्के हाथसे बूटको उतार दिया। कितनी ही जगह चमड़ा निकल गया था। दवा लगाकर पट्टी बाँध दी गयी। पृथ्वीसिंहको कुछ भोजन करा कर, बगलके कमरेमें सोनेके लिए छोड़ दिया गया। दोपहर बाद कारमें उन्हें एक दूसरे

शहरमें पहुँचाया गया। वहाँ उनसे कितने ही सवाल पूछे गये, और एक सप्ताहतक वहीं रखा गया।

अब विशेष जाँचके लिए उन्हें ताशकंद भेजा गया। दुभाषियेकी मददसे अफसरने उनका बयान लिया। पृथ्वीसिंहको उसके सामने किसी चीजको छिपानेकी जरूरत न थी। उन्होंने अमरीका जानेसे लेकर आजतककी सारी कथा कह सुनायी।

लेकिन यदि ऐसी कथाओंको सुन करके ही अफसर मान लिया करते, तो सोवियत सीमाकी रक्षा हो चुकती। दुनियाकी सभी पूँजीवादी सरकारें, किसान-मजदूरोंके इस राजसे भयभीत थीं; उनको पूरा डर था कि खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग पकड़ेगा, और दुनियाकी ९० फीसदी जनता जो कि गरीब किसान-मजदूरोंकी जनता है—अब और अधिक दिनोंतक शासनको धनिकोंके हाथमें रहने देकर खुद नरककी जिन्दगी बितानेके लिए तैयार न होगी। वह खुद इन जोंकोंको सिंहासन से हटाकर शासन-सूत्र अपने हाथ में लेगी। हंगरी, जर्मनी और यूरोपके दूसरे मुल्कोंमें उन्होंने जनताको ऐसा प्रयत्न करते देखा था। इसलिए पूँजीवादी सरकारें अपने गुप्तचरोंको बराबर किसी न किसी तरह सोवियतके भीतर भेजनेकी कोशिश करती थीं। इसलिए अफसरने तबतक पृथ्वीसिंहपर रोक-थाम रखना जरूरी समझा, जबतक कि मास्कोमें रहनेवाले गदरपार्टीके नेताओंसे पूछकर पृथ्वीसिंहके बयान की तसदीक न कर ली जाय।

ताशकन्दमें उन्हें एक महीनेतक इसी तरह रहना पड़ा। वह एक राजबन्दीका जीवन बिता रहे थे।

मास्कोमें

एक दिन सवेरे पृथ्वीसिंह ताशकंदके सबसे अच्छे होटलमें थे। अधिकारियोंको पृथ्वीसिंहकी बातकी सच्चाईका प्रमाण मिल गया। अब सभी उन्हें स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उन्होंने ताशकंदके कितने ही भागोंको घूमकर देखा, और यह भी देखा कि किस

तरह वहाँके लोग एक दूसरी ही दुनियामें बसे हुए हैं, जहाँ मनुष्य मनुष्यके भीतर वह भेद-भाव नहीं है, जिसे उन्होंने अबतककी देखी दुनियामें देखा था।

अब उन्हें मास्को जाना था और अकेले ही इतने दिनोंमें उन्होने पचीस-पचास रूसी शब्द सीख लिये थे। यद्यपि रेलमें भीड़ थी, लेकिन पृथ्वीसिंहको अपनी चार दिनकी यात्राके लिये एक आराम-देह सीट दी गयी थी। पृथ्वीसिंहको यह खयाल करके बहुत आनन्द हो रहा था कि वह दुनियाकी पहली मजूर-सरकारकी समाजवादी राजधानीमें जा रहे हैं। मास्को, जिसकी ओर सारी दुनियाकी जांगर चलानेवाली जनता बड़े ही सम्मानके साथ देखती है, अब उसी मास्कोमें वह क्रान्तिकारी मार्क्सवादका पाठ पढ़ने जा रहे हैं। अब वह उस आखिर मंजिलपर पहुँच रहे हैं, जिसके लिए उन्होंने इतने जोखिम और कष्ट उठाये। सितम्बरका अन्त था, वर्षा हो रही थी जब कि उन्होंने गाड़ी पकड़ी।

रेलके सभी यात्री पृथ्वीसिंहको हर तरहसे खुश रखनेकी कोशिश करते। वह भारत और भारतसे बाहर गोरे लोगोंके सम्पर्कमें आये थे, लेकिन उनके अभिमान और अपमान भरे बर्तावने पृथ्वीसिंहके दिलमें गोरे रंगके प्रति जबरदस्त घृणा पैदा कर दी थी। लेकिन यहाँ गाड़ीमें मास्को-यात्रियोंकी अधिक संख्या गोरे रूसियोंकी थी। यहाँ इस चार दिनकी यात्रामें उन्हें पता लग गया कि गोरे रंगका कोई दोष नहीं है। दोष है धनी-गरीबके वर्ग-भेदमें, धनियोंकी शासन-व्यवस्थामें। महात्मा और सिंहासनवाले स्वयं जात-पाँत, रंग-रूप लेकर आदमी-आदमीमें घृणा पैदा करते हैं। यहाँ उन्हें मालूम हुआ कि मनुष्य वस्तुतः भाई-भाई हैं। सिर्फ अपने ही प्रति लोगोंका भाव उन्होंने मधुर नहीं देखा, बल्कि मध्य एशियाके "काले" लोग भी गोरे रूसियोंके सगे भाईसे जान पड़ते थे। जो बातें वह अपनी आँखोंके सामने देख रहे थे और जिनके कारण उनके जीवनमें जबरदस्त परिवर्तन हो रहा था, उन्हें वह सुनी सुनायी बातोंसे नहीं समझ सकते थे। पृथ्वीसिंहका

मधुर स्वभाव हमेशा ही छोटे-छोटे बच्चोंकी ओर आकृष्ट होता रहा है। ट्रेनमें चलनेवाले लड़के उन्हें बराबर घेरे रहते और हरएक उन्हें अपनी भाषा सिखलानेकी कोशिश करता। नौजवान आकर उनके पास बैठते, उनके व्यायाम-पुष्ट हाथों और पेशियोंको दबाकर भीतरके बलका अनुभव करते, फिर खुश होकर बोल उठते, "रबोची," "रबोची" (मजूर)। मजूर शब्द रूसमें वही अर्थ नहीं रखता जो कि दुनियाके दूसरे मुल्कोंमें। मजूर वह है जो अन्न-धन पैदा करता है, लेकिन गँवार उजड्ड कहकर अपमानित किया जाता है, क्योंकि उसने शासनकी बाग-डोर दूसरेके हाथमें दे रखी है। लेकिन रूसमें मजूर अन्न-धन पैदा करता है, साथ ही शासनकी बागडोर भी उसके हाथमें है। इसलिए वह सबसे ज्यादा सम्मानका पात्र है, "मजूर" शब्द एक उच्च सम्मान-का शब्द है। तरुण पृथ्वीसिंहके मजबूत हाथोंको देखकर समझ लेते थे कि यह जोंकोंके वर्गका नहीं, बल्कि हमारे अपने ही वर्गका आदमी है। तरुण सुन्दरियाँ और वयस्क लड़कियाँ उनकी आँखोंकी ओर देख-कर मुस्कराती कहतीं, "ओ, काक खरोशया चोर्नी ग्लज" (ओह, कितनी सुन्दर काली आँखें हैं!)।

पृथ्वीसिंहके वह चार दिन इतनी जल्दी बीत गये कि उन्हें इसका अफसोस हुआ। पाचवें दिन वह मास्कोकी सड़कोंपर थे।

मार्क्सवादके विद्यार्थी १९३१-३२

स्टेशनसे कोमिन्टर्नतक पहुँचनेमें दिक्कत नहीं थी। उनके पास परिचय-पत्र था, जिसे उन्होंने कामरेड मेयरको दिखलाया और वह उसी दिन पूर्वी विश्वविद्यालयमें पहुँचा दिये गये। उनके सभी प्रोफे-सर रूसी थे। हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोंमें कामरेड वासुदेवसिंह भी थे, जो आठ सालतक पंजाबके जेलोंमें राजबन्दी रखकर छोड़े गये हैं और पंजाबके किसानोंमें जान पैदा कर रहे हैं।

पृथ्वीसिंहने यद्यपि अम्बालामें स्कूल छोड़नेके बाद फिर किसी स्कूल या कालेजका मुँह नहीं देखा, लेकिन उनकी ज्ञान-पिपासा हमेशा

ही तेज रही। अंडमान और राजमहेन्द्रीके जेलोंमें जो भी हिन्दी-उर्दूकी कामकी पुस्तकें उन्हें मिलतीं, वह उन्हें चाटे बिना न रहते। भावनगर-में वह काफी समय किताबोंके पढ़नेमें लगाते। पूर्वी विश्वविद्यालयमें पढ़नेका जो कोर्स था, वह उन्हें बहुत कम मालूम हुआ। वह था भी प्रारम्भिक विद्यार्थियोंके लिए। वह नहीं चाहते थे कि उनके दो सालका एक दिन भी बेकार जाये। उन्होंने पढ़ाईके कम होनेकी शिकायत की। उन्हें पता लगा कि लेनिन स्कूलकी पढ़ाई ऊँची है, वह उसमें जानेके लिए जोर देने लगे।

नवम्बर आया। ७ तारीखको महान् क्रान्तिका दिवस मनाया जा रहा था। शहरके हरेक भागसे लोग जलूस बना-बनाकर क्रेमलिनके पास लाल मैदानकी ओर जा रहे थे। पृथ्वीसिंह भी अपने विश्वविद्या-लयके छात्रोंके जुलूसमें शामिल थे। सोवियतके बड़े-बड़े नेता लेनिनकी समाधिकी छतपर खड़े थे और सामनेसे बड़े-बड़े जुलूस निकल रहे थे। भारी टैंक पाँतीसे गड़गड़ाते आगे बढ़ रहे थे, फिर फौजी लारियों-पर सवार, आधुनिक हथियारोंसे लैस सेना चल रही थी, फिर हल्के टैंकोंकी कतारें। कहीं चुस्त सवार अपने दृढ़ घोड़ोंपर चढ़े मार्च कर रहे थे और पीछे-पीछे पैदल सैनिक आ रहे थे। फिर मजदूरोंका फौजी गारद आ रहा था और अन्तमें मजदूरोंका विराट जुलूस। लाल मैदान-के आसमानमें सैकड़ों सैनिक विमान घन-घना रहे थे। बरफ पड़ चुकी थी, और अभ्यास न होनेसे पृथ्वीसिंह एक-दो जगह बिछलकर गिरे भी। समाजवादी जनताके इस अपार उत्साहको देखकर पृथ्वी-सिंहने अपना जन्म सफल समझा। कामरेड स्तालिन, कलिनिन, वोरोशिलोफ आदि जननायकोंके साथ, चालीस-पचास गज पर ही पृथ्वीसिंहका जुलूस गुजर रहा था। उन्होंने नेताओंके चेहरोंको बड़े गौरसे देखा।

पृथ्वीसिंह लेनिन स्कूलमें जानेके लिए जोर दे रहे थे। लेनिन स्कूलमें कम्युनिस्ट पार्टीके मेम्बर ही लिये जाते थे। पृथ्वीसिंह अभी

पार्टी-मेम्बर नहीं थे। इस कठिनाईको उन्हें पार्टीमें भर्ती करके दूर कर दिया गया।

लेनिन स्कूलमें ५०० के करीब विद्यार्थी थे, जिनमें १०० स्त्रियाँ थीं। अंग्रेज, फ्रान्सीसी, जर्मन, अमरीकनके अतिरिक्त, चीन, जापान, मलाया, सुमात्रा आदि एशियाई मुल्कोंके भी कम्युनिस्ट छात्र वहाँ मौजूद थे। पृथ्वीसिंह अंग्रेजी माध्यमवाले क्लासमें शामिल हुए।

पढ़ाईके विषय थे—मजूर वर्गका इतिहास, क्रान्तियोंका इतिहास, अर्थशास्त्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। पृथ्वीसिंह अब अपनी पढ़ाईमें पिल पड़े और छ महीने बीतते-बीतते अध्यापकोंने उनकी पढ़ाईकी दाद देनी शुरू की।

१९३२ की जनवरी या फरवरीमें उन्हें बुखार हो आया। पूरी तरहसे स्वस्थ होनेके लिए मास्कोके पास ही उन्हें एक स्वास्थ्य-भवनमें भेजा गया। लेकिन वह वहाँ दस बारह दिनसे ज्यादा नहीं ठहर सके। वजन ठीक होते ही पढ़ाईमें पीछे रह जानेका डर मालूम हुआ। यहाँ उनका नाम था **पॉलरिचार्ड मार्को!** मेक्सिको-निवासी मॉर्को मास्को-में कम्युनिज्म सीखने आये हैं। पढ़ाईमें सैनिक शिक्षा भी शामिल थी और हफ्तेमें कुछ दिन कवायद-परेड, रिवाल्वर-रायफल-हैन्डग्रेनेड-मशीन गन चलाना, सड़कोंपर लड़ना, आदिकी शिक्षा पहले ही साल उन्हें समाप्त करनी पड़ी।

राजमहेन्द्री जेलमें रहते वक्त असहयोग कालमें पृथ्वीसिंह भी राजनीतिक समस्याओं पर खास तौरसे सोचने लगे थे और उसमें धर्म, राजनीति और रूढ़ियोंकी एक अजबसी खिचड़ी पका रहे थे। वह समझते थे—सतयुगमें ब्राह्मणोंका राज था, फिर क्षत्रियोंका, अब वैश्योंका है और आगे "पूर्णपुरुष" का राज होनेवाला है। हाथसे काम करने वालोंके लिए उन्होंने यह नया शब्द गढ़ा था। यहाँ उन्हें समाजके विकासपर लेक्चर सुनने पड़े, और उन्हें मालूम हुआ कि कैसे आरम्भमें शिकार और फल-संचयके जीवनमें लोगोंका सब कुछ साझेमें था,

वैयक्तिक संपत्ति नहीं थी, लेकिन पशु-पालन और उससे भी ज्यादा कृषि और ताँबे, लोहेके इस्तेमालके साथ धनी-गरीबका भेद उग्र रूप लेने लगा। जिन थोड़ेसे लोगोंके पास पशु या अन्नके रूपमें ज्यादा सम्पत्ति आ गयी, वे दूसरोंको मजूरीपर रख कर उनसे अपने लिए और धन कमवा सकते थे, उनकी सम्पत्तिकी ओर कोई आँख न फेरे, इसके लिए वह भाड़ेपर लड़ाके रख सकते थे। पृथ्वीसिंह भावनगरके सारे जीवनमें समझते थे कि "भारतीय तरुण" एक जादूभरा शब्द है, बस एक बार तरुणोंको कसरत, अनुशासन, संगठन, और कष्ट-सहिष्णुताका अच्छा पाठ पढ़ा दिया जाय; फिर बेड़ा पार। उन्हें यह कहावत याद नहीं आती थी कि वही दूध साँपके पेटमें विष बन जाता है। अपने वर्गके आर्थिक स्वार्थसे बँधे तरुण कभी क्रान्तिके सच्चे सिपाही नहीं हो सकते। मास्कोमें पृथ्वीसिंहने वर्ग-भेद और वर्ग-संघर्षके बारेमें पढ़ा, तो उन्हें खुद अपने काठियावाड़ी तरुणोंके उदाहरण याद आने लगे। मॉर्को को यह बिल्कुल नयी बात मालूम हुई।

स्कूलमें उन्हें और कामोंके अतिरिक्त भारतके हिन्दी-उर्दू पत्रोंसे अंग्रेजीमें अनुवाद करना पड़ता था। यह प्रथम पंचवार्षिक योजनाके कठिन दिन थे, जबकि सोवियत राष्ट्रने जल्दीसे जल्दी सैनिक और औद्योगिक साधनोंके संबंधमें दूसरे मुल्कोंसे आजाद होनेके लिए पक्का निश्चय कर लिया था और उसी योजनाके अनुसार लकड़ी, तेल और रोटी भी बेंचकर बाहरी मुल्कोंसे यांत्रिक सामान मँगाये जा रहे थे। अभीतक भगवान्‌के भरोसे खेती होती थी, ट्रैक्टर, पानीकी नहरों और बिजलीके पम्पोंका सहारा नहीं मिला था; इसलिए उस साल खानेकी चीजें कम रहीं। सभी खानेकी चीजोंपर कंट्रोल (राशनिंग) थी, तो भी लेनिन स्कूलके विद्यार्थियों—जिनमें बाहरसे आये तरुणोंकी संख्या अधिक थी—के खाने-पीनेका सबसे अच्छा इन्तजाम था।

मई (१९३२) का महीना आया। सात महीनेकी कड़ी पढ़ाईके बाद शरीरको स्वस्थ और दिमागको ताजा करनेके लिए कुछ विश्राम

करनेकी जरूरत थी। मॉर्कोको कोहकाफ भेजा गया। उन्होंने मनीपुर और आसामको देखा था, हिमालयको भी दूरसे देखा था; हिमालयके देवदारों और बरफ बिछी घाटियोंमें घूमनेका यदि मौका मिला होता, तो मॉर्को यह एकतर्फा फैसला न देते, कि दुनियाका यही सबसे सुन्दर दृश्य है। वस्तुतः हिमालय और कोहकाफ सहोदर हैं। वह किस्लोव्स्ककी सुन्दर उपत्यकामें ठहरे थे। किस्लोव्स्क अपने धातुमिश्रित स्वास्थ्यकर जलके लिए मशहूर है और उसके पासकी चोटी कोहकाफके सुन्दर दृश्योंकी झाँकीके लिए भी है। मॉर्कोका मन उस चोटीपर चढ़नेके लिए बहुत ललचाने लगा। एक दिन वह बड़े आनन्दके साथ चोटीकी ओर चढ़े जा रहे थे। दिया बलते वक्त चोटीपर पहुँचे। चारों तरफ अद्भुत दृश्य था। एक बार वह सौन्दर्यपानमें आत्म-विस्मृत हो गये, लेकिन एकाएक उनके कलेजेमें हूक उठ खड़ी हुई। उनका मन कहने लगा, "ओ गुलाम, क्या अधिकार है तुझे इस प्राकृतिक सुषमाके पान करनेका? इसके अधिकारी वह हैं, जिन्होंने अपने बलसे स्वतन्त्रता प्राप्त की है।"

मॉर्को जल्दी-जल्दी चोटीसे उतरते दिखलाई दिये। उन्होंने जल्दीसे जल्दी तैयारी करके अपनी मातृभूमिको लौट जानेका निश्चय किया।

महीनेभर बाद वह मास्को लौट आये। एक महीने बाद अब वोल्गाकी यात्राका प्रबन्ध हुआ; लेकिन यह सिर्फ यात्रा नहीं थी, विशाल वोल्गाके वक्षपर तैरते जलपोतमें ३०० विद्यार्थियोंका एक स्कूल चल रहा था। मास्कोसे कजानतक रेलमें गये, वहाँसे जहाजपर सवार हुए। जहाज दिनमें चलता, शामको ठहर जाता। प्रथम पंच-वार्षिक योजना समयसे पहले ही समाप्त हो रही थी। नगरों और सामूहिक खेतोंमें, सभी जगह लोगोंमें अपार उत्साह था। लेकिन स्कूलके विद्यार्थियोंको कभी कहीं कारखाना देखनेको जाना पड़ता, कभी सामूहिक खेतोंको। छ महीने बीतते ही बीतते मॉर्को रूसी समझने लगे थे। वोल्गाकी विशाल, शान्त, गहरी धाराको देखकर उन्हें प्यारी गंगा

और सिन्धुकी याद आती। वह खयाल करते; क्या हिन्दुस्तानमें भी एक दिन तरुणोंके चलते-फिरते स्कूल अपनी सुन्दर नदियोंपर विचरण करते हुए ज्ञान-वृद्धिके साथ-साथ प्रकृतिकी शोभाका आनन्द लेंगे? वोल्गाका पानी कहीं हल्का नीला दिखलाई पड़ता, और कहीं कुछ हरा-सा। उसके किनारेके कगार बिना जंगलके कहीं दृष्टिको दूरतक फैलनेकी इजाजत देते, और कहीं अपने पास ही रोक लेते। वोल्गाकी मछली खानेमें बहुत स्वादिष्ट मालूम देती, कपूरसी चाँदनी जिस वक्त वोल्गाकी धारापर छायी रहती, तो दूर वृक्षोंकी काली पंक्तियाँ और नजदीककी बस्तियोंके सौध देखनेमें अद्भुतसे मालूम होते। इस यात्रामें तरबूजे और दूधकी खूब भरमार रही। जहाजपर मॉकोंके सिवा और कोई दूसरा भारतीय नहीं था। शारीरिक व्यायाममें जो अभ्यास उन्हें करना पड़ा, उसमें था तैरना, कूदना, भार उठाना, फर्स्ट-एड आदि।

अस्त्राखान जाकर उन्होंने रेल पकड़ी और रोस्तोफ, खारकोफ देखते हुए महीना भर बीतते-बीतते मास्को लौट आये।

मॉकोंका अबतकका २९ वर्षका जीवन एक दूसरे साँचेमें ढला था, जो आज वक्त बिल्कुल अस्वाभाविकसा लगता। परन्तु अब वह बदल चुके थे। आदर्शके लिए सर्वत्यागकी भावना मॉकोंमें कई गुना बढ़ चुकी थी। पहले जहाँ उनके सारे त्याग और तपस्यामें श्रद्धाका बल ज्यादा था, वहाँ अब बुद्धि भी सोलहो आना सहयोग देनेके लिए तैयार थी।

मॉको स्कूलके बहुत ही परिश्रमी विद्यार्थी थे, इसलिए भी उनका अधिक सम्मान होता था। अगले सालके क्रान्ति-महोत्सव (नवम्बर) में जब वह जुलूस और सैनिक प्रदर्शन देखने लाल मैदानमें गये, तो वहाँ और भी नये-नये हथियार देखे। ७०० सैनिक विमानोंसे आसमान ढँक गया था। पिछली बार कितने ही सैनिक हथियारोंका वह नामतक नहीं जानते थे, लेकिन अब उनका परिचय बहुत बढ़ गया था, इसलिए

सोवियत बलके इस जबरदस्त प्रदर्शनसे उन्हें बहुत संतोष और आनन्द प्राप्त हुआ।

जाड़ोंमें अब वह सारी ताकत लगाकर पढ़ाईमें जुटे हुए थे। भारतीय समस्याओंके अध्ययनके लिए उन्हें अकसर पूर्वी विश्वविद्यालयमें जाना पड़ता। वह सब काम मन लगाकर किन्तु जल्दी-जल्दी कर रहे थे, क्योंकि अगले साल (१९३३) के वसंतमें उन्हें भारत लौटना था।

भारतके लिए प्रस्थान (अप्रैल १९३३)

इस वक्ततक बाबा गुरुमुखसिंह मास्को पहुँच गये थे। भारतमें चलकर क्या करना है, इसके बारेमें उनसे बातचीत होती थी। अप्रैलमें बाबा गुरुमुखसिंहके साथ वह रेलसे ताशकंद होते हुए स्तालिनाबाद आये। अब वह पामीरमें थे, जिनकी सीमा एक ओर कश्मीरसे मिलती है और दूसरी ओर अफ़गानिस्तानसे। अफ़गानिस्तान और फिर स्वतंत्र कबीलोंके इलाके (दाग़िस्तान) के रास्ते उन्हें भारत लौटना था।

रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था। अभी बरफ पूरे तौरसे पिघली नहीं थी। एक पथ-प्रदर्शकके साथ चार दिन चलनेके बाद वह आमू दरियाके किनारे पहुँचे। दरियाका पानी बहुत ठंडा था और धार भी तेज थी। अफगानिस्तानके सैनिकोंसे आँख बचाकर इसी पानीमें होकर एक जगह पार होना था। रातको पृथ्वीसिंह मसकपर भार रख हाथके सहारे जिस वक्त नदी पार कर रहे थे, उस वक्त ठंडकके मारे शरीर शून्य सा होता जा रहा था। गुरुमुखसिंह घोड़ेकी पूँछ पकड़कर पार हो रहे थे। पूँछ टूट गयी और धारने उनको बेकाबू कर दिया। इसी समय पथ-प्रदर्शक सहायताके लिए न पहुँच गया होता, तो वह खतरेमें पड़ गये थे।

पार होकर वे रात ही रात चल पड़े। केस और दाढ़ी, भेष छिपानेमें बाज वक्त बहुत खतरेकी चीज होती है; लेकिन बाबा गुरुमुखसिंहने अपने साथी सिखको केस काटनेके लिये नहीं कहा। वह उस पहाड़ी और जंगलके रास्तेसे २० मीलतक गये। एक पुलिस-पार्टी जा रही थी। इसको शक हुआ और उसने तीनोंको पकड़ लिया। पूछने पर तीनोंने

अपनेको हिन्दुस्तानी व्यापारी कहा और बताया कि हम व्यापार करने सोवियतके भीतर गये थे, लेकिन बोल्शेविक अफसरोंने हमें पकड़ लिया और बड़ी मुश्किलसे हम उनके पंजेसे निकल भागे हैं। अफगान पुलिस वालोंने उनकी बातपर विश्वास किया और एक आदमी साथ करके फैजाबाद भेज दिया। फैजाबादमें १०, १५ दिन पड़े रहे। वहाँ उन्हें ताजिकिस्तान (सोवियत) से घर-फसल जलाकर भागे कितने ही धनी किसान (कुनबे) मिले; जो सभी सोवियत-शासनके सख्त विरोधी थे; क्योंकि अब वह गरीबोंका खून नहीं चूस सकते थे। इन सोवियत-शत्रुओंमें कितने ही रूसी और यहूदी भी थे। पहले उन्होंने अपने कपड़ों और दूसरे सामानको बेंच-बाचकर खाया, फिर वे दूकानोंपर भीख माँगते फिरे। जबतक भगोड़ोंकी संख्या कम थी, तबतक तो अफगानिस्तान-वाले उन्हें भीख माँगनेके लिए भी छोड़ देते। मगर अब संख्या बढ़ती देख उन्होंने एक दूसरा ढंग अख्तियार किया था। अफगान सिपाही भगोड़ोंको घेरकर पामीरके ऐसे इलाकेमें छोड़ आते, जो अफगानिस्तान काश्मीर और ताजिकिस्तानके बीचमें पड़ता है; और जिस निर्जन भूमिका कोई मालिक नहीं। वहाँ उनपर क्या-क्या बीतती, वह वे ही जानते। नारायनदास (पृथ्वीसिंह) ने एक दिन देखा कि सिपाही काफिलेको पामीरके लिए तैयार कर रहे हैं। दो ही चार घंटे पहले एक रूसी लड़की-के बच्चा पैदा हुआ था, अब उसे चलनेका हुक्म हुआ था। गंदी सरायसे अपना बच्चा गोदमें दबाये लड़की निकली, उसके कपड़ोंमेंसे अब भी खून जा रहा था। नारायनदासको यह देखकर आश्चर्य और खेद हुआ। मनुष्य वैयक्तिक स्वार्थके लिए कितना पतित हो सकता है, और कितने कष्टोंतकके सहनेको तैयार हो जाता है, इसका यह एक अच्छा उदा-हरण था। जरा भी देर करनेपर अफगान सिपाही कोड़े मार रहे थे।

फैजाबादसे नारायनदास, बाबा गुरुमुखसिंह और हुकुमसिंह खानाबाद भेजे गये। वहाँ हुकुमसिंहके एक परिचित आदमीने जमानत दी और तीनों छोड़ दिये गये। पुलिसने इस शर्तके साथ छोड़ा था कि

वह बीस दिनके भीतर काबुलमें गवर्नरके सामने हाजिर हो जायँगे। हुकुमसिंह ताजिकिस्तानका रहनेवाला था, वह उधर लौट गया। बाकी दोनों जने एक घोड़ा और एक खच्चर लिये तेजीसे काबुलकी ओर चले! काबुल एक दिन दूर रह जानेपर उन्होंने अपने घोड़े और खच्चर बेच दिये।

जुलाई या अगस्तका महीना था। दोनों जने काबुल पहुँच गये। २० दिन ही बाद हाजिर न होनेपर पुलिस फिर उनके पीछे पड़ती, इसलिए वह एक पथ-पदर्शक लेकर अफगानिस्तानकी ओर चल पड़े थे। दूसरे दिन जब वह पहाड़के किनारे नदीके साथ-साथ चल रहे थे, तो फौजी चौकीवालोंको शक हुआ और उन्होंने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। वहाँसे भी किसी तरह निकलनेमें सफल हुए। सीधे रास्तेमें खतरा ज्यादा था। पथ-प्रदर्शकको ज्यादा रुपया दिया और उसने एक पहाड़को पारकर बे-रास्ते ले जाना चाहा। लेकिन वहाँ निकलनेका रास्ता नहीं मालूम हुआ। ऊपरसे सूखे पहाड़की गर्मी और प्यासने इतना सताया कि उन्हें लौट आना पड़ा। दिनभर झाड़ीमें पड़े रहे, रातको जलालाबादकी सड़कपर जा निकले। एक चौकी पार कर उन्होंने ताँगा कर लिया। यदि पैदल ही चले होते, तो पुलिसको शक न होता। पुलिसने उन्हें पकड़ लिया और एक-एक चीजकी तलाशी ली। हजार रुपयेका सोना और जो कुछ भी पैसा-कौड़ी उनके पास मिला, उसे पुलिसवालोंने अपना लिया, और आवारागर्दीका अपराध लगाकर उन्हें पुलिसके हवाले कर दिया।

अध्याय १२

काबुल जेलकी नरक यातना

काबुल जेलका सुपरिन्टेण्डेण्ट और पुलिसका बड़ा अफ़सर गुरुमुख-सिंहसे पहलेसे ही अदावत रखता था। अब उसे अच्छा मौका मिला। पृथ्वीसिंहको कैसी यातनाएँ सहनी पड़ीं, उनके बारेमें उन्होंने "बॉम्बे सेन्टिनल" (१४, १५ जून, १९३८) में जो लिखा है, उससे पता चलेगा। उनके शब्द हैं :—

"साहसी तरुण सिर्फ़ बहादुरी और उत्तेजनाके आनन्दके लिए अपनेको जोखिममें डालना पसन्द करते हैं। लेकिन हम दोनों—पृथ्वीसिंह और गुरुमुखसिंह न तरुण थे न तरुणाईका नशा हमारे ऊपर सवार था। हम लोगोंने परिस्थितियोंसे मजबूर होकर अफ़गानिस्तानके पहाड़ी जंगलोंमें अपनेको डाल दिया। जून १९३३ की किसी तारीख-को जब हमने इस खतरेके रास्तेपर पैर रखा, तो हमारे दिलमें सिर्फ एक ही हविस थी कि भारत चलकर वहाँकी कमकर जनताकी आजादीके लिए जो लोग सर्वस्व लगाये हुए हैं, उनके सामने अनुभव और सेवाओंको भी पेश करें।

"......भारत आनेके सभी रास्ते हमारे लिये बन्द थे, इसलिए हमें हिन्दूकुशकी बर्फानी चोटियोंका चक्कर काटकर भारतका रास्ता निकालनेके लिये मजबूर होना पड़ा।

"डक्कामें गिरफ्तारीके ४० दिन बाद प्रधान मन्त्रीके खास हुक्मके अनुसार हमें १६ हथियारबन्द सैनिकोंके साथ मामांखेल (काबुल) के जेलमें भेजा गया। हम दोनों जिस लॉरीपर लाये गये थे, उसीपर १६ सिपाही भी थे। लॉरी काबुलके बाहरी दरवाजेपर समयसे कुछ

पहले पहुँची, इसलिए उसे आगे जानेकी इजाजत नहीं मिली। सूर्यास्त-के समय सिपाहियोंको लॉरीसे उतरनेका हुक्म हुआ और वे भरी बन्दूकें लिये हमसे ५० गजपर खड़े होकर आपसमें सलाह करने लगे। हम गोली खानेकी आशामें थे लेकिन हमें निराश होना पड़ा। छ सिपाहियोंको लॉरीपर चढ़नेका हुक्म हुआ। वे रायफलको नीचे रख-कर लॉरीके फर्शपर लेट गये। लारी रवाना हुई और थोड़ी देर बाद हम काबुल सेण्ट्रल जेलके भीतर थे।

"जेलके भीतर घुसते ही कामरेड गुरुमुखसिंह बोल उठे 'जिन्दा दर-गोर' अर्थात् जिन्दा ही दफन कर दिये गये। जेलमें हमारे साथ जो बदला लेनेका बर्ताव होने लगा, उससे हमें निश्चय हो गया कि अब हम फिर जीवित बाहर न जा सकेंगे। जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट जो शहर कोतवाल भी था—हमारा इन्तजार कर रहा था, और जैसे ही हम आये, उसने जेलके दूसरे अफसरों और सिपाहियोंसे कहा—'अगर कोई दूसरा कैदी या सिपाही अफगानिस्तानके इन दुश्मनोंके पास जाता पाया गया, तो उसपर बड़ी बेरहमीसे कोड़े पड़ेंगे। और यदि ये किसीके पास जाते दीख पड़ें, तो इनपर खूब मार पड़ेगी।' हमको अपने सेलमें पहुँचाया गया, जिसमें एक ही द्वार था और वह भी जेलरके ऑफिसमें खुलता था—जेलरका आफिस ही उसके रहनेका घर था।

"काबुल आये हम लोगोंको चार ही दिन हुए थे कि एक अफ-गान तरुणने काबुलके ब्रिटिश दूतावासपर गोली चलायी। अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंने जरा भी देर किये बिना इस घटनाको हम लोगोंके साथ जोड़ दिया और अफगान सरकारपर दबाव डाला। लेकिन अफगान सरकारने हमें अंग्रेजोंके हाथमें देनेसे इनकार किया, यद्यपि वह इस बातके लिए तैयार थी कि अंग्रेज जिस तरह बतायें वह हमारे साथ उसी तरह बर्ताव करे।

"अफगान सरकार अपनी बातकी पक्की उतरी और उसने साफ साबित कर दिया कि उस सरकारसे भारतीय क्रान्तिकारियोंको किसी

भी तरहकी दयाकी आशा नहीं रखनी चाहिये। न डाक्टरकी सहायता हमारे लिए थी, न अफगानिस्तान या हिन्दुस्तानमें अपने मित्रोंको पत्र लिखनेका अधिकार था; न हम अफगान बादशाह या मन्त्री अथवा जेलके सुपरिन्टेण्डेण्टसे कोई अपील कर सकते थे।...जेलके सुपरिन्टेण्डेण्टने अपने ऊपरी अधिकारियों और अंग्रेजोंको विश्वास दिलाया था कि जहाँ ये लोग बन्द हैं, वहाँ पंछी भी पर नहीं मार सकता...।

"सामन्तशाही मुल्कमें मामूलीसे मामूली कसूर पर भी आदमी गिरफ्तार किया जा सकता है। पहले उसपर खूब मार पड़ती है, जो तभी बन्द होती है, जब कि वह अभागा आदमी अपना सारा रुपया-पैसा या उसके पास जो भी मालमता हो, उसका अधिकांश उन्हें दे दे। वह अपनी धन-सम्पत्तिको पकड़नेवालोंकी आँखोंसे छिपा नहीं सकता।

शान्ति और व्यवस्थाके ठेकेदार जानते हैं कि उसे कैसे मालूम किया जा सकता है। कैदियोंको न खाना दिया जाता है और न कपड़ा। फिर सम्बन्धी जेलके दरवाजेपर कैदीकी सुधि लेने आते हैं, तो खानेकी किस्म, बिस्तर और सम्बन्धीकी शकल-सूरत देखकर वे भाँप लेते हैं कि कैदी धनी है या नहीं। फिर तो जबतक जेलवालोंकी भेंट-पूजा होती रहती है, तभीतक कैदीको खाना कपड़ा भी मिलता है।

"गिरफ़्तारीके बाद तुरन्त पाँच-सात सेरकी बेड़ी कैदीके पैरोंमें डाल दी जाती है। मुकदमा स्थानीय काजी (जज) के पास जाता है और फैसला तो कितने ही महीनों या वर्षोंतकमें होता रहता है। फैसलेमें जल्दी या देर होना भी गिरफ्तार आदमीकी थैलीपर निर्भर करता है।

"सजा हो जाने पर कैदीको किसी छोटे या बड़े जेलमें भेज दिया जाता है। सवारीका कोई इन्तजाम नहीं, इसलिए कैदीको बेड़ी पहिने यह सारी यात्रा पैदल ही तै करनी पड़ती है। यदि कैदी पैसेवाला है,

तो उसे साथ चलनेवाले सिपाहियोंको भी खिलाना पड़ेगा, नहीं तो खुद भूखा रहना पड़ेगा। अगर कैदीके पास कुछ नहीं है, तो हर पड़ाव भीख माँगनेके लिए घुमाया जायगा। छोटे या बड़े जेलमें पहुँचने पर कैदीको बराबर जेलर और सिपाहियोंकी भेंट-पूजा करते रहना पड़ेगा, नहीं तो जेलसे जिन्दा निकलनेकी आशा छोड़ देनी होगी।

"पैरोंकी बेड़ीको वहाँ दण्डमें नहीं गिना जाता। सबसे क्रूर दण्ड है वह शारीरिक दण्ड, जिसमें चार तगड़े आदमी कैदीके हाथ-पैरोंको पकड़कर फैलाये हुए उसे हवामें उठा लेते हैं। फिर दो मजबूत आदमी हाथमें बेंत और कोड़ा लेकर आते हैं। यदि और कुछ नहीं मिला तो पठानोंके मोटे चप्पल ले लेते हैं। मारकी कोई गिनती नहीं, वह तब-तक जारी रहती है, जबतक कि कैदीका चिल्लाना बन्द नहीं हो जाता या जबतक उसकी सुगबुगाहट खतम नहीं हो जाती। फिर उसी मूर्छित अवस्थामें उसे या तो पानीमें डाल दिया जाता है, या उसी जगह बिना दवाई-दर्पनके उसके भाग्यपर छोड़ दिया जाता है।

"शारीरिक दण्डके बारेमें कहीं कागजपर कुछ लिखा नहीं जाता। कैसे अपराधीको शारीरिक दण्ड देना चाहिये, कैसेको नहीं, इसका कोई नियम नहीं है। यह सब वहाँ मौजूद अफसरकी इच्छापर निर्भर करता है। सिपाही किसी कैदीको कोड़े मार सकता है, हवलदार किसी सिपाहीको कोड़े मार सकता है, और हमने कप्तान जैसे अफसरको मेजरके हाथों बेंत खाते अपनी आँखसे देखा है। ऐसी भी अफवाहें सुनी हैं कि प्राइम मिनिस्टर अपने अन्य साथी मिनिस्टरपर भी बेंत चला देता है। यदि यह बात सच हो तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

"………यदि किसी कैदीकी मदद करनेवाला कोई नहीं है, तो उसे अपने मामलेको लिखकर अफसरके पास देना होगा। अगर अफसर दयालु हुआ, तो वह कैदीको एक अधपकी पठानी रोटी सबेरे और एक शामको दे देगा। दाल-भाजीका कोई सवाल ही नहीं है। रोटीका

वजन छः छटाँक बताया जाता है, मगर वह कभी उतनी नहीं उतरती। पकाना भी नामके लिये ही होता है। आटेको गूँध और दबाकर बाटीके शकलमें भी दिया जा सकता है। अगर गरीब कैदीको रोटी देनेकी कृपा जेलरने नहीं की, तो उसके लिए आहारका एक ही रास्ता है, कि वह धनी कैदियोंकी खिदमत करे और उनके जूठनपर जीवन-निर्वाह करे।

"काबुल शहरके चारों तरफ बहनेवाले नालोंसे ही कैदीको पानी मिल सकता है। इन खुले गन्दे नालोंमें जो पानी बहता है, उसीको नहाने, कपड़ा धोने और पीनेके लिए इस्तेमाल करना होता है। पासके एक गाँवसे होता हुआ ऐसा ही एक नाला जेलके हातेसे गुजरता है। नाला दो फुट चौड़ा और डेढ़ फुट गहरा है। अगर कोई बहुत ध्यानसे देखे, तभी पानी बहता मालूम देगा। उसमें सारे गाँवकी गन्दगी होती है। फिर उसीमें हजारके करीब कैदियोंका नहाना-धोना होता है। उसके बाद नालेका पानी मनुष्यके पीने लायक नहीं रह जाता।...... यदि एक प्याला पानी लेकर देखें, तो उसमें चार-पाँच जूँ तो जरूर मिलेंगी।

"काम वैसे ही लिया जाता है, जैसे हिन्दुस्तानी जेलोंमें; हाँ, वहाँ कोई नियम नहीं हैं......।

"कैदियोंको जेलके भीतर अपने साधारण कपड़ोंको पहिनना पड़ता है। अपने जीर्ण–शीर्ण शरीरको सिले लत्तोंसे ढांके कंगालोंको देख दिल फटने लगता है। जाड़ेके दिनोंमें गरीब कैदियोंके कपड़ेका इन्तजाम करनेके लिए परेड होती है।

"इस परेडके लिए बहुत थोड़े आदमी चुने जाते हैं और उसमें भी सिर्फ वे ही आदमी लिये जाते हैं, जिनके बारेमें यह निश्चित समझा जाता है कि ठीक कपड़ा-लत्ता न होनेसे वे ज्यादा दिन जिंदा नहीं रह सकेंगे। जब इन अभागोंमेंसे कोई मर जाता है, तो उसके कपड़े बिना धोये ही दूसरे कृपापात्र कैदीको दे दिये जाते हैं।

"हेड क्लर्क, जेलर और असिस्टेन्ट-जेलरने कपड़ेकी जरूरतवाले कैदियोंमें हम दोनोंका भी नाम लिख दिया, यह सिर्फ दयासे प्रेरित होकर। लेकिन जब सुपरिन्टेण्डेण्टने हमारा नाम पढ़ा, तो नाम लिखनेवालेको खूब गालियाँ देने लगा। एक पखवारे बाद दूसरी सूची तैयार की जा रही थी, हेडक्लर्कने फिर हमारा नाम दे दिया, इस बार बेचारेपर खूब मार पड़ी।

"अत्यन्त खतरनाक राजनीतिक बन्दियोंको छोड़कर सभी कैदी ठूँस ठूँसकर एक ही बैरकमें बन्द कर दिये जाते हैं। मैंने सिर्फ एक सेलमें दस कैदियोंको ठूँसे देखा था। उनका अपराध यह था कि वह सोवियत भूमिसे अफगानिस्तान भाग आये थे। यह सेल १० फुट चौड़ी १२ फुट लम्बी और १४ फुट ऊँची थी। चौबीसों घन्टे उन्हें इसी सेलमें रहना पड़ता, दरवाजा उसका सदा बन्द रहता, और सिर्फ एक छोटी सी खिड़की खुली रहती........।

"समयपर छूटना उन्हींका हो सकता है, जो किसी तरह प्रभाव डलवा सकते हैं, नहीं तो सजाकी मीयाद पूरी होनेके महीनों बादतक कैदीको छोड़नेका खयाल नहीं किया जाता।

"हम दोनोंके साथ जेलमें बहुत ही क्रूर बर्ताव होता था, जिससे हमारा स्वास्थ्य खतम हो चला। हम प्रयत्न कर रहे थे कि जबतक अफगानिस्तानके बाहरकी राजनीतिक संस्थाओंसे सम्बन्ध नहीं हो जाता तबतक किसी न किसी तरह अपनेको जिन्दा रक्खें। लेकिन, जेलवालोंके अमानुषिक अत्याचारको बर्दाश्तसे बाहर देखकर हमें भूख-हड़तालके लिए मजबूर होना पड़ा।

"लेकिन इसका जेलके अधिकारियोंपर जरा भी प्रभाव न पड़ा। ......न कोई डाक्टर आया न सरकारी मुलाकाती ही हमारे सेलमें आये। लेकिन धीरे-धीरे बाबा गुरुमुखसिंहका बुढ़ापा और हम लोगोंका दुस्सह कष्ट हमारे सिपाहियोंके दिलको हिला देनेमें सफल हुआ...।

"एक दिन हमने देखा कि जेलवाले अफसर सारे सिपाहियोंके साथ

किसी काममें बड़ी तत्परता दिखा रहे हैं।...तीन लट्ठोंको फाँसीके चौखठेके तौरपर खड़ा किया गया। ऊपरसे एक रस्सी लटक रही थी। सभी कैदी समझ रहे थे कि अब दो हिंदुओंका खात्मा होनेवाला है।...लेकिन तैयारी हमारे लिए नहीं हो रही थी।

"जब जेलका बड़ा फाटक खुला, तो हमने देखा अच्छे कपड़े-लत्ते पहिने पाँच भद्र लोग आ रहे हैं। उनके चेहरोंपर आत्माभिमान और रईसीकी छाप थी। उनको यह नहीं मालूम था कि उन्हे कहाँ ले जाया जा रहा है। एकाएक बाँई और मुड़नेपर उन्होंने फाँसीकी टिकठीको देखा।...बड़े शांत और गम्भीर भावसे उन्होंने पानी माँगा, फिर हाथ पैर धोकर आखिरी नमाज पढ़ने लगे।

"जल्दी ही हमें मालूम हो गया कि यह पाँचों अमानुल्लाहके प्रगतिशील शासनमें अफगानिस्तानके बड़े-बड़े वजीर थे। वे सभी जल्दी से जल्दी छुट्टी पा लेनेके लिए आगे बढ़नेकी कोशिश कर रहे थे। लेकिन उन्हें अपनी आयु और दर्जेके अनुसार टिकठीपर जाना पड़ा। ६० वर्षसे ज्यादा उम्रके भूतपूर्व वजीर आजमको पहले झूलना पड़ा। पहली पारीके तीन आदमियोंमेंसे एककी गर्दनमें फन्दा ठीकसे नहीं लगा, और बीस मिनटतक तड़पनेके बाद उसकी जान निकली। जिस जगह यह हृदय-द्रावक नाटक खेला जा रहा था, वह हमारे सेलसे मुश्किलसे २५ गज दूर होगी; इसलिए यह सारा दृश्य हमारे स्मृतिपटलपर अच्छी तरह अंकित हो गया।......वजीर आजमकी लाश सारे दिन उसी तरह लटकती रही। उसकी एक ही बुढ़िया बीबी बच रही थी, और दूसरे संबंधी या तो फाँसीपर लटक चुके थे या कैद थे।

"नादिरखाँने इस तरह अपने रास्तेके सभी काँटोंको दूर करके समझा कि अब उसका तख्त सुरक्षित है। लेकिन ज्यादा दिन नहीं बीतने पाये कि एक गोलीने उसका भी काम तमाम कर दिया। जिस तरुणने यह काम किया था, उसको सामन्तशाहीकी सारी यातनाओंका शिकार होना पड़ा और अन्तमें खुले आम फाँसीपर चढ़ा दिया गया।

जिस जगह इस तरुणको कतल किया गया, उसे हम अपनी खिड़कीसे देख सकते थे। सिर काटनेके पहले उस असहाय तरुणके साथ राज्यके प्रमुख वजीर बड़ी क्रूरतासे पेश आये। चाकूसे उसकी नाक और कान काट लिये गये......!

"जाड़ेके दिन थे, थरमामीटर हिम रेखासे २०–२५ डिग्री नीचे जा रहा था। खिड़की और दरवाजेकी चौखटों दरारोंसे बर्फानी हवा आकर हमारे शरीरोंको छेद रही थी। चीथड़ों, रस्सियों, ऊन और कपाससे हम इन दरारोंको मूँदना चाहते थे, लेकिन हमें उसमें सफलता नहीं मिली। अन्तमें हमने फर्शकी मिट्टीको खुरचकर उसे पानीमें भिगोया और उससे दरारें बन्द कीं। इस तरह हम हड्डियोंतकको छेदनेवाली बर्फानी हवासे अपनेको बचा सके।

"अफगान सरकार हमें फाँसीपर न चढ़ा, ठण्डी मौतके घाट उतारना चाहती थी। उसने पूरा इन्तजाम किया था कि बाहरी दुनिया-से हमारा कोई सम्बन्ध न हो सके। सर्व-साधन-सम्पन्न और संगठित सरकार एक ओर थी और दूसरी ओर थे दो असहाय बेड़ियोंमें जकड़े, कड़े पहरेमें बन्द कैदी। हमने अफगान सरकारको नीचा दिखानेका निश्चय किया था!"

नरक यातनासे मुक्ति

पृथ्वीसिंह और गुरुमुखसिंहकी नारकीय यातनाओंसे उनके पहरे-वाले सिपाहियोंका भी दिल द्रवित होने लगा था। उनके सेलका दर-वाजा जेलके आफिसमें खुलता था। जेलरका एक तरुण सम्बन्धी, जो जेलरकी बीबीका प्रेमी भी था, अक्सर वहाँ आता था। धीरे-धीरे वह तरुण दोनों हिन्दू कैदियोंके प्रभावमें आया। वह समझता था कि दोनों हिन्दू खूब मन्त्र-तन्त्र जानते हैं। उसने अपनी मुराद पूरी होनेके लिए पृथ्वीसिंहसे ताबीज माँगा। पृथ्वीसिंहने सोवियतके राज्य चिन्ह लाल सितारेको लिखकर दे दिया। इसी तरह एक दिन दोनोंके दुःखों-की करुण कहानी सोवियत दूतावासमें पहुँच गयी और फिर कोमिन्टर्न-

से होते-होते दुनियाके कोने-कोनेमें पहुँची। सारी दुनियामें जबरदस्त आन्दोलन होने लगा, अफगान-सरकारके पास तारपर तार आने लगे। अमरीकाके एक बैरिस्टरने उनके मुकदमेकी पैरवीके लिए काबुल आनेके लिए लिखा।

अफगान-सरकार सब जगह बदनाम होने लगी। जेलके सुपरिन्टेण्डेण्टने अफसरों और पहरेदार सिपाहियोंसे पूछा कि कैसे हिन्दुस्तानियोंकी लिखी चिट्ठी हिन्दुस्तान और लन्दन पहुँची। कुछ अफसरोंने जबाब दिया—"साहब, यह काफिर भारी जादूगर हैं।"

४ जुलाई १९३४ को तड़के ही जेलका दरवाजा खुला और उन्हें सोतेसे जगाया गया। हवाई-स्टेशनपर सोवियत हवाई जहाज उनका इन्तजार कर रहा था। वह उसपर चढ़कर फिर सोवियत-भूमिमें पहुँच गये। पहले अफगान सरकार चाहती थी कि पामीरके किसी निर्जन स्थानमें उन्हें छोड़ दिया जाय, जहाँ विदेशी सरकारके गुण्डे उनका काम खतम कर दें। अंग्रेज जोर भी लगा रहे थे कि उन्हें उनके हाथमें दे दिया जाय। अमेरीकाकी गदर पार्टीने जोर लगाया कि चूँकि वह किसी सरकारकी प्रजा नहीं हैं, इसलिए सोवियत सरकार उनका जिम्मा ले। सोवियत सरकारने जिम्मा लिया।

———

अध्याय १३

सोवियत भूमिसे फिर भारतमें

सोवियत हवाई जहाज उसी दिन उन्हें ताशकन्द ले गया, जहाँसे दो दिन बाद वे मास्कोके लिए रवाना हो गये। दोनों ही बहुत कमजोर थे, मौतके मुँहसे बाल-बाल बचे थे। उन्हें साईबेरियाके एक सैनेटोरियममें १०-१२ दिन रक्खा गया। फिर एक मासके लिए क्रीमियाके स्वास्थ्य-वर्धक नगर याल्तामें। उन्होंने १९३४ के नवम्बर क्रान्तिके महोत्सवको फिर मास्कोके लाल मैदानमें देखा। अबकी बार पृथ्वीसिंह एक सम्माननीय मेहमानके तौरपर बैठकर लाल सेनाका प्रदर्शन देख रहे थे। पिछले तीन सालोंके भीतर लाल सेना कहाँसे कहाँ पहुँच गयी, यह उन्हें अच्छी तरह मालूम हुआ।

भारतके लिये रवाना

पृथ्वीसिंहने भारत जानेका निश्चय किया। अबकी बार यात्रा और भी मुश्किल थी। अफगानिस्तानमें गिरिफ्तार होनेसे पहले अंग्रेजी खुफिया विभाग नहीं जानता था कि पृथ्वीसिंह कहाँ हैं। काबुल जेलमें अंग्रेजी सरकारकी शहसे उनका फोटो लिया गया और शरीरके हरएक चिन्हको नोट किया गया।

हिन्दुस्तानमें हर जगह उनके स्वागतके लिए खुफियावाले तैयार थे, लेकिन पृथ्वीसिंहको भारत जरूर जाना था। उन्होंने पास-पोर्ट तैयार कराया, जो देखनेमें असली-सा मालूम होता था, लेकिन था जाली। सबसे बड़ी गलती उसमें यह हुई कि उमर ४३ की जगह २७ लिखी थी। और रही सही कमीको विदेशी जहाजके अफसरने पूरा

कर दिया। उसने पास-पोर्ट पर लिख दिया "रूसके ओदेसा बन्दरसे रवाना।"

ऐसे पासपोर्टको लेकर पृथ्वीसिंह अंग्रेजी हिन्दुस्तानमें कहीं भी सुरक्षित रूपमें नहीं उतर सकते थे। वह दिसम्बरमें एक इतालियन जहाजसे मार्साई (फ्रान्स) के लिये रवाना हुए। नेपिल्समें फासिस्ट पुलिसने टोका और कहा कि कोई कम्युनिस्ट मालूम होता है; लेकिन कप्ताननें यह कहकर छुड़वा दिया कि कोई भलेमानुस आदमी हैं। अब जहाजसे जाना उन्होंने अच्छा नहीं समझा। नेपिल्ससे रोम और जेनेवा होते हुए वह रेल द्वारा पेरिस पहुँचे। ओदेसाका नाम उन्होंने काट दिया। पेरिस सारी दुनियाके गुप्तचरोंका अड्डा है। पृथ्वीसिंहने सिर्फ़ रातको घूम-घूमकर फ्रान्सकी राजधानी देखी।

अब पान्डिचेरीमें उतरनेको ही उन्होंने एकमात्र सुरक्षित रास्ता समझा! जनवरी १९३५ में एक फ्रांसीसी जहाज पकड़कर वह भारतके लिए रवाना हुए। जहाज कोलम्बो और मद्रासमें भी लगा, मगर उन्होंने किनारेकी ओर झाँका तक नहीं। अन्तमें २४ जनवरी १९३५ को वह पान्डिचेरीमें उतरे।

भारत भूमिपर

किनारेपर उतरते ही फ्रांसीसी खुफिया-पुलिस पीछे पड़ी। पृथ्वी-सिंह होटलमें गये, दो गुप्तचरोंकी ड्यूटी लग गयी। उनके पास हिन्दु-स्तानी रुपया नहीं था। उन्होंने खुफियावालोंसे बदलनेके लिये कहा। इसपर उन्होंने कहा कि हम चार बजे आकर बदल देंगे। उन्होंने समझा इसके पास पैसा तो है नहीं इसलिये जायेगा कहाँ! पृथ्वीसिंह कितने ही समयतक इन्तजार करते रहे, फिर बाजार गये, पैसे बदले, धोती खरीदी और अँधेरा होते ही शहरसे निकल पड़े। खेतोंमें जाकर झाड़के नीचे धोती बदल ली।

जिस वक्त वह कडलूरकी सीमासे बाहर हो रहे थे, उसी समय एक सादे कपड़ेवाले आदमीने उन्हें रोकना चाहा, लेकिन वह क्यों रुकने

लगे। उन्होंने समझाने-बुझानेकी कोशिश की। लेकिन वह आदमी उन्हें थानेमें जानेके लिये जोर दे रहा था। जब समझाना और प्रलोभन बेकार हुआ तो उनके लिए दूसरा तरीका अख्तियार करना जरूरी हो गया। पृथ्वीसिंहने उसे कुछ और पास आने दिया और फिर एकाएक उसपर टूट पड़े। उसे जमीनसे उठाकर खूब जोरसे पटका। आदमी मजबूत और जवान था, वह उठकर भागने लगा। लेकिन इस तरह आसानीसे निकल जाने देना भी तो ठीक नहीं था। उन्होंने दौड़कर फिर उसे पकड़ लिया। अबकी बार पीटनेकी जगह उन्होंने उसकी धोती खोली और बाँधकर उसके मुँहमें कपड़ा ठूँस देना चाहा। जिस वक्त वह उसके मुँहमें कपड़ा डाल रहे थे, उसी वक्त उस आदमीने उनकी अंगुली काट खानी चाही। उन्होंने दो-चार घूँसे, कोहनी और घुटनोंकी मार लगायी। अँगुली तो मुँहसे निकल आयी मगर चमड़ा और नसें कट चुकी थीं। इस बीचमें आदमी धोती छोड़ नंगे ही निकल भागा। पृथ्वीसिंह भी खेतोंका रास्ता ले दौड़कर घने जंगलोंसे घिरे एक पहाड़में घुस गये। वह जानते थे कि पुलिस उनके पीछे होगी, इसलिए यहाँसे निकलना ही अच्छा है। वह सारी रात चलते रहे। दिनको किसी झाड़ीमें सो जाते और रातको सफर करते। वह अंग्रेजी भारतमें थे, लेकिन तो भी स्टेशनपर जाकर टिकट करानेकी हिम्मत नहीं होती थी।

पृथ्वीसिंहके पैरोंमें नया बूट था, जिसे उन्होंने पेरिसमें खरीदा था। १०० मीलकी यात्राको खेतों, पहाड़ों और जंगलोंमेंसे होते हुए जल्दीसे जल्दी पार करना था। कई सालोंसे नंगे पैर न घूमनेकी वजह-से बूटको निकालकर चलनेमें कंकड़ियाँ चुभती थीं, इसलिए उन्हें बूट पहने ही दौड़ना पड़ा।

चलते और दौड़ते हुए आखिर वह मद्रास पहुँचनेमें सफल हुए। वहाँ उन्हें अपने एक परिचित गुजराती सज्जन हेमचन्द्र मेहताका पता लगा। लेकिन परिचय सिर्फ एक दूसरेके नामसे था। नौकर पृथ्वीसिंह-को मालिकके पास ले गया। मालिकने एक ऐसे दरिद्रसे आदमीको

सामने आया देख आश्चर्य जरूर किया होगा, मगर उन्होंने पृथ्वीसिंह-से बैठनेका इशारा किया। पृथ्वीसिंहने खड़े ही खड़े कहा—"मुझे एक ग्लास पानी मँगा दीजिये।" उन्हें प्यास भी बहुत लगी थी, साथ ही यह भी नहीं चाहते थे कि नौकरके सामने कोई बात कहें। नौकर पानी लेने गया। उन्होंने धीमे स्वरसे कहा—"मैं स्वामीराव हूँ, यह जानना आपके लिए काफी होगा। बड़ी मुश्किलसे मैं यहाँतक पहुँचा हूँ। अब आगे जानेके लिए मेरे पास ताकत नहीं रह गयी है। अगर आप मेरी सहायता करनेके लिए तैयार हों तो मैं बैठूँगा, नहीं तो मैं किसी दूसरे भाईकी सहायता लूँगा।" थोड़ी देरतक वह चुपचाप कुछ विचारमें डूब गये, लेकिन १–२ मिनटके बाद ही उनके होठोंपर मुस्कराहट थी। उन्होंने पृथ्वीसिंहसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा।

नौकर पानी ले आया। मालिकने उसे अपने प्राईवेट सेक्रेटरीको बुला लानेके लिए भेजा। सेक्रेटरीके आने पर मालिकने कहा, "यह श्री स्वामीराव हैं। इनकी बातें सुनो और जो कहें उन्हें पूरा करो।"

सेक्रेटरी स्वामीरावके नामसे परिचित था। वह उन्हें रसोईघरमें ले गया। उन्होंने जूता पहने खानेकी इजाजत माँगी। एक हिन्दू घरमें जूता पहनकर खाना जरूर आश्चर्यकी बात थी। मगर पृथ्वीसिंहने पाँच दिनसे अपने कपड़े नहीं बदले थे। उनका दाहिना हाथ खून सने गन्दे चीथड़ेसे बँधा हुआ था। नौकरों और स्त्रियोंने समझा होगा, कोई पागल भिखमंगा है। भोजन करनेके बाद अब उनमें चलनेकी ताकत नहीं रह गयी। दूसरोंके सहारे वह एक घोड़ा-गाड़ीमें बैठे। कुछ दूर जाने पर घोड़ा-गाड़ीसे टेक्सीमें, और फिर पनाह लेनेके स्थानपर श्री टी० प्रकाशम् के बँगलेपर पहुँच गये।

पृथ्वीसिंहने अपने दोस्तसे कहा, "पहले तो मुझे बदलनेके लिए कपड़ा दीजिये और हजामत बनवाइये, फिर चाकू-कैंची ले आइये।" फूले पैरोंसे बूट निकालना सम्भव नहीं था। उन्होंने जूतेको काट-काटकर ही नहीं निकाला बल्कि उसके साथ मांस और चमड़ेको भी

कहीं-कहीं काटना पड़ा। वह उस अवस्थामें किसी डाक्टरकी सहायता-को खतरेकी बात समझते थे, इसलिये सब कुछ उन्होंने अपने हाथसे ही किया, फिर दवा लगाकर पट्टी बाँध दी। दर्द तो बहुत हो रहा था, लेकिन वह कई दिन-रातके थके और नींदके मारे थे, इसलिये इस अवस्थामें भी सो गये। पूरे छ दिनतक वह जमीनपर पैर नहीं रख सकते थे, सातवें दिन वह जमीनपर खड़े हुए। पृथ्वीसिंहके मित्रके लिए यह खतरेकी बात थी, लेकिन उन्होंने उसकी परवाह न की। अब वह उस जगह और अधिक नहीं रहना चाहते थे।

श्री जोशीसे भेंट

डाक्टर सुब्रह्मण्यम् और साम्बमूर्ति पृथ्वीसिंहके राजमहेन्द्री जेलके ही परिचित थे। उन्होंने इस अवस्थामें उनकी बड़ी सहायता की। भले चंगे होकर मार्चके महीने (१९३५) में वह बम्बई आये। वहाँ मिरजकर, पाटकर, इकबाल आदि कम्युनिस्ट साथियोंसे मुलाकात की। पृथ्वीसिंह भारतीय पार्टीके सेक्रेटरी कॉमरेड पूरनचन्द्र जोशीसे मिलकर कुछ बातें करना चाहते थे, साथियोंने स्थान और समय बताकर कहा कि वहाँ एक जिम्मेदार आदमी आयेगा और वह तुम्हें जोशीके पास ले जायेगा। किसी वजहसे जोशी खुद वहाँ पहुँच गये। जोशीके पास ले चलनेकी बात कहने पर जब उत्तर मिला कि मैं ही जोशी हूँ, तो पृथ्वीसिंहको सन्देह हो गया। उन्होंने साफ कह दिया, "मुझे अफसोस है, कि मैं तुमसे बात नहीं कर सकता।" जोशीके कितना ही कहने पर भी पृथ्वीसिंह टस-से-मस नहीं हुए और घरवालोंसे यह कहकर चले गये कि घण्टे भरसे पहले इन्हें जाने न देना।' जोशी बहुत मुश्किलमें पड़े, क्योंकि उनके विरुद्ध खुद वारण्ट था और इनाम-की भी घोषणा थी।

साथियोंने सलाह दी कि पृथ्वीसिंहको ज्यादा घूमना-फिरना न चाहिये। सात-आठ महीनेतक वह इसी तरह छिपे रहते, पार्टीके पत्रव्यवहारकी सुरक्षामें सहायता करते।

उस समय पृथ्वीसिंहके एक दोस्त उन्हें २५) मासिक सहायता देते थे। अपने दो क्रान्तिकारी साथियोंके साथ बम्बईके एक गरीब मोहल्लेमें वह रहा करते। २५) मेंसे ८) मकान किरायेमें चला जाता था, २) का अखबार मँगाते, बाकी १५) में तीनों आदमियोंका खाना, कपड़ा धोना, और मिट्टीका तेल आता था। ऐसी असह्य दरिद्रतामें वह छ महीनेतक रहे। ऐसा जीवन वह और उनके साथी तब बिता रहे थे, जब विरोधी बदनाम कर रहे थे कि कम्युनिस्टोंके पास तो मॉस्कोसे ढेरका ढेर सोना आता है। मॉस्को अपने यहाँ आये हुए किसी भी क्रान्तिकारीकी दिल खोलकर सहायता कर सकता है; लेकिन वह जानता है कि जनताकी क्रान्ति बाहरके सोनेके बलपर नहीं हो सकती। जनताको क्रान्तिके लिए तैयार करने पर जनता खुद सारे खर्चका बोझ अपने ऊपर उठा लेगी।

चपरासी, दरबान और मैनेजर

१९३५ के अन्तमें पृथ्वीसिंहने बाहर आनेका निश्चय किया। कुछ दिनों एक समाचारपत्रके आफिसमें चपरासी और दरबान रहे, फिर उन्होंने एलिमोनियम आदिकी एजेन्सी ले ली। पार्टीकी आर्थिक अवस्था ऐसी थी कि आर्थिक आयका कोई रास्ता निकालना वैसे भी जरूरी था, मगर यहाँ तो एक गैर-कानूनी पार्टीको देश-विदेशके साथ सम्बन्ध रखना भी जरूरी था। पृथ्वीसिंहने इस काममें बहुत मदद की। यद्यपि अब उन्हें रातको नहीं दिनके उजालेमें लोगोंके सामने आना पड़ता था, लेकिन वह अपनी प्रत्युत्पन्न-मतिपर पूरा भरोसा रखते थे। बम्बई शहरके सबसे बड़े व्यवसाय केन्द्रमें वह रहते थे, जहाँसे हजारों उनके परिचित चेहरे गुजरते रहते। यह जोखिमकी बात जरूर थी, लेकिन पृथ्वीसिंहको विश्वास था कि उनके परिचित उच्च और मध्यमवर्गके व्यक्ति हैं; वे निम्न श्रेणीके चेहरोंमें अपने परिचितोंको नहीं ढूँढ़ सकते। लेकिन चेहरा देखनेसे कोई भी पूर्व परिचित व्यक्ति उनको आसानीसे पहचान सकता था। फिर भी जब बड़े आदमियोंको

उनका सलाम लेनेतककी फुर्सत न मिलती थी, तो उनके चेहरेको पहचाननेका क्या सवाल था ?

सफरी एजेन्टी

पृथ्वीसिंह एक कारखानेके टाइमकीपर मुकर्रर हुए। मैनेजरने उनके चेहरे और बात-चीतको देखकर समझा कि यह आदमी अच्छा ट्रेवलिंग (सफरी) एजेन्ट हो सकता है। पृथ्वीसिंहने उनकी बात स्वीकार की। अब पृथ्वीसिंह भिन्न-भिन्न तरहकी चीजोंका नमूना तथा आर्डरकी किताब लेकर एक जगहसे दूसरी जगह घूमने लगे। अपने ४० दिनके पहले सफरमें वह कम्पनीके लिए बहुतसे आर्डर लानेमें सफल हुए। मैनेजरको उनकी सफलतासे बहुत खुशी हुई।

एक बार वह बंगलोरके एक गुजराती होटलमें भोजन कर रहे थे। उनके सामने दो तरुण बैठे थे। आध-घण्टातक वह मेजपर बैठे रहे। एक तरुण पृथ्वीसिंहको ध्यानसे देख रहा था। पृथ्वीसिंहको सन्देह होने लगा, किन्तु तरुणने कुछ नहीं पूछा। इसके बाद ऐसा संयोग हुआ कि दोनों कितने ही दिनोंतक एकही दिशामें चक्कर लगाते रहे। तरुण उनके प्रति ज्यादा स्नेह दिखाने लगा था, लेकिन तब भी उसने अपने पुराने परिचयके बारेमें एक शब्द मुँहसे बाहर नहीं निकाला। पृथ्वीसिंहका भी उस तरुणकी ओर ज्यादा झुकाव हुआ, क्योंकि वह कोरा व्यापारी एजेन्ट ही नहीं था, बल्कि उसमें दूसरी तरहकी भी सुरुचि थी। छ महिनेतक दोनों एक दूसरेके सामने कभी दिल नहीं खोलते। तरुण उन्हें अपना गुरु मानता और पृथ्वीसिंह उसमें भविष्यके एक अच्छे क्रांतिकारी होनेकी आशा रखते। एक दिन संयोगसे एक दूसरे साथीसे मुलाकात हुई और फिर पता लगा कि जिस तरुणको वह धीरे-धीरे करके पार्टीमें ले जानेका खयाल रखते थे, वह पहलेसे ही पार्टीमें है। पृथ्वीसिंह अबकी बार किसी दूसरे व्यापार-केन्द्रमें अपने कामके लिए गये थे। एक खूबसूरत तरुणने बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम किया। लेकिन पृथ्वीसिंहने उसे उस अर्थमें स्वीकार नहीं किया।

तरुण मुश्किलसे २० सालका था। उनके काठियावाड़ छोड़नेके वक्त वह १० सालसे ज्यादाका न होगा। कोशिश करने पर भी वह तरुणके बारेमें कुछ स्मरण नहीं कर सके। खानेके बाद रातको सभी एजेन्ट ताश खेलने लगे। पृथ्वीसिंह भी उसमें शरीक हुए। तरुण उनके प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित कर रहा था और जब तब गुरुजी कहकर सम्बोधित करता। पृथ्वीसिंहने कहा—"भाई, यह अच्छा नौजवान है, मुझे तो इसने गुरु भी बना दिया और बाकी लोगोंको काका।" तरुण जरासा मुसकराया और फिर वैसे ही खेलनेमें लग गया। आधी रात बाद जब खेल बन्द हो गया, तो पृथ्वीसिंहने जाकर उस तरुणसे उसके विचित्र बर्तावके बारेमें पूछा। तरुणने कहा "स्वामीजी, तुम अपने उन विद्यार्थियोंको धोखेमें नहीं रख सकते, जो तुम्हारी गोदमें खेले हैं।"

एक दिन पृथ्वीसिंह अपने दो नये दोस्तोंके साथ दूकानमें कपड़ा खरीदने गये। उन्होंने कपड़ा बेचनेवाले तरुणसे कुछ कपड़े दिखलानेके लिए कहा। तरुण उनके चेहरेकी ओर देखने लगा। पृथ्वीसिंहके भीतर कुछ घबराहट हुई। तरुणने मुस्कराते हुए कहा—"आप भावनगरके स्वामीराव तो नहीं हैं?" पृथ्वीसिंहने ठहाका लगाते हुए अपने दोनों दोस्तोंकी ओर मुँह करके कहा "आप लोग बता सकते हैं, मेरे चेहरेमें क्या खास बात है कि एक आदमी तो मुझे शान्ति भाई कहके पीछे दौड़ने लगा। खैर, उसे तो मैंने पागल समझा। लेकिन, यहाँ देखिये यह मुझे स्वामीराव कह रहे हैं।" तीनों दोस्त हँसने लगे। तरुणने झेंपकर नम्रतापूर्वक कहा, "माफ कीजिये, मैंने गलतीसे आपको भावनगरका अपना स्वामीजी समझा।"

"कौन हैं यह स्वामीजी और कहाँ है भावनगर?"

"भावनगर काठियावाड़में है। वहाँ एक आदमी थे, जिन्हें हम प्यारसे स्वामी कहा करते थे। उनका नाम था स्वामीराव।"

❀ ❀ ❀

एक दिन पृथ्वीसिंह अपने दोस्तके साथ "तुकाराम" फिल्म देखने गये। जब वह सड़कपर आये, तो सामने रेस्तराँमें खाते एक तरुणकी नजर अपने ऊपर पड़ती देखी। तरुण पैसे और प्यालेको वहीं छोड़ छलांग मारकर पृथ्वीसिंहके सामने आकर खड़ा हो गया। वह खूब हट्टा-कट्टा मजबूत जवान था और अच्छी तरह एक हाथ मिला सकता था। एक मिनटसे ज्यादा वह उसी तरह मुस्कराता अविचल दृष्टिसे पृथ्वीसिंहके चेहरेको देखता रहा। पृथ्वीसिंहको याद नहीं आ रहा था, तो भी उनके मनमें घबड़ाहट नहीं पैदा हुई; क्योंकि वह तरुणकी आँखोंमें स्नेह और सम्मानको झलकता हुआ देख रहे थे। फिर तरुणने कहा, "कितना आश्चर्य है? कितनी जल्दी आप मुझे भूल गये? मैं अमुकका छोटा भाई हूँ।" पृथ्वीसिंहको अब याद आ गया। उन्होंने भी प्रेम प्रदर्शित किया। तरुण घर चलनेके लिए आग्रह करने लगा, अपने दूसरे दोस्तके सामने पृथ्वीसिंह किसी बातको खोल नहीं सकते थे। पृथ्वीसिंहने अपने पैरोंसे तरुणके अंगूठेको जोरसे दबाया। उसने बात समझ ली और फिर आग्रह नहीं किया।

❀ ❀ ❀

उस समय पृथ्वीसिंह एक बहुत बड़े शहरमें एक नकली एजेण्ट बनकर रह रहे थे। उन्होंने बहुत तरहकी चीजोंके नमूनोंको इस तरह सिलसिलेसे लगा रक्खा था कि मालूम होता था, दरअसल बहुतसी कंपनियोंकी एजेन्सी इनके हाथमें है। एक दिन पाँच बजे शामको सादे कपड़ेमें दो खुफियावालोंने उनका पीछा करना शुरू किया। उनको यह नहीं मालूम था कि वे एक बड़े क्रांतिकारीका पीछा कर रहे हैं। वह समझ रहे थे, शायद कोकीन, अफीम बेचनेवाला कोई आदमी हो। पृथ्वीसिंहने पीछा छुड़ानेकी बहुत कोशिश की, मगर वह पीछा नहीं छोड़ते थे। अन्तमें एक हड्डी बैठानेवालेके कमरेमें गये। उससे कहा कि मुझे समय-समयपर छुट्टियोंमें गाठियाका दर्द होता है। आदमीने एक घन्टेतक खूब मालिश की। पृथ्वीसिंहने दर्द बढ़ जानेकी मुद्रा दिखलाते

हुए टेक्सी बुला देनेके लिए कहा। टेक्सी ले वह वहाँसे निकल गये और खुफियावाले मुँह ताकते रह गये !

❀ ❀ ❀

पृथ्वीसिंहने अपनी कम्पनीका काम ट्रैवलिंग एजेन्टके तौरपर खूब अच्छी तरह निबाहा था। कम्पनीके मालिक अब उनपर बहुत विश्वास रखते थे। एक बार मालिक, जो कम्पनीके मैनेजर भी थे, किसी कामके लिए २० दिनकी छुट्टी गये। उनकी अनुपस्थितिमें पृथ्वीसिंहको मैनेजरका काम दिया गया। उन्हें सब कामकी देख-भाल करना और कागजोंपर सही भी करना पड़ता था। कितनी ही बार उन्हें अपने हस्ताक्षरके कागज पुलिसके पास भी भेजने पड़े। दो बार अंग्रेज सारजंट उनके ऑफिसमें कुछ पूछताछ करने आया। इसी समय एक पंजाबी छुट्टीपर घर जा रहा था, वह देखनेमें खूब चुस्त और चालाक मालूम होता था। खुफियावालेने क्रांतिकारी समझ उसे गिरफ्तार कर लिया। नौजवानने अपना पता-ठिकाना दिया। सी. आई. डी. वाले मैनेजरसे उनके बारेमें कुछ पूछ-ताछ करने आये। पृथ्वीसिंहने मैनेजरके तौरपर उन्हें समझाया कि नौजवान भला आदमी है, उसे खामखवाह हैरान न करो। उन्होंने उसके लिए सिफारिश की और नौजवान उसी वक्त छोड़ दिया गया।

❀ ❀ ❀

उस वक्त बम्बईमें वह जिस मालिकके पास काम कर रहे थे, उसने प्रदर्शनीमें अपने कारखानेकी सबसे अच्छी-अच्छी चीजें दिखाने और बेचनेको रक्खी थीं। मालिकने समझा, पृथ्वीसिंह जैसा रोबीला और अच्छा बोलनेवाला आदमी यदि वहाँ रहेगा, तो उसे बड़ी सफलता होगी। लेकिन जहाँ हजारों आदमी देखनेके लिये आते हों, वहाँ पृथ्वी-सिंह कैसे खड़े हो सकते थे ? वहाँ उन्हें बोलना पड़ता, बहस करनी होती और हँसते-मुस्कराते खरीदारोंको खरीदनेके लिए तैयार करना

पड़ता, ऐसी स्थितिमें अपनेको छिपाना उनके लिए बहुत मुश्किल होता, विशेषतया जब कि प्रदर्शिनी भी एक महीनेतक चलनेवाली थी। पृथ्वीसिंहने मालिकको बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन वह फिर भी जानेके लिए आग्रह करता रहा। आखिरमें पृथ्वीसिंहको नौकरीसे इस्तीफा दे देना पड़ा।

अध्याय १४

आत्म-समर्पण और जेलमें

सन् १९३७ में भारतके प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रिमंडल शासन करने लगे थे। बम्बईके कांग्रेसी मंत्रियोंके कितने ही दोस्त पृथ्वीसिंहके भी मित्र थे। उस वक्त किसी न किसीसे भेंट हो जाती थी। अब उनके सामने सवाल यह था——या तो इसी तरह गुमनाम अपना समय बितायें और जनताके साथ खुलकर सम्बन्ध स्थापित करनेसे वंचित रहें, अथवा ऐसा कोई रास्ता निकालें, जिससे उन्हें फिर जनताके भीतर खुलकर काम करनेका मौका मिले। उन्होंने पार्टीके अपने साथियोंसे सलाह ली। गांधीजी बंगालके क्रान्तिकारियोंको छुड़ानेकी कोशिश कर रहे थे। साथियोंने कहा—"महात्माजीसे मिलिये। यदि वह आपको छुड़ानेकी कोशिश करनेका वचन दें, तो आत्म-समर्पण कर देना अच्छा होगा। कुछ दिनों बाद आपके लिए खुलकर काम करना सम्भव हो जायगा।"

महात्माजीसे भेंट

१९३८ का मई महीना था। महात्माजी कांग्रेस कार्य-कारिणीकी बैठकमें बम्बई आये थे और जुहूमें बिड़ला-भवनमें ठहरे थे। महात्माजी स्वयं भी भावनगरके स्वामीरावको जानते थे। पट्टाभी सितारामय्या तथा स्वामीरावके कितने ही गुजराती दोस्तोंने उनके बारेमें महात्माजी-को सूचित किया और बताया कि वह अब आपके साथ काम करना चाहते हैं। महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पृथ्वीसिंहको भेजने-के लिए कहा। नियत समयपर पृथ्वीसिंह बिड़ला भवन गये। महादेव-भाई देसाईने कहा "महात्माजी थके हुए हैं, अभी वह किसीसे मिल नहीं सकते।

पृथ्वीसिंहने कहा—"आप जरा महात्माजीसे कहिये कि वह आदमी आ गया है, जिसे आपने इस वक्त बुलाया था।"

महात्माजीने खबर पाते ही पृथ्वीसिंहको बुला लिया। पृथ्वीसिंहकी महात्माजीसे कितनी ही देरतक बात होती रही। उन्होंने कहा—"मेरा अब आतंकवादपर बिल्कुल विश्वास नहीं रहा। मैं जनताके बलपर विश्वास करता हूँ और समझता हूँ कि आपने जन-बलको जाग्रत करनेमें बहुत बड़ा काम किया है।" महात्माजीने आत्म-समर्पणके बारेमें बात-चीत होते वक्त कहा—"यह बड़े खतरेकी बात है। कौन जानता है, सारी जिन्दगी तुम्हें जेलमें ही रहना पड़े।"

"कोई परवाह नहीं। लेकिन यदि आप मेरे छुड़ानेकी कोशिश करनेकी जिम्मेवारी लेते हैं, तो मैं आत्म-समर्पणके लिए तैयार हूँ।"

पृथ्वीसिंह बात-चीत करके लौट आये। उस वक्त कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी थी और उसके सभी प्रमुख व्यक्ति पुलिसके पंजेसे बचनेके लिये अंतर्धान रहा करते थे। जिस साथीसे उन्हें अंतिम सम्मति लेनी थी, वह किसी कारण-वश नहीं मिल सका। वह महात्माजीको वचन दे आये थे, इधर साथी मिला नहीं। अकेले निर्णय कर लेनेके वह खिलाफ थे, मगर अब कोई चारा नहीं था। गांधीजीने उन्हें अपने बारेमें संक्षिप्त तौरसे कुछ लिखनेके लिए कहा था। वह रातभर लिखते रहे।

आत्म-समर्पण (२० मई १९३८)

२० मईको सवेरे १० बजे पृथ्वीसिंह गांधीजीके पास पहुँचे और उन्हें अपना लिखा वक्तव्य दिया। वक्तव्यमें लिखा था—"राष्ट्रके प्रतिनिधिके सामने मैं बिना किसी शर्तके आत्म-समर्पण करता हूँ।"

पहले तै हुआ था कि पृथ्वीसिंहको वर्धा ले जाकर सरकारके हाथमें दिया जाय, लेकिन उसी दिन उनके एक दोस्तको पार्टीके किसी साथीसे इस बातका पता लग गया और उन्होंने जुहूमें जाकर महादेव भाईसे कहा—"मैं सरदार पृथ्वीसिंहसे मिलने आया हूँ।"

सारी बात गुप्त रक्खी थी, इस तरह अचानक एक आदमीको पृथ्वी

सिंहके बारेमें पूछते देख उन्हें सन्देह हो गया कि यह जरूर पुलिसका आदमी है। उसी वक्त महात्माजीने महादेवभाईके हाथसे बम्बईके कलेक्टरके पास पत्र लिखवाया और शामसे पहले ही वह ठाणा जेलमें पहुँचा दिये गये।

ठाणा जेल (२० मई १९३८)

सरदार पृथ्वीसिंहको पौने-दो महीनेतक ठाणा जेलमें रहना पड़ा। वहाँ और कोई दूसरा राजनीतिक कैदी नहीं था, मामूली कैदियोंको उनके पास नहीं आने दिया जाता था। अब उनका समय सिर्फ पठन और चिंतनमें लगता था।

सारे हिन्दुस्तानके पत्रोंमें सरदार पृथ्वीसिंहके आत्म-समर्पणकी खबरें मोटे-मोटे अक्षरोंमें छपीं। उनके भाईको भी पता लगा और वह भाईसे मुलाकात करने बम्बई चले आये। १९ जूनको जेलके फाटकपर भाईसे मिलनेके लिए वह बुलाये गये। एक युगके बाद दोनों मिले। साथमें दो और नौजवानोंको देखा। संदेह हुआ, वह शायद खुफियाके आदमी हों। जेलरसे पूछने पर उसने बताया कि यह भी आपके ही भाई हैं। उससे पहले वह समझते थे कि दुनियामें उनका सगा-सम्बन्धी अब कोई नहीं रहा! लेकिन अब उन्होंने डिप्टीसिंह, वर्मासिंह और रामसिंह अपने तीन-तीन भाइयोंको देखा। जब पृथ्वीसिंहने पिताके बारेमें पूछा तो तीनों भाई अपने आँसुओंको न रोक सके। दूसरे दिन फिर उनके भाई दो घण्टेके लिए मिलने आये। उन्होंने चलते वक्त भाइयोंसे कहा—"तुम्हें अपने ऐसे भाईका अभिमान होना चाहिये, जिसने देशके लिए अपना जीवन दे दिया। भाईके तौरपर मुझसे और किसी बातकी आशा न रखना। मुझे अपने जीवनके आदर्शके पीछे चलनेको छोड़ दो।"

ठाणामें रहते-रहते सरदारने अपने आरम्भिक जीवनके बारेमें कुछ संक्षेपसे लिखा। महात्माजीने ऐसे बहादुरकी जीवनीको देशके लिए उपयोगी समझकर लिखनेके लिए आग्रह किया था।

रावलपिण्डी जेलमें

९ जुलाई १९३८ को सुपरिण्टेन्डेन्टने सूचित किया कि आपको पंजाबके किसी जेलमें जाना होगा। पृथ्वीसिंहके जितने परिचित बम्बई और उसके आसपासमें थे, उतने पंजाबमें नहीं थे। लेकिन सरकारकी आज्ञाको कौन टालता? पंजाबका नाम सुनते ही उन्होंने यह भी समझ लिया कि अब हम ऐसी गवर्नमेन्टके हाथमें जा रहे हैं, जिसपर गांधी-जी और सार्वजनिक रायका सबसे कम प्रभाव पड़ सकता है, और उसकी आड़में अँग्रेज सरकार अपने सारे मलालको निकालना चाहेगी। आखिर १९६६ तकके लिए तो उनकी पुरानी सजाएँ ही मौजूद थीं।

पंजाब सरकारने एक सब-इन्स्पेक्टर और दो कान्स्टेबिल लानेके लिए भेजे थे। जब सुपरिन्टेन्डेन्टने सब-इन्स्पेक्टरके हाथमें पृथ्वीसिंहका चार्ज देना चाहा, तो सब-इन्स्पेक्टरने लेनेसे इनकार कर दिया। उसने कहा—"इतने खतरनाक कैदीको हम तीन आदमी नहीं ले जा सकते।" आखिरमें बम्बई सरकारको पाँच कान्स्टेबिल और एक जमादार और देना पड़ा। हो सकता है सब-इन्स्पेक्टरको उसके मालिकोंका ऐसा ही आदेश रहा हो। उनको यह ध्यानमें लानेकी जरूरत नहीं थी कि जिस क्रान्तिकारीने स्वयं अपनी खुशीसे अंग्रेजी सरकारके हाथमें अपने आपको दे दिया और जिसे कलेक्टर अपनी प्राइवेट कारमें बिना एक भी कान्स्टेबिलके लाकर ठाणा जेलमें रख गया, उसे एक जेलसे दूसरे जेलमें ले जानेके लिए इतने आदमियोंकी क्या जरूरत है! पंजाब सरकारने शरीरसे बहुत मजबूत एक सिक्ख सब-इन्स्पेक्टरको इसीलिए भेजा था कि अपनी इच्छासे आत्म-समर्पण करनेवाले सरदार पृथ्वीसिंहको हाथ-से निकलनेका मौका न मिल सके। सब-इन्स्पेक्टर और उसके साथियों-को उनके ऊपरके अफसरोंने तरह-तरहकी कहानियाँ सुनाकर यह समझानेकी कोशिश की थी कि तुम एक जंगली दरिन्देको पकड़ने जा रहे हो। थोड़ी देरकी बातचीतके बाद सब-इन्स्पेक्टरको मालूम हो गया कि उसे किसी खूँख्वार दरिंदेसे पाला नहीं पड़ा है, बल्कि एक सुशिक्षित

सुसंस्कृत मनुष्यके साथ चलनेका मौका मिला है। पंजाब सरकारने सब सोच-समझकर पृथ्वीसिंहके लिए रावलपिण्डी जेलको चुना था। रावलपिण्डी जेलको ही इसलिए चुना गया कि वह अपनी कड़ाईके लिए मशहूर था; वहाँ एक भी राजनीतिक बन्दी न था; वहाँका डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट राजनीतिक बन्दियोंके साथ कठोर बर्ताव करनेके लिए मशहूर था, अतएव सरकारका बहुत खैरख्वाह था।

पोर्टब्लेयरके जेलमें सुपरिन्टेन्डेन्ट रह चुका आदमी ही अब पंजाबके जेलोंका इन्स्पेक्टर-जेनरल था। उसकी कोशिश थी कि पृथ्वीसिंह दूसरे राजबन्दियोंसे न मिलने पायें। पुराने रिकार्डको पढ़कर ऊपरके अधिकारियोंने खूब कड़ा रहनेका आदेश दिया था। लेकिन डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्टने सरदार पृथ्वीसिंहको जिस रूपमें सामने देखा, उससे उसने उनके प्रति विश्वास करना ही अच्छा समझा।

जहाँतक जेलके कायदे-कानूनका विरोध नहीं पड़ता था जेलके अफसर उनके साथ सहृदयताका बर्ताव करते थे। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट कैप्टन हैदर बहुत ही साफ दिलके आदमी थे। कई बार ऊपरसे कड़े बर्तावका हुक्म आया, लेकिन सुपरिन्टेडेण्टने उसकी परवाह न कर अपना ही तरीका इस्तेमाल करना पसन्द किया। बम्बई सरकारने सरदार पृथ्वीसिंहको "ए" श्रेणीका कैदी बना करके भेजा था; लेकिन पंजाब सरकार इसे क्यों पसन्द करने लगी? आई. जी. ने "ए" वर्ग छीन लेनेका हुक्म भेजा। कैप्टन हैदरने दो महीनेतक उसके लिए लिखा-पढ़ी की और अन्तमें मजबूर होकर उन्हें वैसा करना पड़ा। सरदार पृथ्वीसिंहने अपनेको खुश-किस्मत समझा कि "ए" वर्गके साथ उनकी किताबें नहीं छीन ली गयीं। हाँ, सरकारने उनके पास कागज कलम और स्याही नहीं रहने दी। गान्धीजीसे उनका पत्र-व्यवहार बराबर होता रहा। गान्धीजीने अपने एक पत्रमें लिखवाया था "हमको तो उनसे यही कहना है कि शान्तिसे रहें, छूटनेकी आशा न रक्खें। जब निकलेंगे तो उनके लिए काम मौजूद है। किन्तु

जितना समय जेलमें बितायेंगे, उनकी शान्ति उतनी ही बढ़ेगी, इसमें मुझे शंका नहीं है। मैं खुशामद करूँ इससे उन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। प्रतिष्ठापूर्वक मुक्ति आन्दोलन करनेसे ही मिल सकेगी।"

प्यारेलालसे मुलाकात

पंजाब सरकारने भेंट मुलाकातके लिए बहुतसी रुकावटें खड़ी कर रक्खी थीं। सरदारको आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने महात्मा गान्धीके प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलालको एक दिन सवेरे अपने वार्ड (हाते) में देखा। उन्होंने प्यारेलालको कभी नहीं देखा था, और उनकी पतली-दुबली शक्लको देखकर समझे कि वह पंजाबके नहीं, दक्षिणी भारतकी किसी जगहके हैं।

प्यारेलाल सीमा-प्रान्तसे लौट रहे थे। गान्धीजीने इसलिए उन्हें सरदारके पास भेजा था, जिसमें वह उन्हें बतला दें कि गान्धीजी अपनी जवाबदेहीको खूब याद रक्खे हुए हैं। सरदारने प्यारेलालजी द्वारा महात्माजीके पास कहला भेजा कि मैं वैयक्तिक स्वतन्त्रताके लिए जेलसे बाहर नहीं आना चाहता।

प्यारेलालजीके जानेके कुछ दिनों बाद लाला दुनीचन्द (अम्बाला) उनसे मिलने आये। लाला दुनीचन्दने १९१४ में जब किसी क्रान्तिकारीके मुकदमेकी पैरवी करनेके लिए कोई वकील तैयार नहीं होता था, सरदार पृथ्वीसिंहके मुकदमेकी पैरवी की थी। लाला दुनीचन्दने सरदारके साहसपूर्ण जीवनके लिए अनेक साधुवाद दिये।

पंजाब, गुजरात और दूसरे प्रान्तोंसे बहुतसे मित्रों और सम्बन्धियोंने मुलाकात करनेकी दरखास्तें दी थीं, मगर पंजाब सरकार ऐसी दया दिखानेके लिए तैयार न थी। रावलपिण्डीके १४ महीनेके कारावासमें सिर्फ ५ मुलाकातें होने पायीं।

प्यारेलालकी मुलाकातके बाद पंजाबके खुफिया विभागमें एक जबरदस्त तूफान खड़ा हो गया था। किसी अखबारवालेने लिख दिया कि महात्माजीने प्यारेलालके द्वारा सरदार पृथ्वीसिंहके पास एक

सन्देश भेजा है। उन दिनों एपीका मुल्ला और पठान कबीले सीमा-प्रान्तमें कुछ गड़बड़ी पैदा कर रहे थे, इसलिए खुफिया विभाग 'गुप्त सन्देश' को जाननेके लिए बहुत उत्सुक था। अंग्रेज सुपरिन्टेण्डेण्टने लिख दिया कि मुलाकात जेलरके सामने हुई थी और कोई गुप्त सन्देश नहीं दिया गया था।

आई. जी. से बात-चीत

कर्नल वार्कर उस समय सुपरिन्टेण्डेण्ट थे, जब सरदार अण्डमानके जेलमें बन्द थे। अब वह पंजाबके जेलोंके आई. जी. (इन्सपेक्टर जनरल) थे। वह सरदारको अच्छी तरह जानते थे, क्योंकि जेलकी दुस्सह यातनाके प्रतिकारके लिए जितने संघर्ष हुए थे, पृथ्वीसिंह उन सबमें आगे-आगे थे। कर्नल वार्कर रावलपिण्डी जेलका मुआइना करने आये। वह सरदारके पाससे भी गुजरे लेकिन सरदारको कुछ भी कहना नहीं था। वार्डसे जाते समय कर्नल वार्करने सरदारके पास आकर पूछा—"तुम्हें कुछ कहना है, तो कहो।"

सरदारने कहा—"मुझे कुछ कहना, माँगना या शिकायत करना नहीं है। महात्माजीके द्वारा सरकारको समर्पण करते वक्त मैंने अपनी सारी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ समर्पित कर दीं।"

कर्नल वार्कर बड़े खुश थे। वह हातेमें बेडमिण्टन खेलनेका इन्त-जाम करनेके लिए जेलवालोंको आदेश देते गये। उन्होंने लाहौर जाकर व्यायाम करनेके कुछ सामान भी भेज दिये।

राजकोट सत्याग्रह

राजकोटमें महात्माजीके उपवास करनेकी बात सुनकर उन अफसरों-को बड़ी चिन्ता हुई, जो सरदारको मुक्त देखना चाहते थे। कैप्टन हैदर इसके लिए बहुत उत्सुक थे। वह रोज उपवास और समझौतेकी बातचीत सुना जाया करते थे। जब भूख हड़ताल छोड़ देनेकी खबर रेडियोपर आयी, तो उसी वक्त खुशखबरी सुनानेके लिए वह सरदारके पास आये। यह बहुत ही सुखद समाचार था, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने राज-

कोटके सारे काण्डपर एक दृष्टि डाली। अपने विश्लेषणको उन्होंने एक पत्रमें गान्धीजीके पास लिख भेजा। "......दो भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियाँ विजय प्राप्तिके लिए अखाड़ेमें डटी थीं। रियासतके मालिक राज्यके सारे बलपर पूरा भरोसा रखते थे और वे उसके सारे साधनोंको पक्के दाँवपेंचके साथ इस्तेमाल करना चाहते थे। न्याय, अन्यायका कुछ भी खयाल किये बिना वह चाहे जिन तरीक़ोंका इस्तेमाल कर सकते थे। दूसरा पक्ष था शोषित और पीड़ित लोगोंका, जिसका नेतृत्व कर रहा था एक ऐसा नेता, जो कि जान-बूझकर न्यायको न्याय्य साधनों द्वारा ही प्राप्त करनेकी कोशिश करता था।"

मुलाकातोंका ताँता

यद्यपि सरदारको मित्रों और सम्बन्धियोंसे मिलनेकी इजाजत नहीं थी, तब भी उनके नामने खास आकर्षण पैदा किया था और सरकारी अफ़सर और दूसरे भी, जो जेलके भीतर जा सकते थे, सरदारसे मिलने की क़ोशिश करते थे। यह सभी अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मुलाकाती उनके बारेमें तरह-तरहके पँवाड़े सुन और पढ़ चुके थे।

एक बार रावलपिण्डीका डिप्टी-कमिश्नर जेलमें आया। उसने सरदारके पास आकर पूछा—"तुम क्यों यहाँ जेलमें बन्द हो?"

"क्योंकि तुम यहाँ थे।"

डिप्टी-कमिश्नरने पूछा—"तुम्हारा क्या मतलब है?"

"क्या मैं बतलाऊँ, मेरा क्या मतलब है? अच्छा सुनो। अपने साथियोंके साथ मिलकर हमने सम्राट्के खिलाफ युद्ध छेड़नेके लिए षड्यन्त्र किया और भारत भूमिसे गोरे लोगोंको निकाल बाहर करनेके लिए अपने देशवासियोंकी सेनाओंको संगठित किया। तुम्हारी खुश-किस्मती और हमारी बदकिस्मती समझो, हम अपने प्रयत्नमें असफल रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि तुम आज भी हमारे भाग्यपर शासन कर रहे हो और मैं कब्रकी ओर जानेवाले कदमोंको गिन रहा हूँ।"

एक दिन कमिश्नर जेलमें आया। उसने सरदारसे पूछा—"तुम कब छूटने जा रहे हो ?"

"१९६६ में।"

"क्या यह सम्भव है कि तुम १९६६ तक जियोगे ?"

"हो सकेगा तो मैं जीऊँगा, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य १९६६ तक जिन्दा नहीं रह सकता।"

"ऐसा कहनेके लिए तुम्हारे पास क्या कारण हैं ?"

"हिन्दुस्तानमें राष्ट्रीय चेतनाकी यह जाग्रति और अन्तरराष्ट्रीय अखाड़ेमें सभी शक्तियोंका जो पारस्परिक सम्बन्ध दीख रहा है, उसीके आधारपर मैं यह कह रहा हूँ।"

"ब्रिटिश साम्राज्यके लिए ऐसा कहना अकृतघ्नता नहीं है जब कि सरकारने जेलमें तुम्हारे जीवनके सुखके लिए इतने साधन प्रदान किये हैं ?"

"मैं भारतपर अंग्रेजी शासनके विरुद्ध विद्रोह इसलिए नहीं करता हूँ कि मैं व्यक्तिगत आराम चाहता हूँ, बल्कि मैं चाहता हूँ, अपने देशकी स्वतन्त्रता, देशके स्वतन्त्र नागरिकके तौरपर सुखी जीवन बितानेकी स्वतन्त्रता। तुम्हारी सरकारने मुझे १९६६ तकके लिए दण्डित किया है, सिर्फ इसलिए कि विदेशी जुआ उतार फेंकनेके लिए मैंने एक योजना बनायी थी।"

× × ×

पंजाब सरकारके गृह-सचिव लाला मनोहरलाल—जिनके हाथमें जेल विभाग भी था,—रावलपिण्डी जेलमें खास तौरसे इसलिए आये कि पृथ्वीसिंहके बारेमें साक्षात् कुछ जान सकें। राजनीतिक समस्याओं पर दोनोंमें देरतक बातें होती रहीं। पृथ्वीसिंहके छोड़नेकी बात चलने पर लाला मनोहरलालने कहा—"आपको छोड़नेके बारेमें हम पूरी कोशिश कर रहे हैं, मगर सब कुछ भारत सरकारके ऊपर निर्भर करता है।"

❀ ❀ ❀

दूसरी जगहोंकी तरह पंजाबके किसान भी टैक्सोंके बोझके मारे पिसे जा रहे थे। वर्तमान मन्त्रिमण्डलने जबसे हुकूमतकी बागडोर सँभाली, तबसे तो और भी टैक्स बढ़ा दिये गये। किसान सभाने सरकारसे बोझ हल्का करनेके लिए बहुत प्रार्थना की, लेकिन उनकी माँगोंको ठुकरा दिया गया। अन्तमें कोई चारा न रहनेसे सत्याग्रह छेड़ना पड़ा। हजारों किसानोंने उसमें भाग लिया। पंजाबके जेल किसान-कैदियोंसे भर गये। भिन्न-भिन्न जिलोंसे २०० किसान-कैदी रावलपिण्डी जेलमें रक्खे गये। सत्याग्रही कैदियोंमेंसे कितने ही सरदार पृथ्वीसिंहके पुराने साथी थे।

जेलमें इन बन्दियोंके साथ जैसा बर्ताव हो रहा था, उससे किसी वक्त भी संघर्ष छिड़ सकता था। पृथ्वीसिंह उनसे मिलना चाहते थे और वे भी देरसे बिछुड़े हुए साथीसे मिलनेको उत्सुक थे। अधिकारियोंने सोचा कि पृथ्वीसिंहसे मिलनेसे शायद किसान बंदियोंपर असर पड़े। उन्हें मिलनेका मौका मिला। अधिकारियोंने स्लेट, नोट-बुक, ब्लेक बोर्ड आदि लिखने-पढ़नेकी चीजें दीं। किसान कैदियोंमें आधे अनपढ़ थे। तै हुआ, उनको पढ़ाया जाय। पढ़ानेके साथ-साथ पृथ्वीसिंह रोज दो घण्टा भिन्न-भिन्न समस्याओंपर बोलते थे, सबेरे दो घन्टे कसरत, कवायद-परेड कराते। तीन महीने बहुत अच्छी तरह बीत गये।

महादेव देसाईसे भेंट

सीमाप्रान्तसे लौटते वक्त गांधीजीके सेक्रेटरी महादेवभाई देसाई जेलमें सरदारसे मिलने आये। दोनों पहिलेसे ही एक दूसरेसे परिचित थे। महादेवभाई अपने साथ गांधीजीका सन्देसा लाये थे, जिसे पहले उद्धृत किया जा चुका है। सरदारको यह जानकर सन्तोष हुआ कि गांधीजी उन्हें भूले नहीं हैं।

जेलसे मुक्ति

सितम्बर (१९३९) महीनेके पहले हफ्तेमें जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट कैप्टन हैदरने दूसरे अफसरोंके साथ आकर बहुत ही खुशीसे सरदारको

यह खबर सुनायी—"पंजाब सरकारने कुछ शर्तोंके साथ आपको छोड़नेका हुक्म दिया है"

उन्हें आफिसमें ले जाया गया। वहाँ सरकारी हुक्मको सरदारने पढ़ा। शर्त यह थी कि सरदार पंजाब सरकारकी आज्ञा लिये बिना पंजाबमें नहीं दाखिल होंगे। सरदारको उज्र नहीं था। उन्होंने कागजपर हस्ताक्षर कर दिया।

जेल-अधिकारियोंने यह भी कहा कि अभी आप अपनी रिहाईकी खबर किसीसे न कहें।

२० सितम्बर १९३९ को सुपरिन्टेण्टने कहा कि पंजाब सरकारका आखिरी हुक्म आ गया; अब पुलिस आपको वर्धा जेल ले जायेगी और वहींसे आप छोड़े जायेंगे। सरदार अपने किसान साथियोंसे जाकर गले मिले। सभीको अपार खुशी थी, यद्यपि यह बात चुभती जरूर थी कि सरदार पृथ्वीसिंह अपने जन्म-प्रान्तमें नहीं आ सकेंगे।

२१ सितम्बरको उन्होंने रावलपिण्डी जेल छोड़ा। अब पुलिसकी इतनी बड़ी पल्टन साथ नहीं जा रही थी। एक सब-इन्स्पेक्टर उन्हें ताँगेसे स्टेशन ले गया। लाहौर जाने पर चार पुलिसवाले साथ हो लिये। वर्धा स्टेशनपर उन्हें मध्य-प्रान्तका सब-इन्स्पेक्टर मिला और उसने उन्हें वर्धा जेलमें पहुँचा दिया। पहले जेलमें आनेके कागज-पत्र ठीक किये गये। दो घन्टा जेलमें रहनेके बाद २३ सितम्बर १९३९ को सरदार पृथ्वीसिंहको जेलसे मुक्त कर दिया गया। सब-इन्स्पेक्टर और जेलके डाक्टर सेवाग्रामतक उनके साथ गये। महात्मा गांधी और आश्रमके दूसरे लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

———

अध्याय १५

गान्धीजीके संसर्गमें

२५ वर्षों बाद सरदार पृथ्वीसिंहने भारतके वायुमण्डलमें खुलकर साँस ली। दो ही दिन बाद (२५ सितम्बरको) गान्धीजी वाइसरायसे मिलने दिल्ली जा रहे थे। उस दिनकी प्रार्थनामें गान्धीजीने मजाकके तौरपर पृथ्वीसिंहका परिचय देते हुए आश्रमवासियोंसे कहा—"होशियार रहना, एक बड़ा डाकू आश्रममें आ गया है।"

जब गान्धीजीको पता लगा कि पृथ्वीसिंह मालिश-विद्यामें सिद्धहस्त हैं, तो उन्होंने गउओं की भी मालिश करनेकी सलाह दी। पृथ्वीसिंह अबतक जो कुछ सीख-पढ़ चुके और जहाँतक विकास कर चुके थे, उसंसे पीछे नहीं हटे थे। मगर अभीतक उन्हें गान्धीजीके सिद्धान्तोंको नजदीकसे समझनेका मौका नहीं मिला था, इसलिए वे बड़ी ईमान-दारीसे उसे समझना चाहते थे। गान्धीजी जानते थे कि सरदार मॉस्कोमें रहे हैं और कम्युनिज्मको माननेवाले हैं। साथ ही वह यह भी जानते थे कि उनका दिमाग खुला हुआ है, वह सत्य तथा अहिंसाको समझनेके लिए बहुत उत्सुक हैं। प्रार्थनाकी बात चलने पर पृथ्वीसिंहने कहा—"प्रार्थनापर मेरी श्रद्धा नहीं, लेकिन आश्रमवासियोंकी एकताके लिए मैं उसमें शामिल जरूर होऊँगा।

पृथ्वीसिंहके आश्रममें आनेके बारेमें महादेवभाईने समाचार-पत्रोंमें एक वक्तव्य निकाला था, जिसमें कहा गया था कि अब वह आश्रमसे नहीं जा सकते। सरदारको यह बात कुछ खटकी जरूर, मगर उन्होंने उसकी ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। भारत और बरमाके सभी अखबारोंमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पृथ्वीसिंहके जेलसे छूटनेकी खबरें छपीं

और यह भी कि अब वह सेवाग्रामके सन्तकी बछिया बन गया है। उनके पास ढेरकी ढेर चिट्ठियाँ आने लगीं, बाज वक्त उनकी संख्या गान्धीजीकी चिट्ठियोंसे भी ज्यादा होती।

बर्मासे भाइयोंकी चिट्ठी आने लगी, वे उनसे मिलनेके लिए बहुत उत्सुक थे। पृथ्वीसिंह भी अपने भाइयोंके परिवारको देखना चाहते थे। उन्होंने महात्माजीसे कई बार जानेकी इजाजत माँगी, लेकिन वह न मिली। इधर-उधरकी बातचीतसे भी सरदारको मालूम हुआ, कि महात्माजी चाहते हैं पृथ्वीसिंह कहीं जाने-आनेका नाम न लें, और आश्रममें रह कर सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तको अच्छी तरह समझें। दो-ढाई महीना रहते-रहते पृथ्वीसिंहका आश्रम और आश्रम-वासियोंसे काफी परिचय हो चुका था। वह नहीं समझते थे कि आश्रममें रहकर ही वह सत्य और अहिंसाको सीख सकते हैं। बल्कि उस वायु-मण्डलमें जब वह यह देखते कि गान्धीजी और दो-एक और व्यक्तियोंको छोड़कर बाकी सभी आत्म-वंचना और पर-वंचनामें एक दूसरेका कान काटते हैं, तो उनका दम घुटता-सा मालूम होता था। एक दिन उन्होंने मीरा बहिनसे कहा—

"महात्माजी यदि एक जेलसे छूटनेके बाद यहाँ मुझे दूसरे जेलमें बन्द रखना चाहते हैं, तो मुझे यह मंजूर नहीं है; मैं इस जेलकी जगह उसी जेलमें जाना ज्यादा पसन्द करूँगा।"

बर्माकी यात्रा

गान्धीजीको जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने कहा—"मैं तुमसे बड़ी आशा रखता था। कोई बात नहीं। मैं तुम्हें बाँधकर नहीं रखना चाहता। तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो।"

दिसम्बर (१९३९) में पृथ्वीसिंह भाइयोंसे मिलने बर्मा गये। सात दिन अपने परिवारमें रहे और पन्द्रह दिन संस्थाओंमें व्याख्यान और भेंट मुलाकात करके, जनवरी (१९४०) में वह फिर सेवाग्राम लौट आये।

गान्धीजी सत्य और अहिंसाको स्थूल अर्थोंमें ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक अर्थोंमें भी लेते थे। पृथ्वीसिंहके लिए यह समझना मुश्किल था। गान्धीजी सत्य, अहिंसाकी प्राप्तिके लिए उपनिषद्के ऋषियोंकी तरह आध्यात्मिक साधनाकी आवश्यकता समझते थे और इसलिए वह आश्रम-वास और अविचल श्रद्धाके साथ गुरुकी आज्ञाकारिताको बहुत जरूरी समझते थे। लेकिन पृथ्वीसिंहने अपने जीवनको सत्य और अहिंसाके आध्यात्मिक अर्थको समझनेके लिए नहीं अर्पण किया था। उन्होंने अपने जीवनको अर्पण किया था देशकी स्वतन्त्रताके लिए। यदि देशकी स्वतन्त्रतामें सत्य और अहिंसा सहायक हो सकते हैं, तो उन्हें समझने और स्वीकार करनेके लिए वह तैयार थे। महात्माजीने अपने प्रति सरदार पृथ्वीसिंहकी सच्ची श्रद्धाका अर्थ समझा था कि उन्होंने आत्मिक, शारीरिक और मानसिक तौरसे आत्मसमर्पण कर दिया है, लेकिन अब वह उनकी स्वतंत्र भावनाको देखते थे। उन्होंने एक बार सरदारसे कहा भी, "तुममें आत्म-विश्वास ज्यादा है।" सरदार आत्म-विश्वासको दूषण नहीं भूषण समझते थे। जहाँतक गांधीजीके प्रति श्रद्धाका सवाल था, वह उनकी कभी कम नहीं हुई; क्योंकि उनकी श्रद्धा अंधश्रद्धा नहीं थी। लेकिन वह सेवाग्रामसे किसी तरहकी आत्मिक उन्नतिकी—गांधीजीके अर्थोंमें आशा नहीं रख सकते थे।

मानसिक संघर्ष

सरदारने देखा कि उनकी शक्तिका पूरा उपयोग सेवाश्रममें नहीं हो सकता, इसलिए उन्होंने बाहर जाकर काम करनेका निश्चय किया। नौजवानोंकी प्रकृतिसे उनका अच्छा परिचय था। उनकी शारीरिक, मानसिक दृढ़ता और संगठनको वह अपना ध्येय बनाना चाहते थे। गांधीजीसे पूछनेपर उन्हें हस्वीकृति मि गयी।

काठियावाड़में समुद्रतटपर घोघा एक सुंदर स्थान है। सरदारने व्यायाम और कवायद—परेडके साथ मानसिक शिक्षाके लिए वहाँ एक

क्लास खोली, जिसमें ४०० तरुण-तरुणियाँ गुजरातके भिन्न-भिन्न भागोंसे आकर शामिल हुए।

दस साल पहलेके तरुणोंके उस कैम्पकी उन्हें याद आयी, जिसके बाद वह सत्याग्रहमें शामिल हुए और फिर पुलिसके हाथसे भाग निकले थे। इस वर्षके बाद अब जिन तरुण-तरुणियोंको उन्होंने अपने सामने देखा, उससे उन्हें इस काममें बहुत उत्साह प्राप्त हुआ। सरदारने इस तरहकी शिक्षाकी एक पूरी योजना बनायी। वल्लभभाईने उसे पसन्द किया और गांधीजीने देखकर कहा कि "अपने काममें लग जाओ, पैसोंकी परवाह न करो। बारडोलीको अपना केन्द्र बनाओ।"

पूनामें कांग्रेस कमिटीकी बैठक हुई और वहाँ जो प्रस्ताव पास हुआ वह महात्माजीको पसन्द नहीं आया। वल्लभभाई भी प्रस्तावमें महात्माजीके विरुद्ध थे और अंग्रेजोंसे समझौता करनेके लिए भारतको युद्धमें शामिल करनेके पक्षमें थे। महात्माजी शंकित हो उठे कि देश उनकी अहिंसाको छोड़ हिंसाका रास्ता लेना चाहता है। अब सरदारकी व्यायाम योजनाको भी वह सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे। उन्होंने सरदारसे कहा—"तुमने जो व्यायाममें भाला, तलवार, छुरा आदि रक्खा है, यह ठीक नहीं है। इन चीजोंको हाथमें लेनेसे हिंसाकी भावना उठती है, इसलिए इन्हें नहीं रखना चाहिये।" सरदारने कहा—"मैंने इन हथियारोंको सीखा है। मगर मेरे दिलमें तो हिंसाकी भावना कभी नहीं आती। हथियार ही क्यों, एक थप्पड़से ही आदमीको मारा जा सकता है। तब तो हाथमें बल होना भी हिंसाकी भावना जगायेगा। फिर व्यायाम करना भी हिंसा है, क्योंकि, उससे सारे अंगोंमें बल आता है।" गांधीजीने कहा—"हाँ, यह भी नहीं होना चाहिये।"

पृथ्वीसिंहको यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने कह दिया कि "मैं आपकी ऐसी योजनामें शामिल नहीं हो सकता।"

१९४० के अन्ततक पहुँचते-पहुँचते सरदारने समझ लिया कि "सेवाग्राममें वही रह सकता है, जिसके लिए दुनियामें कहीं ठाँव नहीं था

जिसके भीतर महात्माजीके प्रति अन्ध-श्रद्धा हो। यद्यपि अपनी सेवाके कारण वह आश्रममें सर्व-प्रिय थे, किन्तु अपनी शक्तिको बरबाद जाते देख उन्हें बहुत असन्तोष होता। उन्होंने सोचा, महात्माजीकी इच्छाके अनुसार मैं अपनेको मिटा नहीं सकता और न अपनी इच्छाके अनुसार यहाँ काम करनेका क्षेत्र ही पा सकता हूँ।"

उनका मन अब वहाँ बिल्कुल नहीं लगता था, यह बात दूसरोंको भी मालूम हो गयी। कमर्शियल कालेज (वर्धा) के प्रिन्सिपल चाहते थे कि वह होस्टलका इन्तजाम अपने हाथमें लें। जमनालाल बजाज सारी मदद देनेके लिए तैयार थे और कहते थे कि व्यायाम-शिक्षाका केंद्र बनानेके लिए किसी स्थानको पसन्द करो। यद्यपि सरदार पृथ्वीसिंहका जेलसे बाहर अज्ञातवासका समय अधिकतर गुजरातके उच्च और मध्यमवर्गमें बीता था और उनके मित्रोंमें भी उन्हींकी संख्या अधिक थी, तो भी सेवाग्राममें यह देखकर उन्हें दुःख होता, जहाँ साधारण आदमियोंके आनेपर कह दिया जाता कि महात्माजीको छुट्टी नहीं, वहाँ बिड़ला, बजाज, साराभाईके पहुँच जाने पर उनका दरवाजा सदा खुला रहता। पृथ्वीसिंह जानते थे कि इसमें महात्माजीका दोष नहीं है, दोष है द्वारपालोंका जिनकी दृष्टिमें गरीब अकिंचन हैं और धनी भगवान्के कृपा-पात्र।

महात्माजीके नाम पत्र

सरदार बहुत दिनोंतक अपनेको रोके अपने मनकी बातोंको खोलकर कहनेमें हिचकिचाते थे। अब उन्हें सेवाग्रामके भरोसे बैठा न रहकर खुद अपना रास्ता निकालना था। उन्होंने १८ जनवरी १९१४ को गांधीजीके पास अपने भावोंको प्रकट करते हुए यह पत्र लिखा—

"सेवाग्राम
१८–१–४१

"पूज्य बापूजी,

"आपके आदर्श जीवनने ही मेरे जीवनमें एक जबरदस्त क्रान्ति

पैदा की है। उसी मकसदके लिए जेल गया। वर्षोंके दिली-मित्रोंको छोड़ा। जो मुझे पूजते थे, उनके मुँहसे गालियाँ और ताने सहे। यह सब इसलिए हुआ कि आपने मेरे भीतर अपने लिए एक जबरदस्त प्रेम पैदा किया।...उसी प्रेमने मुझे आजतक आपके साथ बाँध रक्खा है।......लेकिन, जो प्रेम मेरे दिलमें देशके लिए है और जो तमन्ना देशके लिए मर मिटनेकी मेरे दिलमें है, उसकी किसीके लिए कल्पना करना भी कठिन है। आपका प्रेम मुझे आपकी तरफ खींचता है और देशका प्रेम मुझे मजबूर करता है कि मैं उसकी हालत सुधारनेके लिए अपनी इच्छा और शक्तिके साथ काम करूँ। मैं आपका प्रेमी बनना चाहता हूँ, दिल और जानसे आपको चाहता हूँ; लेकिन मैं अपने देशका सच्चा आशिक हूँ, देशकी आजादीकी वेदीपर मर मिटनेकी तमन्ना रखनेवाला एक परवाना हूँ। मैं अपने देशकी आजादीके लिए कुछ न कुछ करना चाहता हूँ।......मैंने बार-बार सेवाग्राममें रहनेकी कोशिश की लेकिन मैं रह न सका। ऐसा मालूम होता है, मैं सेवाग्राम और वर्धामें नहीं रह सकता। मुझे आजतक यहाँ किसी प्रकारका लाभ नहीं हुआ और न होनेकी आशा है।...डर क्या चीज है, मैं नहीं जानता। आजतक मैंने किसी प्राणीका, मनुष्यका, सत्ताधारियोंका, हवापानी या आगका डर नहीं माना, लेकिन आपसे मुझे डर लगता है। मैं हिम्मत नहीं कर सकता कि मेरी तरफसे आपको किसी तरहका दुःख पहुँचे।...आज मेरा दिल बहुत बेचैन है। अपने आँसुओंसे यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे सब्रकी आज हद हो गयी। जेलसे छूटनेके बाद १ वर्ष और ४ महीने मैंने गुजार दिये और देशके लिए कुछ भी न किया, और न ही आपकी नजरोंमें कुछ करने लायक बन सका। आज मैंने इन दोनों बातोंपर खूब सोचा है। सोचते-सोचते मेरा दिल टूट गया। अगर मेरी हालत ऐसी ही रही, तो मालूम नहीं इसका मेरे मन और शरीरपर क्या असर होगा। आप मेरी हालतपर दया करके मुझे देशमें जाकर कुछ करनेकी......आज्ञा दीजिये।......मुझे हर एक

काम सफलतापूर्वक करनेके लिए आपकी सहायताकी जरूरत रहेगी। यदि किसी खास कारणसे आप सहायता न देना चाहें तो न सही; लेकिन मुझे आपका प्रेम और आशीर्वाद तो जरूर चाहिये।"

महात्माजीका उत्तर

गांधीजीने उसी दिन उन्हें उत्तर दिया—

"भाई पृथ्वीसिंह,

"तुम्हारा खत बहुत ध्यानसे पढ़ गया हूँ, मेरे साथ बात करनेमें डर क्या ?

"मैं तुमको यहाँ खींचकर रखना नहीं चाहता हूँ, पूर्ण शान्तिसे और मनसे रह सकते हो, तो ही तुम्हारे रहनेसे मुझे आनन्द हो सकता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि जबतक आश्रम-जीवनके साथ ओत-प्रोत नहीं हो सकते, तुम्हारा यहाँ रहना निरर्थक है। मैं यह भी समझ सकता हूँ कि जिसने सब डरको छोड़ा है वह आश्रमसे क्या लेगा, इसलिए तुमको जहाँ जाना है वहाँ जानेका और जो करना है वह करनेका सम्पूर्ण अधिकार है। तुमको मेरा आशीर्वाद तो है ही, मैं जानता हूँ जहाँ जाओगे, जो कुछ करोगे, उसमें अहिंसा और सत्य होगा। मुझे लिखा करो, ठिकाना दिया करो और हो सकता है तो बताया करो क्या करते हो। जब इस तरफ आनेका दिल हो, अवश्य आ जाओ। मेरे साथ इस बारेमें बात करना है तो अवश्य करो। शुभ-वृत्तिसे जुदा होनेमें भी दुःख क्यों ? धर्म पालनमें सुख ही है। बापूके आशीर्वाद।"

मलाड कैम्प

जनवरीमें सरदारने वर्धा छोड़ा। वैसे पहले भी वह वर्धामें लगातार नहीं रहते थे। वह सीधे बम्बई आये। अपने व्यायामकी योजना मित्रोंके सामने रखी। उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया। तै हुआ कि व्यायाम सिखलानेके लिए एक अच्छा कैम्प खोला जाय। बम्बईके पास मलाडमें कैम्प शुरू हो गया। कैम्पमें ६९६ लड़के थे,

जिनमें १०२ लड़कियाँ थीं। नौकर-चाकर मिलाकर १००० आदमी थे। मलाडमें आमोंके एक विशाल बागमें इसके लिए चटाईकी झोपड़ियाँ बनायी गयीं। १००० और नौजवानोंने आवेदनपत्र भेजा था, मगर जगहकी कमीके कारण अस्वीकार करना पड़ा।

बम्बईके राष्ट्रीय-पत्रोंने व्यायाम-शिविरकी प्रशंसामें बहुत लेख लिखे। हर इतवारको हजारों आदमी व्यायाम देखनेके लिए बम्बईसे मलाड जाते थे, जिनमें ४००-५०० मोटरें होतीं। उस समय बगीचेमें खूब आम फले हुए थे। कुछ लोगोंने सन्देह प्रकट करते हुए कहा– "बन्दरोंसे एक भी आम बचने नहीं पायेगा। सरदारने कहा–"यदि हम अपने बच्चों पर विश्वास रक्खेंगे, तो आम जरूर रहेंगे।" लड़कोंमें दस-दस वर्षके बच्चेतक थे; लेकिन सब अपना फर्ज समझते थे, किसीने आम न तोड़े। पके आम जो जमीनपर गिर पड़ते उन्हें लड़के आफिसमें लाकर हाजिर करते। माली हैरान रहते थे।

काम करनेमें, मध्यम-वर्गके ये शिक्षित लड़के-लड़कियाँ, गन्देसे गन्दे काममें जुट जानेके लिए तैयार रहते। कोई पाखानेसे भरी गन्दी जगह थी। सरदारने १०० नौजवानोंको माँगा और एक मिनटमें ही उन्हें लेकर सारी जगह साफ कर डाली।

अनुशासनकी जबरदस्त पाबन्दी थी। उसकी कड़ी परीक्षाके लिए उन्होंने एक दिन रातको सीटी दी। लड़के भाला लेकर सोया करते थे। सीटी बजते ही बिना वर्दी पहने भाला लिये कुछ ही सेकेण्डोंके भीतर सारे इकट्ठे हो गये।

लोग सरदारके इस काममें सहायता देनेके लिए कितने तैयार थे, यह इसीसे मालूम होगा कि रुपयेके लिए अपील करने पर रुपया इतना आ गया कि कुछ ही मिन्टोंके बाद उन्हें चन्देकी सूची बन्द करनी पड़ी।

मलाड शिविर बहुत ही सफल रहा और पत्रोंमें उसका प्रचार तो और भी जोरका हुआ। इस सफलताकी खबर वर्धा भी पहुँची।

महात्माजीने भी इस सफलताके लिए खुशी प्रकट की और उन्होंने पृथ्वीसिंहके इस कार्यमें सहयोग देनेके लिए कहा।

पृथ्वीसिंहने व्यायाम-संघकी एक पाँच सालकी योजना बनायी। जिसके अनुसार हर साल १०० नौजवान लिये जायँ, एक सालतक उन्हें व्यायाम आदिकी शिक्षा दी जाये, फिर दो-तीन महीने महात्माजीके केन्द्रोंमें खादी और हरिजन उद्धारकी शिक्षा दी जाय, फिर वे देशमें अलग-अलग केन्द्र बना कर कामपर लगा दिये जायँ। सब काम राष्ट्रीय कांग्रेसके मातहत हो। रुपयेके लिए कहने पर कुछ दिनोंमें ही सालभरके खर्चके लिए ३०,०००) आ गये। ऐसे देशसेवकोंमें खास शारीरिक और मानसिक योग्यना होनी चाहिये। सरदार नौजवानोंकी खोजमें युक्त-प्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ और बिहारमें घूमे। लेकिन जैसे नौजवानोंको वह चाहते थे, वैसे उन्हें बहुत कम मिले। उनका उत्साह कुछ ढीला जरूर हुआ। लेकिन जब एक राजनीतिक आदर्श, एक सामाजिक ध्येयको लेकर कोई काम न हो, उस वक्त गंगा-जमुनी तरुणोंको इकट्ठा करना मेढकोंका तोलना है। सरदारको पैंतीस नौजवान मिले, जिनमेंसे पाँचको अलग करना पड़ा।

संघका नाम यद्यपि गांधीजीके सुझावके अनुसार "अहिंसक व्यायाम संघ" रक्खा गया था, मगर दो-एकको छोड़कर अहिंसामें किसीकी श्रद्धा न थी। यह कैम्प भी मलाडके रामबागमें किया गया था। नौजवानोंकी शिक्षा खूब हुई। उनके डिसिप्लिन (अनुशासन) को देखकर जनता भी बहुत खुश थी।

रातको कोई आदमी एक लड़कीको मोटरपर भगाये लिये जा रहा था। बागके पास लड़की मोटरसे कूदकर चिल्ला उठी। लड़कोंने सीटी बजायी। मोटर ड्राइवर २०० गज भाग सका था कि वहाँ कैम्पके फाटकपर नौजवान उसे धरनेके लिए तैयार थे। उन्होंने मोटरवालेको पकड़कर पुलिसके हवाले किया। जिस वक्त यह घटना घटी, उस दिन सरदार कैम्पमें नहीं थे।

महात्माजीसे विदा

जर्मनीने जब सोवियतपर हमला किया, तो सरदारने गांधीजीको लिखा, "अब हमारे चुप रहनेका समय नहीं है। यह जनताके जीवन-मरणका प्रश्न है। आपने एक बार कहा था कि जिस दिन वेस्टमिनिस्टर पर बम गिरेगा, उस दिन मेरी आँखोंसे आँसू आयेंगे। आज रूसके मजूरों-किसानोंके घरोंपर बम पड़ रहे हैं, तो आप एक अक्षर भी क्यों नहीं बोलते ?"

महात्माजीने इसका उत्तर (२०–९–४१) देते हुए लिखा था, "अब रूसकी बात हम कुछ नहीं कर सकते हैं। तीनोंमें मैं बहुत फर्क नहीं मानता हूँ। यह ठीक है कि रूसमें लोगोंके लिए काफी काम हुआ है।" सरदारने महात्माजीका ध्यान देवली कैम्पमें अनशन करनेवाले राजबन्दियोंकी ओर भी दिलाया और इनके बारेमें कुछ कहनेके लिए कहा। देवलीमें जानकी बाजी लगानेवाले कैदियोंमें बहुतसे सरदारके गहरे मित्र थे और बाबा सोहनसिंह, बाबा रूडसिंह, जैसे कितने ही फाँसीके तख्तेवाले पुराने साथी भी थे।

१९४२ का शायद मार्चका महीना था, बम्बईमें काँग्रेस कार्य-कारिणीकी बैठक थी। सरदारने पंडित जवाहरलालको मलाडमें बुलाया। उनके व्याख्यानको सुननेके लिए १०,००० आदमी जमा हुए थे। सरदारके शागिर्दोंने इतना अच्छा इन्तजाम किया था कि एक भद्र पुरुषने कहा, "हमारी कल्पनामें भी जो सभा-प्रबन्ध नहीं आ सकता था, वह आज हमने प्रत्यक्ष देखा।"

सरदार जब महात्माजीके प्रभावमें थे, तब भी राजनीतिक बातोंपर उनसे ज्यादा चर्चा नहीं करते थे। हाँ, कभी-कभी उन्होंने यह जरूर कहा, "महात्माजी जो आपको समझते हैं, वे आपके मार्गपर नहीं चलते और जो आपपर श्रद्धा रखते हैं वे आपको समझते नहीं।"

गांधीजीके दर्शनके पंडित श्री किशोरलाल मशरूवालाने एक बार सरदारसे कहा था "बड़ी मुश्किल है, तुम समझते हो कि मैं गांधीजीका

सहकारी हूँ और गांधीजी समझते हैं कि तुम उनके शिष्य हो।"

१९४२ की जनवरीका महीना था। भावनगरमें खेल और व्यायाम प्रतियोगिताके लिए एक बड़ा वार्षिक सम्मेलन हो रहा था। सरदारने कहा कि "ऐसे सम्मेलनोंमें जैसे हम कांग्रेस नेताओंका सम्मान करते हैं, वैसे ही तरुण नेताओंको भी बुलाकर उनका सम्मान करना चाहिये, उन्हें फूल-हार देना चाहिये, उनका जुलूस निकालना चाहिये।" भूतपूर्व कांग्रेस मंत्री मुरारजी देसाईको यह बात बुरी लगी। उन्होंने कहा—"क्या हम फूलोंके हारके लिए हैं।" सरदारने यह भी कहा था "जमाना बदल रहा है, नेताओंको भी बदलना होगा। यदि न बदलेंगे तो वह प्रतिगामी बनकर रहेंगे।" कुछ पुराने विचारके नेताओंको यह बात बुरी लगी। सभी लोग इसे नहीं पसन्द कर सकते थे। उन्होंने महात्माजीके पास शिकायत की। महात्माजीको पृथ्वीसिंहने भी एक चिट्ठी लिखी और उन्होंने उनके विचारोंके साथ अपनी सहमति प्रगट की।

क्रिप्सके आनेके समय गांधीजी दिल्ली गये हुए थे। एक दिन मोटर छोड़ वह सरदार पृथ्वीसिंहके साथ पैदल ही चल पड़े। उस वक्त महात्माजीने उनसे कहा कि मैं जानता हूँ, कुछ लोग मेरे पास तुम्हारी शिकायत इसलिए करते हैं कि मेरा मन तुमसे फिर जाये, मगर मैं उनके कहनेकी परवाह नहीं करता। सरदारने उस वक्त कहा था,—"दुर्भाग्यसे कितने ही नेता समझते हैं कि मैं कम्युनिस्ट पार्टीकी ओरसे जासूस बनाकर आपके पास भेजा गया हूँ। वह कम्युनिस्ट पार्टीका नाम लेकर चाहते हैं कि इस तरह आसानीसे कितने ही दूसरे आदमियोंको मेरे खिलाफ कर सकेंगे। लेकिन मैं कम्युनिस्ट पार्टीकी ओरसे नहीं भेजा गया, मेरे विचार कम्युनिज्मके भले ही हों।"

मई १९४२ में महात्माजी एण्ड्रूज स्मारकके लिए बम्बई आये और बिड़ला हाऊसमें ठहरे। सरदार पृथ्वीसिंह भी उनसे मिलने गये। गांधीजीने बात करते हुए कहा कि बहुत कड़ा वक्त आया है, मेरे ही साथ रहो। यह मेरे आखिरी दिन और अन्तिम युद्ध है।

महात्माजीने यह भी कहा "अहिंसक व्यायाम संघ तोड़ दो और मेरे साथ चलो।" पृथ्वीसिंह संघके तोड़नेके लिए सहमत नहीं हुए। उसे वर्धा ले जानेके बारेमें नाथजी और कुलकर्णीसे सलाह ली। उन्होंने भी महात्माजी के साथ जानेकी सलाह दी। सरदार फिर गांधीजीसे मिले और संघके नौजवानों और उनकी शिक्षाके बारेमें बताया। गांधीजीने बड़े आश्चर्यसे कहा, "मुझे तो मालूम नहीं।"

सरदारको बहुत दुःख हुआ, क्योंकि दस ही दिन पहले गांधीजीने बिड़लाको संघके खर्चका भार उठानेको कहा था! बिड़लासे कहनेके बाद मालूम होता है, वह बात महात्माजीके दिमागसे निकल गयी थी। सरदारको इससे बहुत अनुताप हुआ और चोट पहुँची।

सरदार इससे पहले ही गांधीजीको संघके कैम्पको देखनेके लिए मलाड आनेका निमंत्रण दे चुके थे और गांधीजीने कई लोगोंके काफी विरोधके बाद भी आना स्वीकार कर लिया था। उन लोगोंने महात्माजीसे कहा था कि अब और संस्थाएँ भी आपको निमंत्रण देंगी। गांधीजीने जवाब दिया, "मैं मलाड तो जाऊँगा, किन्तु और जगह नहीं।"

लेकिन गांधीजीकी उपर्युक्त बातसे सरदारको इतना दुःख हुआ था कि फिर उन्होंने महात्माजीसे वहाँ जानेका अनुरोध नहीं किया। वह अकेले ही लौटकर मलाड गये। कार्यकर्ताओंको बुलाकर कहा, "यह है आपका अहिंसक व्यायाम संघ, यह हैं लड़के और यह हैं संघके रुपये। आप लोग सब संभालिये, अब मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

कार्यकर्ता दंग रह गये। दूसरे ही दिन गांधीजी वहाँ आनेवाले थे। रातको ही संघके सभापति श्री केदारनाथजीको टेलिफोन करके बुलवाया गया। नाथजीने बहुत समझाया, लेकिन सरदारने कहा, "मेरा तो निश्चय हो चुका है।" नाथजीने गांधीजीको टेलिफोन करके पूछा "आपको सवेरे आना है न?" जवाबमें "हाँ" मिला।

दूसरे दिन गांधीजी मलाड आये। उनके साथ बिड़ला, वल्लभभाई और महादेव भाई भी थे। कैम्पके प्रबन्ध और शिक्षाको देखकर

सभीने प्रसन्नता प्रकट की। फिर नाथजीने महात्माजीको सरदारका निश्चय सुनाया। गांधीजी बहुत चकित हुए और सरदारको बुलानेके लिए कहा। नाथजीने जब उन्हें गांधीजीके पास जानेके लिए कहा तो सरदारने कहा--

"इस सम्बन्धमें अब मेरे भीतर वह पूज्यभाव नहीं रह गया है, इसलिए जाना फजूल है।" तो भी वह गये। गांधीजीने हँसते हुए कहा, "क्या हो गया?" सरदार कितनी ही देरतक सुनते रहे और फिर कहा, "मैंने आपसे बारडोलीमें ही कह दिया था कि मैं हिंसा और अहिंसा नहीं जानता। जबतक आपपर मेरा विश्वास रहेगा, तबतक साथ रहूँगा, नहीं तो अलग हो जाऊँगा। आपकी बातसे मैं समझ गया हूँ कि आप मेरे जीवनका पूरा उपयोग नहीं कर सकते। अब मेरा विश्वास नहीं रह गया।"

"मेरेपर नहीं, पर अहिंसापर तो विश्वास कर सकते हो।

"अहिंसाको तो मैं कभी समझ नहीं पाया, फिर विश्वास कहाँसे करता। मैंने मार्क्सवादकी दृष्टिसे अहिंसाको समझना चाहा था। राज्य (शासन-यंत्र) फौज और पुलिस जैसी हिंसक शक्तियोंपर अवलम्बित है! जब समाजमें धनी-गरीब, शोषक-शोषित नहीं रह जायेंगे, तो यह हिंसापर अवलम्बित शासन-यंत्र मुर्झा और मर जायेगा। उस वक्त समाजमें पूर्णरूपेण अहिंसा विराजमान होगी। उसी अहिंसाके अनुसार मैं भी आपको समझनेकी कोशिश करता रहा।"

महात्माजीने बहुत समझानेकी कोशिश की, फिर वर्धामें आकर बातचीत करनेके लिए कहा, मगर सरदार तैयार नहीं हुए।

किशोरभाई मशरूवाला और दूसरे मित्रोंने भी वर्धा आनेके लिए कई पत्र भेजे, लेकिन सरदार फिर अपनेको वहाँ जानेके लिए राजी नहीं कर सके।

अध्याय १६

पार्टीमें काम और कारावास

रूसी क्रांतिने सरदार पृथ्वीसिंहके दिलपर पहले ही बहुत प्रभाव डाला था। कराची कांग्रेसमें अपने पुराने साथियोंसे मिल कर सोवियत और कम्युनिज्मकी ओर उनका मन और भी आकृष्ट हुआ। सोवियतके निवास और अध्ययनकालमें वह पूर्ण रूपसे कायल हो गये थे कि भारतमें क्रांतिका यही एक रास्ता है। उनका दिल जितना क्रांतिके आदर्शके लिए सब कुछ त्याग देनेके लिए था, अब उनका मस्तिष्क भी उसी उत्साहके साथ उनको सहयोग देने लगा। वह जीवित कम्युनिज्म और सक्रिय कम्युनिस्टोंके सम्पर्कमें आये थे और वह अपने दिल और दिमागसे पक्के कम्युनिस्ट बने थे। आत्म-समर्पणके समयतक भारतमें वह एक कन्युनिस्टकी तरह काम करते रहे। बादके चार सालोंमें यद्यपि उनके विचारोंसे कम्युनिज्मका प्रभाव दूर नहीं हुआ, फिर भी वह ईमानदारीके साथ गांधीजी और उनकी कार्य-प्रणालीको समझना चाहते थे। वह समझते थे कि तरुणोंके शरीर और मस्तिष्कको मजबूत बनाना साम्यवादके लिए उतना ही जरूरी है, जितना गांधीवाद-के लिए।

वह चाहते थे कि भारतसे गुलामी और गरीबी दोनों दूर हों। वह गांधीजीको भी समझानेकी कोशिश करते थे, क्योंकि वह जानते थे कि गांधीजी भी देशकी गरीबीको मिटाना चाहते हैं; किन्तु जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, आश्रमका वातावरण उनके अनुकूल नहीं था। वह आश्रम छोड़ आये।

पार्टी अब भी गैर-कानूनी थी। डाक्टर अधिकारी उस वक्त बम्बईमें

ही अन्तर्धान थे। सरदारने उनके पास उसी दिन सूचना भेज दी और दूसरे दिन काम माँगनेके लिए पार्टीके पास आ गये। पूँजीपतियोंके दासोंने अखबारोंमें तरह तरहकी अफवाहें फैलायीं और कहा कि गांधीजीने ठीक न समझकर मलाड आश्रमको बन्द कर दिया। सरदार-ने गांधीजीको लिखा कि आप खुद अपना बयान दीजिये। महात्माजीने अपना बयान दिया और सरदारने भी वक्तव्य दिया। दोनों वक्तव्य जून १९४२ के "हरिजन" के किसी अंकमें पहले पृष्ठपर छपे।

जबसे जर्मनीने सोवियतपर आक्रमण किया, तबसे सरदार पृथ्वी-सिंहने हिन्दुस्तानके मजदूरों और किसानोंके भाग्यको सोवियत तथा तमाम दुनियाकी फासिस्ट-विरोधी जनताके भाग्यसे नत्थी हुआ समझ लिया। उन्होंने कहा कि दुनियाकी शोषित-गरीब जनताका भविष्य फासिस्टोंकी पराजयपर ही निर्भर करता है। इसीलिए जर्मन-जापानी फासिस्टोंके नाश करनेमें जो भी शक्तियाँ लगी हुई हैं उनके काममें बाधा पहुँचानेको सरदारने बुरा समझा। क्रिप्सके जानेके बाद जब संघर्ष और अन्दोलनकी बात चलती, तो वह समझाते कि राष्ट्रीय आन्दोलन और आजादीका रास्ता यह नहीं है। हमें राष्ट्रीय एकता करके राष्ट्रीय रक्षाके भारको अपने हाथमें लेना चाहिये। हमारी स्वतंत्रताका यही मार्ग है। १९४२ में वह सूरत, बड़ौदा, नड़ियाद, अहमदाबाद, भावनगर, राजकोट आदि गुजरात और काठियावाड़के बहुतसे शहरोंमें गये और शिक्षित जनताको इसी तरह समझाया।

अगस्तके पहले सप्ताहमें आल इंडिया काँग्रेस कमिटीके वक्त वह बम्बई आना चाहते थे। लेकिन रास्तेमें वर्षाके कारण रेलकी लाइन टूट गयी, जिससे उन्हें अहमदाबादमें ही रह जाना पड़ा।

९ अगस्तको जब वह बम्बई आये, तब गांधीजी गिरफ्तार हो चुके थे।

१४ अगस्तको प्रसिद्ध कम्युनिस्ट और कांग्रेसी नेता डाक्टर अशरफ-के साथ सरदार भी इन्दौरकी फासिस्ट-विरोधी कान्फ्रेन्समें शामिल हुए।

उसके बाद गोरिल्ला ट्रेनिंग-कैम्प चलानेके लिए सरदार भावनगर गये। उनके मित्र और साथी इस काममें काफी उत्साह दिलाते थे; किन्तु नौजवान क्रोधसे पागल हो रहे थे। सरदारने काफी समझाया, लेकिन उन नौजवानोंका जवाब था-एक नोटिस। इस नोटिसका शीर्षक था "हृदयकी मूर्तिका खंडन।"

सरदारके भावनगर पहुँचनेके तीन-चार दिन बाद ही वहाँके राष्ट्रीय नेता पकड़ लिये गये। विद्यार्थियोंने प्रदर्शन किया, पुलिसने लाठी चलायी और तीन-सौके करीब व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया। सरदार अपने भावनगरमें यह सब देखकर चुप नहीं रह सकते थे। वह पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टके पास गये और उनसे कहा कि गिरफ्तारी और लाठी-प्रहार लोगोंको और अधिक उत्तेजित करेगा। आप नौजवानोंको छोड़ दें, उनकी जिम्मेवारी मैं लेता हूँ। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस यह खूब जानता था कि नौजवानोंपर सरदारका कितना असर है। उसने नौजवानोंको छोड़ दिया। सरदारने दूसरे दिन नागरिकोंकी सभा की और नेताओंको भी समझाया।

उन्होंने नागरिकोंको समझाया था कि आप लोग नेताओंकी रिहाईके लिए सरकारपर दबाव डालें, जिससे अपने यहाँ शान्ति कायम हो। मैं जेलके नेताओंको समझाऊँगा और आप लोग दीवानको समझायें। निश्चय हुआ कि सरदार भी नागरिकोंके साथ दीवानके पास जाकर जेलमें नेताओंको समझानेके लिए उनसे आज्ञा माँगें। लोग दीवानके पास गये। दीवानने कहा आप लोग जा सकते हैं, लेकिन मैं स्वामीरावको इजाजत नहीं दूँगा। नागरिकोंने कहा, यदि स्वामीराव साथ नहीं जाते, तो हमारा जाना व्यर्थ है। दीवानको झख मारकर सरदारको भी जानेकी इजाजत देनी पड़ी। नेताओंसे मिलकर उन्होंने सारी राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितिको समझाते हुए कहा कि आप लोग महात्माजीके रास्तेको छोड़ रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यसे वे न माने और रियासतसे समझौता नहीं हो सका!

गिरफ्तारी और नजरबंदी

सरदार भावनगरमें एक बड़ी व्यायामशाला स्थापित करनेकी योजनामें लगे थे। लेकिन १० अक्तूबरकी रातको दो बजे अंग्रेजी एजेन्सी और रियासतके पुलिसके १०० सिपाहियों और पाँच इन्स्पेक्टरोंने उनके निवासस्थानको घेर लिया और भारत रक्षा कानूनके अनुसार गिरफतार कर एक मोटरपर बैठाकर ले गये। एक मोटर आगे चली और एक पीछे। सरदारको एजेन्सीके थाने सोनागढ़में ले गये। थानेसे उन्हें राजकोट जेल भेजा गया। कांग्रेसी नेताओंसे न मिलने देनेके लिए नेताओंको जेलसे निकालकर बाहरके एक बँगलेमें बन्द किया गया और सरदारको जेलमें डाल दिया गया।

पहली जनवरी १९४३ को सरदारको रियासती जेलसे निकालकर यरवदा (पूना) जेल भेज दिया गया। कॉमरेड डांगेभी इस वक्त वहीं नजरबन्द थे, इसलिए २०-२५ दिनतक दोनों साथ रहे। सरदारके पकड़े जानेकी बात सुनकर सबको आश्चर्य हुआ, लेकिन सरकार निरंकुश ही नहीं, निश्चेतन भी है, उसके यहाँ अंधेर नगरी नाटक कहीं भी खेला जा सकता है।

सरदारकी अब फिर जेलवाली जीवन-चर्या शुरू हो गयी। सबेरे सात बजे उठकर स्नान और व्यायाम, जलपानके बाद पढ़ना, साढ़े बारह बजे खाना और थोड़ा विश्राम, फिर पढ़ना या कोई खेल। शामको साढ़े छ बजे खाना और आठ बजे तालेके भीतर बन्द।

———

अध्याय १७

शादी और मुक्ति

सरदारके तीन भाई बरमामें रहते थे, यह हम बतला चुके हैं। जब जापानियोंने बरमापर हमला किया, और मोन्येवापर बम बरसाये, तब लोग जान लेकर इधर-उधर भागने लगे। सरदारके भाई बरमासिंह अपनी पत्नीको लेकर मोन्येवासे भाग निकले और जापानी सैनिकोंसे लुटते, मनीपुर पहुँचे। वहाँसे वह पटना आये, बीमार पड़ गये। सरदारको मालूम हुआ, तो उन्होंने उन्हें भावनगर बुला लिया। अभी भी वह निर्बल ही थे कि सरदार जेल भेज दिये गये। सितम्बरमें बरमासिंहकी बीमारीने भयंकर रूप धारण किया, चारों ओरसे दबाव पड़ा। इसलिए २७ अक्तूबर १९४३ को सरदार एक महीनेके लिए पेरोलपर छोड़ दिये गये। अस्पतालके डाक्टरोंने बड़ी मेहनत की और बरमासिंह बच गये।

शादी

सरदार पृथ्वीसिंह बहुत स्वस्थ, सुन्दर और तरुण थे। परदेसे मुक्त बरमा सुन्दरियोंने उन्हें अपने प्रेम-पाशमें बाँधना चाहा, मगर उस वक्त वह इसलिए बच गये कि उनके मनमें राजपूतीका बहुत बड़ा अभिमान था। उसके बाद देशभक्तिने उनके मनके ऊपर अपना जादू फेंका। फिर शादी करनेकी फुर्सत किसे थी? शादीके लिए जितना दबाव पड़ा था, जो प्रलोभन और आकर्षण सामने रक्खे गये थे—उनके बारेमें कुछ लिखना पाठकोंके लिए अवश्य ही मनोरंजनकी चीज हो सकती है और साथ ही सरदारके दृढ़ मनोबलका उससे भी पता लग सकेगा; किन्तु उन घटनाओंको लिखकर हम इस पुस्तकका

विस्तार नहीं करना चाहते। हाँ, सरदारके सामने जिस तरहके प्रलोभन और आकर्षण आये थे और जिस तरह वह उनसे बचते रहे, उसी तरहकी एक पुरानी कथा हम यहाँ कहते हैं।

* * * *

पुराने जमानेमें एक राजा था। वह अपनी प्रजासे बहुत प्रेम करता था। प्रजा भी उसपर प्रेम रखती थी। इस प्रजा-वत्सल राजाके ऊपर एक दूसरे जालिम राजाने आक्रमण किया। राजा मारा गया, रानी सती हो गयी। जालिम राजा प्रजाकी छातीपर कोदों दलने लगा। प्रजा कराहने लगी। प्रजा-वत्सल राजाका एक छोटासा पुत्र था। परिचारकोंने जान बचानेके लिए उसे दूर देशमें भेज दिया था। कुमार धीरे-धीरे बढ़कर सयाना हुआ। उसे अपने पिताके मारे जानेके बारेमें मालूम हुआ, देशवासियोंके जालिम राजाके नीचे कराहनेकी बात मालूम हुई। उस देशमें भी उसकी जवानी और सौन्दर्यको देखकर कितनी ही सुन्दरियाँ मुग्ध थीं, लेकिन कुमारने प्रतिज्ञा की थी—मुझे अपनी जन्मभूमिको मुक्त करना है और जो प्रेम-बन्धन मेरे कार्यमें बाधक हो सकता है, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

जन्मभूमिको मुक्त करानेके लिए वह जगह-जगह भटकता रहा और उसी प्रयासमें एक दिन भेष बदलकर अपने देशमें पहुँच गया। वहाँ जंगलमें च्यवन ऋषिका आश्रम था। वृद्ध ऋषी दया और करुणाकी मूर्ति थे। किसीको भी दुःखी देख उनका दिल द्रवित हो जाता था। वह अजातशत्रु थे, कोई उनसे दुश्मनी नहीं करता था। च्यवन ऋषिको यह देखकर बहुत दुःख होता था कि जालिम राजाके दुश्शासनके कारण प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। कुमार उनके आश्रममें भेष बदलकर आया था, किन्तु ऋषिको असली बात मालूम हो गयी। ऋषिका अस्त्र-शस्त्रपर विश्वास नहीं था, तो भी कुमारको वह इसलिए स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे कि वह अपने देशका उद्धार करना चाहता है। च्यवन ऋषिके आश्रममें आत्मिक शान्तिकी खोजके लिए दूर-दूरसे लोग आते थे।

हिरण्यकश्यपके वंशमें भी प्रह्लाद पैदा हो सकते हैं, इसी तरह जालिम राजाके घरमें एक कन्या पैदा हुई, जिसका स्वभाव पितासे बिलकुल उल्टा था। वह मानव-सन्तानों तो क्या पशु-पक्षीका भी दुःख नहीं देख सकती थी। बच्चोंको भूखे, लोगोंको नंगे, गाँवोंको उजड़े देखकर उसका हृदय विह्वल हो जाता था। जब इस सबका कारण उसका पिता मालूम हुआ, तो कुमारीका चित्त और भी खिन्न हो गया। क्रूर होनेपर भी पिता अपनी एकलौती पुत्रीपर बहुत स्नेह रखता था। कुमारीने पिताको समझानेकी बहुत कोशिश की, लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ। वह बराबर उदास रहने लगी। किसी दिन च्यवन ऋषिकी ख्याति अन्तःपुरतक पहुँची। कुमारीके रूप और गुणको देखकर कितने ही राजकुमार उसे अपनी पटरानी बनाना चाहते थे, मगर कुमारी इस अन्यायपूर्ण दुनियासे ऊब गयी थी। उसने आजन्म कुमारी रहनेकी प्रतिज्ञा की। च्यवन ऋषिके बारेमें जानकर वह एक दिन महल छोड़, आश्रममें चली गयी। यहाँ उसे आत्मिक शान्ति मिली, यद्यपि जबतब लोगोंके कष्ट सुनकर उसका चित्त विह्वल हो जाता।

गोधूलिकी बेला थी। गायें जंगलकी ओरसे गाँवको लौट रही थीं। उस दिन संयोगसे कुमारीके साथ कुमार भी टहलने गया हुआ था। कुमारी आगे-आगे और कुमार पीछे-पीछे। एक बड़े सींगोंवाला वृषभ आगेसे दौड़ा आ रहा था। कुमारको शंका हुई और उसके स्वाभाविक दाक्षिण्यने जोश मारा। पल मारते ही उसने कुमारीको पीछे खींचकर अपनेको आगे कर दिया और बैलको सींग पकड़कर दूसरी ओर ढकेल दिया। कुमारी थोड़ी देरतक गम्भीर चिन्तनमें पड़ गयी, फिर उसने कहा, "कुमार, स्त्री होते हुए भी मैंने आजतक कभी किसी पुरुषसे रक्षित होनेकी इच्छा नहीं की और न यही पसन्द किया कि पुरुष मुझे कमजोर समझे और मदद करनेके लिए अपनी बाहोंको मेरी ओर फैलाये। आज तुमने यह क्या किया?" कुमार यह कैसे बतलाता कि उसके दाक्षिण्यने उसे बिना सोचे ऐसा करनेके लिए मजबूर किया।

उस दिनसे कुमारीका कुमारके प्रति स्नेह बहुत बढ़ गया, लेकिन वह स्नेह था भाई-बहिनका स्नेह। वह उसे "मेरे प्यारे कुमार" कहकर सम्बोधित करती और कुमार भी "मेरी प्यारी बहिन" कहकर। कुमारी को बराबर च्यवन आश्रममें रहना पड़ता, लेकिन कुमार तो जन्म-भूमिको मुक्त करनेके लिए फाँड बाँधे हुए था। कुमारी उसे बराबर पत्र भेजा करती, जिसमें कभी "तुम्हारी" और कभी "सप्रेम तुम्हारी" लिखती। कुमार भी उसी तरहसे अपना भाईका प्रेम प्रकट करता। कुमारीका वह साधारण स्नेह धीरे-धीरे इस तरह प्रेमके रूपमें परिणत हो गया कि वह उसे जान भी न पायी। वह कुमारको अपने समीपसे समीपतम बनाना चाहती थी और इसी प्रयत्नने उसे कहाँसे कहाँ पहुँचा दिया। कुमारी किस तरह देरतक दूर रहनेपर अधीर हो जाती, किस तरह वह चिट्ठियोंकी प्रतीक्षा करती। इसे यदि आधुनिक चिट्ठी-पत्रीके ढंगपर लिखा जाये तो वह कुछ इस प्रकारसे आयेगा।

'मेरे प्यारे भाई,

"सप्ताह पूरा हो गया और तुम्हारे आनेकी जगह सिर्फ एक पत्र आया।...मैं इससे अधिक और नहीं कहूँगी—कि बहुत देरतक बाहर न रहो।...मेरी कुटिया आधीसे अधिक तैयार हो गयी।...वहाँ तुम्हारे लिए एक कोना रहेगा। मैं इसका जिम्मा लेती हूँ कि जब तुम शान्ति चाहोगे, तो कोई तुम्हें बाधा नहीं डालेगा।

* * *

"मेरे प्यारे भाई,

"मुझे तुहारे पत्रसे यह जानकर अत्यन्त खुशी हुई, कि तुमने महर्षि के चरणोंमें बैठनेका निश्चय किया है। भगवान अवश्य ही इसके लिए तुम्हें आशीर्वाद देंगे और यदि एक बहिनकी प्रार्थनाका उपयोग हो सकता है, तो वह भी हाजिर है।..."

अब कुमारीके स्नेहने नया रूप धारण किया। तब उसने लिखना शुरू किया—"प्रियतम कुमार,

"......भगवानने इतने वर्षोंके अस्पष्ट दर्दको एक जलती ज्वालामें परिणत कर दिया, लेकिन सबसे भारी अन्तर यह है कि अब मैं यह जानती हूँ कि क्यों यह दर्द और क्यों यह ज्वाला।

"आखिर मैंने तुम्हें पा लिया। यह जानकर अब मैं कमर बाँध कर खड़ी हो सकती हूँ और अपने सारे हृदय और आत्मासे काममें जुट सकती हूँ, जिसमें कि मैं उस आदर्श और उस आदर्श-सेवकके अधिक योग्य बन सकूँ।

"अपने हृदयकी उदारतासे मेरी निर्बलताओं और दुर्विचारोंके लिए क्षमा करना। मैं उन्हें हटानेके लिए पूरी कोशिश करूँगी। मेरी यही प्रार्थना है कि भगवानकी कृपासे मैं कभी बाधक न होऊँ और किस तरह तुम्हारे आदर्शकी सेवा हो इसे जान सकूँ। भगवान तुम्हें प्रसन्न रक्खें। अब और सदा तुम्हारी।......

* * *

"प्रियतम कुमार,

"......भगवान मुझे बल और समझ दे रहा है और मेरे दर्दको आनन्द—गंभीर आनन्द—में परिणत कर रहा है......

"......सो हम यहाँ हैं! इस बोझसे घबड़ाओ नहीं! मुझे अपने आदर्शकी प्राप्तिके साधनोंमेंसे एक समझो।

"......मेरी कार्य-क्षमताका जितना उपयोग हो सकता था, उसे कभी पूरा प्रयोगमें नहीं लाया गया, क्योंकि वह क्षमता तबतक मूर्छित सी थी, जबतक कि तुमने आकर जगाया नहीं।......

सदा तुम्हारी......"

* * *

"मेरे प्यारे कुमार, अत्यन्त प्यारे भाई,

"तुम्हारा अनमोल पत्र आया। पाते ही मैं तुरत सीधे महर्षिके चरणोंमें गयी। वह अकेले थे। मैंने उसे उन्हें दे दिया। उन्होंने उसे सब पढ़ा। फिर मेरी ओर देखते हुए बोले 'यह बहुत ही अच्छा पत्र है।'

"मुझे यह आशा करनेका भी साहस नहीं होता कि तुम जवाब दोगे बल्कि मुझे यह डर रहा है कि मैंने तुम्हें नाखुश किया है।······आज-ही सबेरे जब मैं अकेले पहाड़पर विचर रही थी, तो मेरे हृदयकी वेदनाने मेरी आँखोंमें आँसू भर दिये। लेकिन अब तुम्हारा पत्र मेरे पास है और मैं समझती हूँ कि मेरा भाई मुझसे छीना नहीं जायेगा, बल्कि सदा मेरी बगलमें रहेगा।·········

"महर्षि सब जानते हैं, और वह हमें रास्ता दिखलायेंगे। कल मैं अकेली उनके साथ टहल रही थी और तुम्हारे बारेमें उनसे बात कर रही थी। महर्षिके आशीर्वादसे दिन-पर-दिन सच्चा मार्ग हम लोगोंके सामने खुलता जायेगा······।"

❀ ❀ ❀ ❀

"अत्यन्त प्यारे भाई,

'यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तुम जल्दी आ रहे हो।·········

"अब मैं अपनी कुटियामें हूँ, कुछ दिन ही के लिए। मैंने महर्षिसे कह दिया है कि कुटिया उनकी—मेरे भाईकी है, और जब मैं काम करने बाहर जाऊँगी, तो वह इसे ले लेंगे······

"सदा तुम्हारी प्यारी बहिन······।

❀ ❀ ❀ ❀

"अत्यन्त प्यारे भाई,

"······क्यों मैं इस भू-भागको ज्यादा पसन्द करती थी, इसे तब जाना जब कि मैंने तुम्हारे भीतर अपना जीवन पाया।

"······सप्रेम सदा तुम्हारी······"

"मेरे प्यारे भाई कुमार,

"······मत कहो कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया। मेरे साथ अन्यायकी कोई बात नहीं, किन्तु तुम्हें अपने साथ अन्याय नहीं करना चाहिये, वह मुझे बहुत पीड़ा देगा। भगवानने तुम्हें शुद्धतम सोनेमें

ढाला है और मेरे लिए असह्य होगा यदि कोई चीज उसे धूमिल कर दे। अपने लिए सच्चे बनो और मुझपर अपने ही अस्तित्वके एक अंशके तौर पर विश्वास करो। मैं कभी यह सुनना नहीं चाहूँगी कि तुम अपनी आत्माको हानि पहुँचाना चाहते हो,, मैं जानती हूँ कि तुम इन सभी कठोर अभिलाषाओंसे बिलकुल अपरिचित थे। तुम अच्छा ही अच्छा समझ रहे थे—और सो ही मैं भी समझ रही थी—लेकिन किसी फेरसे सभी बातें उल्टी हो गयीं। और मैंने उसे जपने हृदय और रक्तको देकर पूरा सहा······"

❀ ❀ ❀ ❀

"प्रियतम साथी,

"······जब तुम पिछले महीने यहाँसे गये, तो मैं कई दिनोंतक सोचती रही, उसके बाद मुझे अपना रास्ता इस तरह साफ दिखलाई दिया—मुझे अब तपस्याके सारे बाह्य चिह्नोंको छोड़ देना चाहिये और अपनी सारी शक्तिके साथ जनसेवाके लिए प्रयत्न करना चाहिये। लेकिन यदि मैं इसमें सफल होना चाहती हूँ, तो मुझे अपने स्वभावके अनुसार काम करनेके लिए स्वतन्त्र होना चाहिये। सालों पहले जब मैं महर्षिके चरणोंमें आयी, तो मैंने अपनेको उनके हाथोंमें सौंप दिया और उन्होंने अपने पूर्ण वात्सल्यके साथ मुझपर पूरे तौरसे अधिकार कर लिया, सिर्फ मेरे कामोंपर ही नहीं बल्कि मेरे विचारों और चिन्तनोंके ऊपर भी। यह जबरदस्त अनुशासन और शिक्षण, जिससे मैंने बहुत पाया, लेकिन इसने मेरे आत्म-विश्वास और स्वरूप-प्रकाशको खतम भी कर दिया। मैं किसी कामको स्वतन्त्र और निरन्तर करने लायक नहीं रह गयी। महर्षिके पास आनेसे पहले मुझमें आत्म-विश्वास था, उद्योग-शीलता थी और स्वतन्त्र शक्ति थी। मैं उन सबको खो बैठी। सिर्फ इस वक्त जब कि तुम मेरे जीवनमें आये, मेरी स्वाभाविक शक्ति जाग उठी।

"······एक ही तरहकी प्रेरणाने हम दोनोंको घरसे निकालकर

अज्ञात दिशाकी ओर फेंक दिया—जन्मभूमिकी स्वतंत्रताका वही एक आदर्श आज हमारे हृदयोंमें भरा हुआ है। हमारे विचारोंमें सिर्फ यही एक अन्तर है कि मैं अपने सम्पूर्ण हृदय और आत्मासे विश्वास करती हूँ कि हम दोनोंके एक हो जानेमें ही हमारी शक्तियोंका पूर्ण तौरसे उपयोग हो सकता है, और तुम इससे भिन्न सोचते हो। जबतक तुम इस तरह समझते हो, मैं बिना बहसके तुम्हारी इच्छाको स्वीकार करूँगी।... तुम्हारी सदा......"

कुमारको मालूम हो गया था कि यह उसी जालिम राजाकी पुत्री है, जिसके दुःशासनसे लोगोंको मुक्त करनेका उसने बीड़ा उठाया है। वह जानता था कि कुमारी साधारण स्त्री नहीं है, उसका हृदय परम शुद्ध है। और वह उसके काममें दिलसे सहायता करना चाहती है। लेकिन कुमारको यह भी विश्वास था कि जिस कामको वह करने जा रहा है, वह च्यवनआश्रमसे पूरा नहीं हो सकता और कुमारीके लिए च्यवन-आश्रम ही सब कुछ रह गया था।

कुमारी जितनी ही आशा लगाये कुमारके नजदीक आती थी, कुमार उसे उतना ही दूर दिखलाई पड़ता। जब उसके इष्ट-मित्र समझाना चाहते, तो वह कहती कि मैं जन्म-जन्मान्तरसे उनकी रही हूँ। इस बार भेंट तो हुई, मेरे हृदयने अपने प्रियतमको पहिचान लिया, लेकिन प्रियतम मुझे भूल गये हैं। मेरा पुराना पाप या कोई शाप है, जिसके लिए मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। एक बार कुमारीने प्राण देनेकी ठान ली। ऋषि और आश्रमवासी सभी चिन्तित हो गये। कुमारको बुलाया गया—ऋषिने अपना फर्ज समझा कि कुमारीकी प्राणरक्षाके लिए कुमारपर जोर दिया जाय। कुमार आये, लेकिन उनका एक ही जवाब था—मैं सिर्फ बहिनके ही तौरपर उसे ग्रहण कर सकता हूँ। कुमारीने आत्म-हत्याको प्रियतमके लिए कष्टप्रद समझा, उसका खयाल छोड़ दिया, लेकिन वह भूले प्रियतमकी स्मृति जगानेके लिए अपनी साधनामें लगी रही।

कुमारसे किसीने कहा कि कुमारी उनके वियोगमें सूखकर काँटा हो गयी है तो इसका उन्हें बहुत अफसोस हुआ। च्यवन ऋषिने कुमार को समझाया, "कुमारीके बारेमें दुःख माननेकी आवश्यकता नहीं है। वह तो मानती है कि पूर्वजन्ममें तुम्हारे साथ वही सम्बंध था और भविष्यमें भी वह रहेगा। इस जन्ममें तुमको विस्मृति हुई है, इसका उसे दुःख है और सुख भी। इसे भी कुमारीने आध्यात्मिक वस्तु बना रखा है और तपश्चर्या करती है, पुराण पढ़ती है।......" कुमारने एक बार कुमारीको समझानेकी चेष्टा करते हुए लिखा—

"मेरी प्यारी बहिन,

"......इन तूफानी दिनोंमें हर एक जन्मभूमिसे प्यार करनेवाले व्यक्तिका फर्ज है कि सब ओरसे मन खींचकर सिर्फ देशकी स्वतन्त्रताके लिए काम करे। जिस जीवनभरके स्वप्नके लिए मैं जिया और भीषण कष्ट उठाता रहा, उस स्वप्नको पूरा करनेके सिवाय और कोई खयाल मैं अपने दिमागमें नहीं आने देना चाहता। देशकी नाजुक अवस्था क्या तुम नहीं देख रही हो? अपनी जनताकी सेवाको छोड़कर कैसे कोई दूसरा विचार तुम्हारे मनमें आया और उसने तुम्हें पागल बनाया......। कुमारी, प्रभुने तुम्हें बहुतसे गुण दिये हैं। स्वार्थी न बनो।"

वह दोनों ही इस जन्ममें नहीं मिल सके। इसी पुरानी कथाकी तरहके प्रलोभन सरदारके जीवनमें भी आये थे।

सरदार पेरोलके दिनों यरवदासे सीधे भावनगर चले गये। इधर वह कितने ही दिनोंसे सोच रहे थे कि अब समय आ गया है, जब कि हमारे कामके लिए विवाह बाधक नहीं साधक बनेगा। वह समझते थे कि अब वह जिस राजनीतिमें नंगे बदन होकर पड़ रहे हैं, उसमें उनके वर्ग-शत्रु उनके विरुद्ध कोई भी हथियार चलाना उठा न रक्खेंगे। जब जेल जानेसे पहिले वह भावनगर गये थे तब उनके एक मित्र-परिवारकी लड़की कुमारी प्रभावती चन्द्रशंकर दूबे देश-

सेवाके कामके लिए सरदारसे सलाह पूछने आयी। सरदारका प्रिय विषय था व्यायाम। उन्होंने कहा—

"तुम्हें स्त्रियोंमें व्यायामका प्रचार करना चाहिये।" लेकिन प्रभावतीको अब तक साहित्यका शौक़ ज्यादा था। दो घण्टेकी बातचीतके बाद उन्होंने व्यायामके उपयोगको समझा। वह कर्वे महिला विद्यालयकी बी. ए. थीं। भावनगर राज्यने ऐसी योग्य लड़कीके लिए छात्रवृत्ति देना मंजूर किया और वह बम्बईके पास कांदेवलीके सरकारी शिक्षणालयमें दाखिल हो गयी। जेलमें भी प्रभावतीके पत्र सरदारके पास आते थे। उनसे स्नेह टपकता था। सरदार भी दोनोंकी समानधर्मताको समझते थे। पैरोलपर जाते वक्त वह कान्देवली होते हुए भावनगर गये थे" उसी वक्त विद्यार्थी द्वारा सन्देश भी भेज दिया था। भावनगरमें प्रभावतीने आनेके लिए पत्र भेजा। सरदारने तार दे दिया। प्रभावती आ गयी। सरदार न साधारण तरहकी शादी करना चाहते थे और न प्रेमके लिए लम्बे-चौड़े ताने-बानेकी जरूरत समझते थे। उन्होंने सीधे सवाल किया—"तुम्हारे पत्रोंमें प्रेमकी गन्ध आ रही थी, क्या यह सच है?" गन्ध पढ़नेमें रही होगी—कहकर प्रभावती चुप रहीं। सरदारने कहा कि शादी करनेके लिए मैं तै कर चुका हूँ किन्तु तभी जब मेरे साथी आज्ञा दें। तुम भी अपने सम्बन्धियोंसे पूछ लो।

दूबे ब्राह्मण क्यों ऐसे विवाहके लिए सहमत होने लगे। सरदार बम्बई आये। पूरनचन्द्र जोशीने शादी कर लेनेकी सम्मति दी। २७ नवम्बर १९४३ को जेल लौटनेकी तारीख थी, उसी दिन ब्याहकी रजिस्ट्री करनेका दिन निश्चित किया गया, और साथ ही सरकारको पेरोल बढ़ानेके लिए लिखा गया। पेरोल एक महीनेका और बढ़ गया। पंजाब सरकारने भी जन्मभूमि देखनेके लिए १५ दिनकी इजाजत दी और एक युगके बाद वह अपनी पत्नीके साथ लालडू गये। सरकारने फिर दो महीने पेरोलके बढ़ाये और अन्तमें फरवरी १९४४ को उन्हें छोड़ दिया।
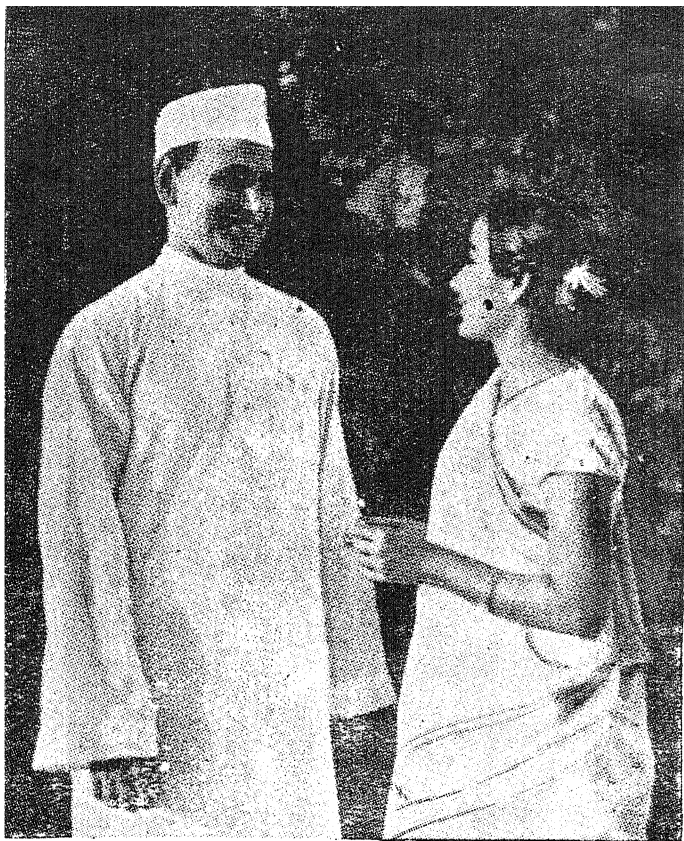
सरदार पृथ्वीसिंह और श्रीमती प्रभावती पृथ्वीसिंह
[विवाहके बाद दिसम्बर १९४२]
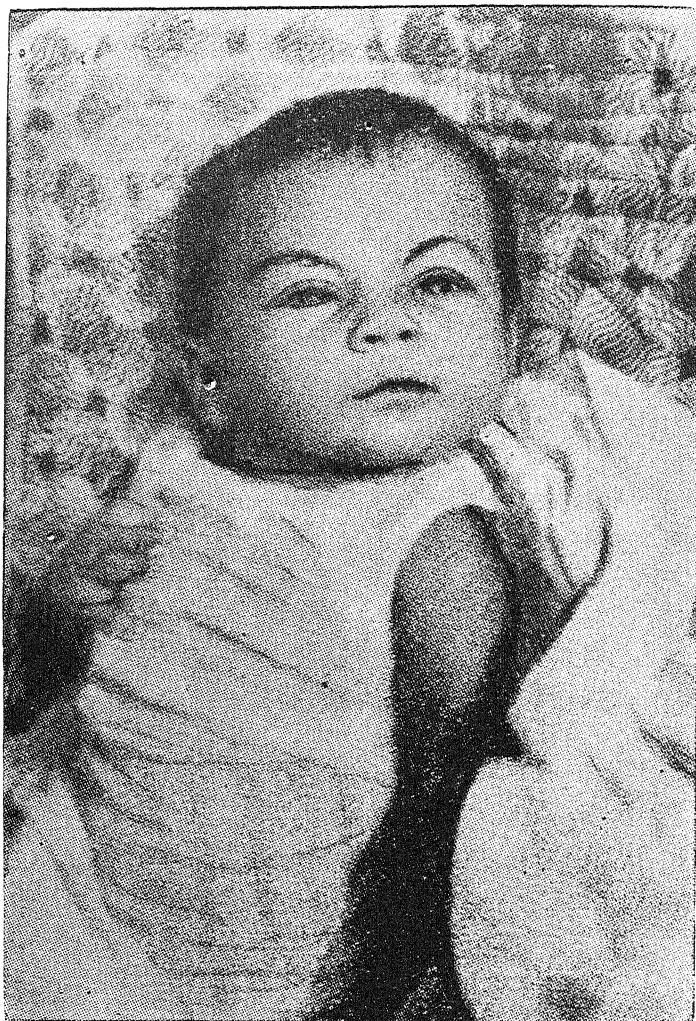
सरदार पृथ्वीसिंहका पुत्र अजीत

सरदार पृथ्वीसिंह फिर उसी तरह तत्परतासे देशके लिए काम करते रहे। कभी आन्ध्रके किसान उस मूर्तिको साक्षात देखते और उसके भाषणोंको सुनते, जिसके बारेमें सैकड़ों कथाएँ आन्ध्रमें मशहूर हैं। कभी वह गुजरातके अपने पुराने दोस्तोंमें जाते, और बंगालकी सहायताके लिए उन्हें दिल खोलकर रुपया देनेके लिए कहते। उनका शरीर उतना ही स्वस्थ और बलिष्ट है, उनकी हिम्मत उतनी ही दृढ़ है। उनके बहुतसे वे साथी और मित्र जो अगस्त १९४२ के दिनोंमें उनकी बात तक सुननेसे इनकार करते थे, उनकी बात समझने लगे हैं।

अध्याय १८

अंग्रेजोंसे समझौता

१९४४ के जून या जुलाईके महीनेमें दिल्लीमें अलवर-नरेशके सभापतित्वमें अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभाका अधिवेशन हो रहा था। क्षत्रिय जन-साधारणका इस सभासे क्या हित या वास्ता हो सकता था? राजा-महाराजा अंग्रेजोंकी छत्र-छायामें आजतक खूब गुलछर्रे उड़ा रहे थे। अब जमीन उनके पैरोंके नीचेसे खिसक रही थी, शक्ति उस काँग्रेसके हाथोंमें जा रही थी, जिसे उन्होंने कभी फूटी आँखों नहीं देखा। अंग्रेज-भक्तिके नशेमें मस्त उन्हें विश्वास नहीं था कि अंग्रेजोंका राज्य कभी भारतसे उठ जायेगा। सरदार पृथ्वीसिंहको पता लगा, तो इन प्रतिगामियोंका रवैया देखनेके लिए वह भी वहाँ चले गये। यद्यपि उन्होंने अपने परिचितोंमें न कहनेकी हिदायत कर दी थी, और वह केवल दर्शकके तौरपर जाना चाहते थे, पर इनके जैसे अपने जाति-भाईका गौरव वहाँ बहुतोंके मनमें था। बात मालूम हो गयी। लोगोंने पूछा भी नहीं और एकमतसे प्रस्ताव पास कर सरदारको अपनी महासभाका कार्यवाहक सभापति चुन दिया। सरदारने वहाँ न बोलनेका निश्चय किया था, पर अब बोलना आवश्यक हो गया। उन्होंने खुले अधिवेशनमें कहा—यहाँ क्षत्रियोंकी सभा तो मुझे दिखलाई नहीं पड़ती। आपके भाषणों और प्रस्तावोंसे साफ मालूम होता है कि अंग्रेजोंके निकालनेमें जिन्होंने कुछ भी काम नहीं किया, बल्कि उनकी सरपरस्ती हमेशा अपने ऊपर चाहते थे, आज वे उनके चले जानेके समय सौदा करनेके लिए एकत्र हुये हैं। आपके सभापति अलवर-नरेशने इसके लिए बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञता प्रकट की कि अंग्रेज कमांडर-इन-

चीफ आर्किलेकने राजपूतों और उनके अगुओंकी वीरताकी बड़ी तारीफ की है। अकबरने भी मानसिंहकी बड़ी तारीफ की थी, पर उसे नहीं बल्कि प्रतापको हमारा देश पूजता है। मेरे कार्यवाहक सभापति बननेपर क्या कभी ऐसी हर्कत की जा सकती है, जो अभी यहाँ देखी गयी? फिर मैं कैसे आपका सभापति बन सकता हूँ? आपने मुझे सभापति चुना, उसके लिए मैं बहुत आभार मानता हूँ। मैं अपनी तरुणाईके आरंभसे अंग्रेजोंसे लड़ता आ रहा हूँ, जब कि आपके यह नेता कहलानेवाले सज्जन अंग्रेजोंके साथ हर तरहका सहयोग करते स्वतंत्रताके आन्दोलनको कुचलनेके लिए तैयार थे। आप यदि अपनी भलाई चाहते हैं, तो उसी कांग्रेसके सेवक बनिये, जिसकी कुर्बानियोंके फलस्वरूप आज देश आजाद हो रहा है और नेहरूको अपना सरदार मानिये।

सरदारके त्यागमय जीवनको जानते हुए उनके जोशीले भाषणको सुन कर नौजवान बड़े खुश हुए, पर पुराने नेता और सामन्त बहुत ही खिन्न हुए। अलवरके राजाने अपने निवासमें बुलाकर सरदारसे कहा—आपका कहना ठीक है। पर, "बीती ताहि बिसार दे", अब हमें अपनेको संघटित करना चाहिये, आप योजना दीजिये, उसीके अनुसार काम किया जायेगा। दिल्लीमें सभाका केन्द्र रहेगा। समाचारपत्र निकालें, दूसरे तरीकेसे काम किया जाये, हम पैसे और हर तरहसे सहायता करेंगे। सरदारका वही जवाब था—अलग संघटन करके अपना राज्य लौटानेका ख्याल छोड़िये। भलाई इसीमें है कि कांग्रेसके सैनिक बनिये, नेहरूको अपना नेता मानिये, जनताके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझिये।

१९४५ में अब भारतकी अवस्थामें बहुत परिवर्तन हो गया था। अंग्रेजोंकी छाया खिसकती दिखाई पड़ती थी, पंजाब सरकार प्रतिगामितामें हमेशा सारे हिन्दुस्तानकी सरकारोंका कान काटती थी, पर उसपर भी भवितव्यताका असर पड़ रहा था। उसने अब सरदारके ऊपरसे प्रतिबन्ध उठा लिया। अब वह अम्बालेमें रह सकते थे। सरदारने

चाहा, क्यों न अब वहीं कार्य किया जाये ? वह अंबाला लौट आये, और प्रायः दो साल (१९४५–४७ ई०) वहीं रहकर पार्टीका संघटन और लोगोंमें काम करते रहे।

१९४५ में गांधीजी और दूसरे कांग्रेसी नेता जेलसे छूटे थे। गांधी जी बंबईमें बिड़लाभवनमें ठहरे थे। सरोजिनी देवी पहरेपर थीं। सरदार महात्माजीसे मिलने गये। सरोजिनीजीने कहा—आपके लिए पहरा थोड़े ही है। मीरा बहिन, कन्नूभाई और दूसरे भक्त भी वहाँ मौजूद थे, उन्होंने सरदारसे कहा—स्वार्थियोंने बापूको घेर रक्खा है। आश्रमवासी बापूके आदर्शसे बहुत पतित हो चुके हैं, जो आश्रम कभी सारे भारतका हृदय-केन्द्र बनकर सबका संचालन कर रहा था, अब वह बिगड़ चुका है, यदि आप आकर उसे सँभाल लें, तो उसके सुधरनेकी आशा है। महात्माजीके सामने फिर इसकी चर्चा हुई, उन्होंने कहा—हाँ आश्रममें आ जाओ, यह बड़ी अच्छी बात होगी, उनके जोर देनेपर सरदारने कहा—"आश्रममें आनेमें मुझे बड़ी खुशी होगी, पर अब तो मैं अपने मनसे नहीं आ सकता, मुझे (कम्युनिस्ट) पार्टीसे आज्ञा लेनी होगी, और उसके ही अनुशासनमें रहना होगा, मैं आपके प्रति अपार सम्मान रखते हुए भी आपका शिष्य या भगत नहीं हूँ।" गांधी जीने कहा—"सो कैसे हो सकता है, पहिले ही जैसे भावोंके साथ आश्रममें आ जाओ।" सरदार उसके लिए तैयार नहीं हो सकते थे।

❀ ❀ ❀

अभीतक जिस नीतिके अपनानेके कारण कांग्रेसी देश-भक्त गालियाँ देते थे, उसी नीतिको अब गांधीजीने अपनाया था, इसलिए अपनी और अपनी पार्टीकी स्थिति साफ करनेके लिए सरदारने गांधीजीको १९४५में निम्न पत्र लिखा—

"महात्मा जी, प्रणाम

काफी अरसा बीत चुका है, मैंने आपकी सेवामें कोई पत्र नहीं लिखा और न ही आपके साथ मुलाकात करनेकी कोशिश की है।

लेकिन आज कई नाजुक हालतोंने मुझे मजबूर किया है, इसलिए पत्र लिख रहा हूँ, अगर आप नजदीक होते तो शायद मिलनेकी कोशिश भी करता।

आपके दिमागपर हमेशा एक प्रकारका बोझा है, इसे मैं जानता हूँ। इस समय कई जटिल समस्याएँ आपके सामने खड़ी हैं, आपकी शारीरिक हालत भी अब पहिले जैसी नहीं रही, इन सब बातोंको जानते हुए भी मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, क्योंकि मेरा मन काफी आकुल है, मैं इस पत्रको लिखकर अपने मनकी आकुलताको दूर करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। यदि समय हो तो इस पत्रको पढ़ियेगा और उचित लगे तो जवाब दीजियेगा।

देशमें एक अजब प्रकारकी बेचैनी फैली हुई है। राजकीय दृष्टिसे जाग्रत जनता अनेक हिस्सोंमें विभक्त हो पड़ी है। चारों ओर अविश्वासका वातावरण फैला है। हरेक पक्ष (दल) यह समझने लगा है कि दूसरा पक्ष हमें हड़पनेके लिए तैयार खड़ा है। सभी पारस्परिक विश्वास खो बैठे हैं। यह सत्य हकीकत सबको साफ नजर आ रही है। इसकी तरफ आँखें बन्द करके बैठा नहीं जा सकता। जिस कांग्रेसको सबल और लोकप्रिय बनानेमें लाखोंने अनेक प्रकारके बलिदान दिये, उसी कांग्रेसका विश्वास आज दूसरी सबल और लोकप्रिय संस्थाओंपर क्यों नहीं रहा? और उनका भी विश्वास कांग्रेसपर नहीं रहा, इस सत्य हकीकतसे इनकार करना अकलमन्दी नहीं है।

कांग्रेसमें ऐसे जोशीले और जवाबदेह कार्यकर्ता कम नहीं हैं, जो यह मानते हैं और तोड़फोड़में हिस्सा लेनेवालोंकी संख्या और चुनावोंके आँकड़ोंको पेश करके सिद्ध करना चाहते हैं कि कांग्रेस पहिलेकी निस्बत ज्यादा बलवान बनी है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। क्या आज कांग्रेसका मजदूरोंपर वैसा ही काबू है, जैसा कि कभी था? साफ देखनेमें आ सकता है कि जो मजदूर व्यवस्थित रीतिसे संघटित हैं, उनकी बड़ी भारी शक्ति आज कांग्रेसके हाथमें नहीं है।

किसानोंका भी यही हाल है। विद्यार्थी-जगत भी आज दो हिस्सोंमें बँट गया है। हिन्दुओंका बहुत-सा हिस्सा आज हिन्दू सभाकी तरफ अपना झुकाव दिखला रहा है। लीगका मुसलमानोंमें क्या स्थान है, इसे तो एक बाहोश आदमी रोजे-रोशनकी तरह देख सकता है। इन सब बातोंके बारेमें कांग्रेसके खास-खास नेताओंने जो रवैया अख्तियार किया है, वह बहुत-सी उलझनें पैदा करके रहेगा।

सैकड़ों देशप्रेमी वर्षोंसे बड़ी जाँफशानी (त्याग) के साथ मजदूरोंको संघटित करनेमें अपना समस्त जीवन लगाते आ रहे हैं, जिसके कारण उन्होंने मजदूर समाजमें आदर और मान प्राप्त किया है। उनकी इस मेहनत द्वारा जो मजदूर सचेत और संघटित बने हैं, उनपर कांग्रेसके नेता अपनी काबू जमाना चाहते हैं—उनके माननीय नेताओंके द्वारा नहीं, केवल अपनी युक्तियों और प्रति-युक्तियोंके बलसे। यही बात किसानों और विद्यार्थियों, अछूतों और मुसलमानोंके बारेमें है।

इन सब संघटित जमातोंके बलका उपयोग उनके नेताओंका हार्दिक सहकार लेकर ही किया जा सकता है। लेकिन, प्रयास इससे उलटा हो रहा है जिसका परिणाम देशके लिए घातक होगा, क्योंकि इससे एक संघटित और सचेत शक्तिको बरबाद करनेके सिवा और कोई फल नहीं होगा।

कांग्रेस एक पक्ष या दल नहीं है। पर, आज उसे यह रूप दिया जा रहा है। सब दलों और पक्षोंको मिटा कर उसे बलवान् बनानेका जबर्दस्त प्रयास हो रहा है। इसका परिणाम यही होगा कि कांग्रेसकी समस्त शक्ति अनेक पक्षों और दलोंकी शक्तिको तोड़नेमें बरबाद होगी।

कुछ कांग्रेसी नेताओंमें हिटलर...(या रूस) की नकल करनेकी बू समायी है। वे उसकी कार्यपद्धतिको अंगीकार करना चाहते हैं। लेकिन यह बात भूल जाते हैं कि दोनोंके कामका ढंग जुदी-जुदी हालतोंमें जुदा-जुदा रहा है। एकने अपनी योजनाके अनुसार उच्च और मध्यम वर्गकी अल्प लेकिन संघटित शक्तिके बलसे सारे देशकी

शक्तिपर काबू जमा कर दुनिया भरमें छा जानेका जबर्दस्त प्रयास किया, दूसरेने समस्त देशकी मेहनतकश जनताका उनके नेताओं द्वारा सहकार लेकर एक योजना बनायी और उसके बलका उपयोग अपने देशको सुरक्षित करके आगे बढ़नेमें किया। जुदी-जुदी रीतिसे जो प्रयास किया गया, उसका परिणाम क्या हुआ, इसे आज भी समझदार आदमी देख रहे हैं।

देशको प्रगतिकी तरफ ले जानेके लिए हमारे सामने एक ही मार्ग है। देश भरकी समस्त जाग्रत और संघटित शक्तिको सबके सहकारके बलसे संघटित करनेका प्रयास ही एक सुन्दर प्रयास होगा। इस प्रकार का प्रयास हमें सफलताके मार्गपर ले जा सकेगा...जुदी-जुदी संघठित शक्तियोंको तोड़कर एक महान् संघटन पैदा करनेका प्रयास घातक साबित होगा।

कांग्रेसका कार्य आजतक किसी योजनाके आधारपर नहीं चलाया गया। लेकिन, आज कांग्रेसके अनेक नेता अपनी-अपनी योजना पेश कर रहे हैं। वह इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि योजनाके बिना कार्य-सिद्धि न होगी। जेलकी चहारदीवारीके भीतर बहुतोंको निश्चित समय मिला, बहुतोंने इसका काफी लाभ उठाया। बहुतसे...दिमागोंने योजनाएँ गढ़ीं। आज वह योजनाएँ देशके सामने पेश हो रही हैं। इन योजनाओं-के द्वारा वह देशकी समस्त शक्तिपर काबू कर आगे बढ़ना चाहते हैं। इस बातको नजर-अन्दाज किया जाता है कि राष्ट्रके निर्माण करनेकी योजनाका गढ़ना एक आदमीका काम नहीं, चाहे उसका दिमाग कितना ही उर्वर क्यों न हो। राष्ट्रके निर्माण करनेकी योजना राष्ट्रके उन हजारों कार्यकर्ताओंकी सहायतासे ही बननी चाहिये, जिन्होंने अपना समस्त जीवन राष्ट्रके निर्माण करनेमें लगाया है। रूसी जनताके नेताओंने अपने राष्ट्रका निर्माण करनेके लिए जब योजना तैयार की तो राष्ट्रके समस्त कार्यकर्ताओंकी सहायतासे उसे तैयार करनेमें पाँच साल लगे।

पिछले २५ सालोंमें देशभरमें आपने एक प्रचंड शक्तिको जाग्रत किया है, लेकिन अब जब आपने परीक्षा ली, (तो) उसका क्या परिणाम पाया? १९२२ में आपको मालूम हो गया कि जिस शक्तिको जगाया गया है, उसे अपने काबूमें रखकर उससे काम लेना आसान नहीं है। हजारों कार्यकर्ताओंको जेल जाना पड़ा, उन्हें अपनी शक्तिका परिचय देना पड़ा। अंग्रेजोंको साफ मालूम हो गया कि इनमें वह ताकत नहीं है, जो कि क्रान्तिकारियोंमें होनी चाहिये। १९३१ से १९३३ तक जो आन्दोलन आपने चलाया, उससे भी आपको मालूम हो गया कि जाग्रत जनतामें किस-किस प्रकारकी कमजोरियाँ होती हैं।

१९३७ में जब कि १९३५ के विधानको अमलमें लानेका निश्चय किया, तो आपको साफ मालूम हो गया कि जिन देशभक्तोंमें जेलोंमें जाने और फाँसीके रस्सोंपर लटकनेके सिवा और मोह नहीं था; सत्ता हाथमें आते ही वह भी मोहवश हो गये, और उन्होंने अपनी मनोदशाका कैसा परिचय दिया है?

१९४१ में आपने व्यक्तिगत सत्याग्रहका आन्दोलन शुरू किया। उस समय भी आपने अच्छी तरह देखा कि चन्द व्यक्तियोंको छोड़ सत्याग्रहियोंमें कैसे अनमोल रत्न भरे पड़े हैं।

१९४२ में जो महा आन्दोलन आपने चलाया, और देशकी जनताके सामने एक महान् प्रोग्राम रक्खा; उस समय सारे जगतके सामने बड़ी बड़ी भद्दी रीतिसे इस बातका प्रदर्शन हुआ कि देशकी जनताके सामने कोई योजना नहीं और न ही योजनाको अमलमें लानेके लिए पूर्व तैयारी या अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि है।

१९४२ में हूकूमतके सामने आपने जंग छेड़ी, पर योजना नहीं, पूर्व तैयारी नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि नहीं, दूसरे आजाद और गुलाम देशोंकी प्रजा क्या कर रही है, इसका जरा भी ख्याल नहीं। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी तरफसे आप निराश और दुखी होते हैं, आप यह निश्चय कर लेते हैं कि जबतक परदेसी सत्ता मौजूद है, तबतक यह एकता हो नहीं

सकती। कम्युनिस्ट पार्टीके विरोधको तो आपने कोई महत्त्व ही नहीं दिया।

१९४४ में, आप जेलसे बाहर आते हैं। देसाई-लियाकतके मसौदे-को आपका आशीर्वाद मिलता है। आपके सहयोगी मित्र भी जेलसे बाहर आते हैं।

१९४५ में, जब कि जर्मनी हार चुका है और जापान दुम दबाकर भाग रहा है, उस समय शिमला शैलपरसे उसी विदेशी राष्ट्रके साथ मित्रताका रिश्ता जोड़ते हैं, जिसे उखाड़ फेंकना आपके जीवनका आखिरी मकसद था। तीन सालके अरसेमें कितना जबर्दस्त हेर-फेर—दुश्मन दोस्तके रूपमें नजर आता है। उसके साथ मेल हो ही नहीं सकता, यह आपका निश्चित मत था, पर उसीके साथ फिरसे मेल करनेकी तदबीरें आप सोचने लगते हैं और कोशिश करके मिलते हैं। जिनकी शक्तिको आप और आपके मित्र कोई महत्त्व नहीं देते थे, उनकी हस्ती मिटानेके लिए आपके सहयोगी मित्र अपनी तमाम शक्तिको उपयोगमें ला रहे थे।

मैंने आपको बहुत नजदीकसे और बारीकीसे देखनेकी कोशिश की है। दो महान् सद्गुण मैंने आपमें देखे हैं—आपमें दूसरोंकी शक्ति और गुणोंको अच्छी तरह और आसानीके साथ देख लेनेकी शक्ति है और अपनी कमजोरियों और भूलोंको भी।

१९४५ के आपके रवैयेसे साफ मालूम पड़ता है, कि १९४२ में जो भूलें आपने की हैं, उनको आपने समझ लिया है। आपके कार्यसे लोगोंको पता चल गया है कि आपने अपनी भूलोंको सुधारा है। लेकिन, आपके शब्दों द्वारा अभीतक लोगोंको यह मालूम नहीं हुआ। वह अभीतक अचम्भेमें पड़े हैं, कुछ समझ नहीं पाते! अभी-तक लोगोंके सामने यही कहा जाता है कि ८ अगस्त १९४२ के प्रस्ताव ब्रह्माके हाथोंसे लिखे अक्षरके समान हैं। उनमेंसे एक मात्रा भी नहीं हटायी जा सकती। प्रस्तावका उपयोग तो यही होता है कि

जो भाव उसमें प्रदर्शित किये गये हैं, उन्हें अमली जामा पहनाया जाय। इसपर यह स्वाभाविक सवाल उठता है—क्या ८ अगस्त १९४२के प्रस्तावके अमली जामा पहनानेके लिए आप और आपके सहयोगी मित्र २५ जुलाई १९४५ को शिमला शैलपर जमा हुए थे। देशकी जाग्रत जनता इसके बारेमें साफ तौरपर जानना चाहती है।

मैं तो यह बात साफ समझता हूँ कि आपने अपनी भूलोंको समझ लिया है। आप जो कुछ कर रहे हैं, उसे करनेमें आपने जबर्दस्त नैतिक हिम्मत दिखलायी है, किसी बातका ख्याल किये बिना आपने देशको गिरी हुई हालतसे उठानेके लिए एक महान् प्रयास किया है। इसके लिए आप धन्यवादके पात्र हैं।

१९४२ के आन्दोलनके कारण जो अवस्था देशमें पैदा हुई अब मैं उसकी तरफ आपका ध्यान खींचनेकी कोशिश करता हूँ। देशकी भूखी और पीड़ित जनता आज बड़ी तंगहालीसे गुजर रही है। पाँच साल तक वह अपनी रगोंका खून बहाकर जीवित रही। अब ऐसी हालत पैदा हो गयी कि वह तभीतक जीवित रह सकती है, जबतक कि उसकी रगोंका खून बिल्कुल सूख नहीं जाता, ऐसी अवस्थामें यह शोचनीय बात दीख रही है कि जनताके बहुतसे माननीय तारनहार अपनी नीच मनोदशाका प्रदर्शन कर रहे हैं, उनकी तंगदिली, स्वार्थ-परता और राजनीतिक भूलोंके कारण देश भरमें अविश्वासका वातावरण छा गया है। कांग्रेसके नेता सब दलों और पक्षोंकी सारी शक्तिको तोड़ कर सारे देशपर छा जाना चाहते हैं। इसपर छोटे-मोटे सभी दल और पक्ष अपनी रक्षाके लिए अपनी शक्तिको काममें ला रहे हैं। हो सकता है, कांग्रेसके नेता अपने मनोरथमें कामयाब हो जायँ, इसका दूसरा नतीजा चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर एक तो यह जरूर ही होगा कि सब दलों और पक्षोंकी शक्तिके टूट जानेके साथ ही कांग्रेसकी शक्ति भी टूट जायेगी।

कम्युनिस्ट पार्टी

अब मैं आपका ध्यान कम्युनिस्ट पार्टीकी तरफ खींचना चाहता हूँ। १९४२ में कांग्रेसके नेताओं और पार्टीके नेताओंमें राजनीतिक दृष्टिसे एक बड़ा भारी मतभेद खड़ा हो गया। उसीके कारण ८ अगस्तके प्रस्तावके उस हिस्सेका उन्होंने सख्त विरोध किया, जो कि सामूहिक सविनय आज्ञाभंगकी हिदायत करता था। देशके नेताओंके पकड़े जानेके बाद किसीने उन हिदायतोंपर अमल नहीं किया या अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार ही किया। किसी महान् कार्यको सफलतापूर्वक पूरा करनेके लिए तो खास प्रकारकी शक्ति और योजनाकी जरूरत होती है, न करनेके लिए किसी चीजकी जरूरत नहीं होती। समझमें नहीं आता कि १९४२ का आन्दोलन कुछ करनेके लिए था या न करनेके लिए। राष्ट्रके नेताओंको पकड़कर सरमायादारी अंग्रेजी हकूमतने लोकशाही जगतके सामने यह प्रकट करनेकी कोशिश की कि हिन्दके राजनीतिक नेता फासिस्टपक्षी हैं। आप लोगोंके जेल चले जानेका दुष्परिणाम क्या हुआ ? कांग्रेसपक्षी ही जनता मुसल्मानोंको, खासकर मुस्लिम लीगको अंग्रेजोंका हिमायती और देशका दुश्मन समझने लगी। हिन्दू जनता जिसे हिन्दुत्व प्रिय है, वह कांग्रेस और मुस्लिम-लीग दोनोंको अपना दुश्मन समझने लगी। उसके नेताओंने लड़ाईमें शरीक होनेके लिए इसलिए आकांक्षा प्रकट की ताकि वह अस्त्र-शस्त्रकी कलामें प्रवीण होकर मुसलमानोंके साथ अच्छी तरहसे मुकाबिला कर सकें।

कम्युनिस्ट पार्टीने जगत भरकी क्रांतिकारी संस्थाओंके द्वारा यह समझानेकी कोशिश की कि हिन्दके नेता फासिस्त विरोधी हैं, उन्हें कैदमें रखनेका अर्थ केवल एक ही होता है, कि लोकशाही विजयको सख्त धक्का पहुँचाया जाये। हिन्दके सरमायादारों, जागीरदारों और उनके अनुचरोंने, जापानी प्रोपेगंडासे उक्साये नौजवानोंने इस पार्टीको हदसे ज्यादा बदनाम करनेकी कोशिश की, कम्युनिस्ट लोग विदेशी हुकू-

मतके एजंट हैं, अंग्रेजी हुकूमतके जर-खरीद गुलाम हैं, देश और धर्मके दुश्मन हैं।

१९४२ के आन्दोलनने देशके राजनीतिक वातावरणको दूषित बना दिया। आपके आन्दोलनका देश भरमें यह असर होगा, क्या आप इसका अन्दाजा लगा सके थे ? वह वातावरण कुछ करनेके अनुकूल हुआ या न करनेके, इसका अन्दाजा आप ही लगायें। उस आन्दोलनका जो भयंकर असर देशकी समस्त जनताके ऊपर पड़ा है, उसे आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उस कुढंगी चालके परिणामस्वरूप देश भरको जो सदमा पहुँचा है, उसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है। हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है, उसे सुधारनेका प्रयास होता नजर नहीं आता।

कम्युनिस्टोंका अपराध

रूसके युद्धमें शामिल होनेके कारण इस युद्धको लोकयुद्धका नाम देकर लोगोंको गुमराह करनेकी कोशिश की गयी। जिस पक्षकी हिमायतमें अंग्रेजी हुकूमत खड़ी थी, उस पक्षको जीत मिले, इसके लिए उन्होंने जबर्दस्त प्रयास किया। जो सैनिक इस पक्षको जितानेमें अपनी जानोंको कुर्बान कर रहे थे, उनका हृदय दृढ़ रहे, उन्हें अन्न और वस्त्र बराबर मिलता रहे, देशकी जनताको भी अन्न-वस्त्र मिले, इसके लिए उत्पादन बढ़ानेके लिए उन्होंने मजदूरों और किसानोंको प्रेरित किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता बिना आजादी नहीं मिल सकती, इस बातको समझना काला बाजारके काले और गोरे चोरोंके खिलाफ एक बड़ी मुहिम खड़ा कर भूखों और नंगोंको अन्न-वस्त्र दिलानेकी कोशिश की। राष्ट्रके नेता फासिस्ट-विरोधी हैं, इस भावको जगत भरमें फैलाया। हिन्दमें अगर राष्ट्रीय सरकार नहीं स्थापित होती, तो लोकशाहीकी जीत होनी मुश्किल है, इस ख्यालका प्रचार किया। अपने माननीय नेताओंको जेलसे छुड़ानेके लिए अपनी शक्तिका उपयोग किया।

ये हैं, हमारे अपराध, जिनके कारण हमें उस संस्थासे धक्के मार कर निकाला जा रहा है, जिसे सबल बनानेके लिए हमने उसे अपने

खूनसे सींचा। हमारे यही अपराध हैं न या और भी ? नीचताके साथ और नीच भावोंसे प्रेरित होकर हमपर और भी इल्जाम लगाये गये हैं, जिनका जिकर मैं आगे चलकर करूँगा।

हमने इसे लोक-युद्ध कहा, यह हमारा अपराध है! आपने इसे १९४२ में शाही (साम्राज्यवादी) जंग कहा था। इसमें किसी रूपमें शरीक नहीं होना चाहिये, यह आपका फरमान था। १९४५ में जब कि जर्मनी हार चुका और जापान हार रहा था, उस समय देसाई-लियाकत समझौतेके परिणाम स्वरूप जब आपके सहकारी मित्र जेलोंसे छूट कर बाहर आये और सैनिक वाइसरायके साथ बात-चीत करके लड़ाईमें शामिल होनेके इरादेका इजहार करते हुए कहा, जब तक जापान हार नहीं जाता, तब तक अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ किसी प्रकारका आन्दोलन हमें नहीं खड़ा करना है। यह कबूल करते आपने फरमान निकाला, फिर क्या तब यह जंग शाही (साम्राज्यवादी) नहीं रहा ? जिस हुकूमतको उखाड़ फेंकनेके लिए आपने फरमान निकाला था, क्या उसीकी जीतके लिए आपने जंगमें शरीक होनेकी सलाह नहीं दी ? क्या आप जेलकी यातनाओंसे घबड़ा गये थे, या किसी और प्रलो-भनमें फँस गये ? ऐसा नहीं हो सकता। मेरी तो मान्यता है कि आपको अपनी भूल मालूम पड़ी। आपको यह अच्छी तरहसे जम गया, कि जिस पक्षमें खड़े होकर अंग्रेज लड़ रहे हैं, उसी पक्षकी जीतमें भारतका कल्याण है इसीलिए आपको लगा कि जापानको हराना जरूरी है। नौजवानोंमें १९४२ से हमने अपनी समस्त शक्तिको इसी कार्यकी सिद्धिमें लगाये रक्खा, लोगोंकी मार, गालियाँ और ताने सहते रहे। क्या वह हमारा अपराध था ? १९४२ में अंग्रेजोंके दुश्मन बनकर शान्तिसे जेलमें जाकर आप बैठ जाते हैं, तो आप लोगोंके पूजनीय बनते हैं। १९४५ में जब उसी सरकारके दोस्त बनते हैं, तो भी लोग आपके चरणोंमें झुकते हैं।

तोड़-फोड़के कार्यकी आपने निन्दा की और उसकी तरफसे

लोगोंको रोका। जो गुप्त रह कर तोड़-फोड़का कार्य कर रहे थे, उन्हें प्रकट होनेकी हिदायत दी। इसे आपकी बुद्धिमत्ता कहा जाता है, और जब हम उन्हें उस तरहसे रोकनेका प्रयास कर रहे थे, तो वह हमारे लिए अपराध था!

जब काले बाजारके काले चोरोंको दण्डित करनेके लिए हम जनता-को प्रेरित करते थे, तो कहा जाता था कि हम अंग्रेजोंके गुलाम हैं, इसलिए उनके जुल्मोंको छिपानेके लिए यह हमारा प्रयास है" और हमारी यह कोशिश भी अपराधमें गिनी जाती है, लेकिन जब पंडित जवाहरलाल नेहरू बाहर आकर काले बाजारके काले चोरोंको फाँसीपर लटकानेकी बात करते हैं, तो इसे तालियोंसे स्वीकार किया जाता है। कुछ रोज पहिले मौलाना अबुलकलाम आजादने अपने एक भाषणमें फर्माया कि इस युद्धमें लोकशाहीकी जीत हुई है और इस जीतके लिए हमें खुशी है। जब यह लोकशाहीकी जीत है, तो उस जीतको हासिल करनेके लिए कम्युनिस्टोंने जो कुछ किया, क्या वह उनका अपराध था? इस जीतको प्राप्त करनेके लिए हिन्दुस्तानकी डेढ़ करोड़ जनताने बड़े जोरके साथ काम किया तो क्या यह उसका अपराध था? हिन्दके बहादुर सिपाहियोंने जर्मनी और जापानको मार भगानेमें जो वीरता, जंगमें सफलतापूर्वक लड़नेका कौशल दिखलाया, क्या वह उसके लिए प्रशंसाके पात्र नहीं हैं? जिन किसानोंने ज्यादा अन्न पैदा कर और जिन मजदूरोंने कारखानोंकी उपज बढ़ाकर लोकशाही विजयको प्राप्त किया, क्या वह अपराधी हैं?

हमपर इलजाम लगाया जाता है, कि १९४२ में हमने कांग्रेसके अनुशासनको भंग किया। हमने प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, उस पर अमल नहीं किया, और उससे उलटे चलनेके लिए देशको सलाह दी। मान लीजिये कि हमने अनुशासन-भंग किया, उसके लिए हमें सजा मिलनी चाहिये लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि सेनाकी किसी ऐसी टुकड़ीको सजा दी जाये; जो सेनापतिके आदेशको तोड़कर किसी ऐसे

मोर्चेपर डट गयी हो जहाँ पर विजय प्राप्त करनेके लिए सारी सेनाको आकर जुट जानेकी जरूरत है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक नहीं बुलायी गयी। पहिलेके प्रस्तावको वापस नहीं लिया गया। वह तो ब्रह्माका अक्षर ही रहा, लेकिन कार्यकारिणीने युद्धमें शामिल होनेका इरादा प्रकट किया, और यह भी कि जबतक जापानको न हरा दिया जाय, तब तक सामूहिक आन्दोलन बन्द रखा जाय, इसका क्या यह मतलब नहीं हुआ कि कानून बनानेवालोंको कानून तोड़नेका हक है—"समरथको नहिं दोष गुसाईं"

पकड़े जानेसे पहिले आपने देश-वासियोंके लिए अनेक हिदायतें दी थीं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि उनपर देशभक्तोंने अमल नहीं किया। कांग्रेसकी कार्यसमितिकी ओरसे कई फरमान निकाले गये, गुप्त संगठन किये गये, तोड़फोड़ करके जापानके आनेके रास्तेको सुगम बनानेकी कोशिश की गयी। अभी भी ऐसे देशभक्त हैं, जिन्होंने आपके आदेशके अनुसार अपनेको प्रकट नहीं किया है। क्या यह अनुशासन-भंग नहीं है? आदमियोंने केवल अनुशासन-भंग ही नहीं किया, बल्कि देशको उल्टे मार्गपर ले जानेका प्रयास किया। आप उनके मार्गपर नहीं गये। आपने हमारा ही मार्ग स्वीकार किया है, फिर उनके ऊपर अनुशासन भंगका मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाता? बहुतसे कांग्रेसी देशभक्त व्यापारियोंने युद्धको सफल बनानेके लिए युद्ध-सामग्री दी, और करोड़ों रुपये कमाये। क्या यह अनुशासन-भंग नहीं है? क्या उनपर मुकदमा चलाया गया? वह तो आज भी देशभक्त हैं, कांग्रेसके आधार-स्तम्भ हैं। जिन्होंने अनुशासन-भंग कर तोड़-फोड़ करके जापानके मार्गको सुगम बनानेका प्रयत्न किया, उनपर अनुशासन-भंग-का मुकदमा नहीं चलाया जाता। उनको तो वीरका पद मिला है, और आज वह कांग्रेसके सूत्रधार बने हैं। यह कैसा तमाशा है? कुछ समझमें नहीं आता? आपके अनुयायियोंने उच्चकोटिके देश-भक्तोंने हम (कम्यु-निस्टों) पर अनेक प्रकारके इलजाम लगाये। इलजाम लगानेवालोंसे

क्या आपने सबूत माँगे। क्या उन्होंने सबूत पेश किये? क्या उन सबूतोंको आपने मान्य किया? क्या उन सबूतोंको आप जनताके सामने पेश कर सकते हैं? आपके जगत्-विख्यात् दानवीर मित्र बिड़लापर लोगोंने इलजाम लगाये कि वह काले बाजारके काले व्यापारी हैं। आपने माँग पेश की कि सबूत पेश करो। वैसे सबूत नहीं पेश हो सके, जो आपको कायल कर सकें, इसलिए दानवीर बिड़ला दानवीर ही रहे, और आप उनके द्वारके याचक, दानवीरने कालाबाजारमें काला कहर मचाया कि नहीं, इसके लिए तो सबूतोंकी जरूरत थी लेकिन क्या आप इसे इन्कार करेंगे कि उन्होंने करोड़ों रुपये कमानेके लिए युद्ध-सामग्री पैदा करके दी? क्या यह कार्य कांग्रेसकी नीतिके अनुसार था?

हमारे ऊपर तो इलजाम लगाना ही काफी है; इतने ही से हमें अपराधी ठहराया जा सकता है।

कम्युनिस्टोंपर किस प्रकारके इलजाम लगाये जाते हैं, उनके सबूतमें क्या क्या दलीलें पेश की जाती हैं, और फिर किस तरहसे और किस प्रकार इन्साफ किया जाता है, इसका एक नमूना मैं आपके सामने पेश करता हूँ। बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी चार सदस्योंको कमेटीसे निकालनेका विचार करती है। पाटिल साहबकी तरफसे फरमान मिलता है कि अनुशासन (शास्ती) भंगका मुकदमा तुमपर क्यों न चलाया जाय? इसके लिए तुम सबूत पेश करो। कम्यूनिस्ट वक्तपर हाजिर होते हैं, वह माँग पेश करते हैं कि हमपर क्या क्या इलजाम लगाये गये हैं। इसके बारेमें उनको कोई लिखित कागज नहीं दिया जाता। वह कहते हैं कृपा कर आप लिखकर दीजिये कि हमपर क्या क्या इल-जाम हैं और साथ ही विचार करनेके लिए कुछ समय दीजिये, जिसमें हम उसका जवाब दें। बहुत हास्यजनक परिस्थिति पैदा हो जाती है। कमेटीके मेम्बर अपराधियोंको सोचनेका समय नहीं देते, न ही इलजाम लिखकर देते हैं। वे खुद विचार करनेके लिए समय लेते हैं। कम्युनिस्ट अपराधियोंको कुछ मिनटोंके लिए बाहर भेजा जाता है, फिर वापस

बुलाकर उनसे कहा जाता है कि "कुछ लिखकर नहीं दिया जायेगा; सोचनेके लिए भी समय नहीं दिया जायेगा। इन-इन कारणोंसे तुम्हें बाहर किया जाता है। कबूल करो कि तुम कम्युनिस्ट नहीं हो, नहीं तो तुम्हारे खिलाफ कोई कार्रवाई करनेकी जरूरत नहीं।" सत्ताके दुरुपयोगका क्या इससे बढ़कर और कोई दूसरा उदाहरण पेश किया जा सकता है ? यह है, आपकी सत्य और अहिंसाकी तालीमका फल।

कम्युनिस्टोंके अपराध क्या हैं, यह मैं पहिले कह चुका हूँ। उनके अतिरिक्त अनेक निर्मूल इलजाम लगाकर कांग्रेसके बड़े-बड़े जवाबदेह कार्यकर्ताओंने हमें जनताके सामने जलील करनेकी कोशिश की। "वह मांस खाते हैं, ब्राह्मणोंके लड़के-लड़कियोंको मांस खिलाते हैं, हिंसाका प्रचार करते हैं, ईश्वरको नहीं मानते। आपको रसपुटिन कहते हैं। इत्यादि इत्यादि।" राजनीतिक दृष्टिसे राष्ट्रके अपराधी और नैतिक दृष्टिसे पतित कहकर लोगोंको कम्युनिस्टोंके खिलाफ उकसाया जाता है, समाचार-पत्रोंमें खूब नमक-मिर्च लगाकर लेख लिख जनताको कम्यूनिस्टोंके विरुद्ध करनेकी कोशिश की जाती है। सभामें उनके खिलाफ लोगोंको भड़काया जाता है। कैसे भड़काया जाता है—पाटिल साहब कमाटीपूरा के मजदूरोंकी एक सभामें फरमाते हैं :—"कम्युनिस्तांचे वर्तमान पत्र लोकयुद्ध खपतें। कारण तरुणतरणियाँ पोरी लोकयुद्ध विकणूया साठी जातात।" इत्यादि इत्यादि। कितना बड़ा जवाबदेह व्यक्ति और यह है उसका हमारी बेटियों और भाइयोंके लिए उद्गार।

अगर आप इसके बारेमें न कुछ कहें, न कुछ करें, तो मजदूर जगत में अभीतक आपकी जो प्रतिष्ठा है, उसको भारी धक्का लगेगा, क्योंकि यह सब कुछ आपके नामसे हो रहा है। पाटिल इस प्रकारकी बातें करके हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवनको दूषित बनायें, क्या यह भयंकर अपराध नहीं है ? कमाटीपूराकी मजदूर जनताको हम इसकी गवाहीके लिए पेश करनेको तैयार हैं। अगर आपकी नजरोंमें यह अपराध है, तो क्या अपराधीको दण्ड देनेके लिए तैयार हैं ? मैं नहीं मानता कि आप

इस बातकी तरफसे आँख, कान और जबान बन्द करके बैठे रहेंगे। हमारी बातपर आपको विश्वास न हो, तो कमाटीपूराके मजदूरोंसे आप पूछें। अगर पाटिलकी जबानसे आपको सन्तोष हो जाये, फिर तो खुदा ही खैर करे। लेकिन मैं इसे खुदापर छोड़ना नहीं चाहता, अगर ऐसा होता, तो आपको लिखनेकी जरूरत नहीं थी। स्त्री जातिका अपमान और उनको बीचमें लाकर उन भाइयोंका अपमान, जो कि लोक-युद्ध खरीदते हैं, यह आपसे सहन नहीं होगा।

लालबागकी सभाके बारेमें आपने सब कुछ जान लिया होगा, मुझे लिखनेकी जरूरत नहीं है। मैं तो केवल आपको इतना ही विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कम्यूनिस्ट और उनके पक्षके मजदूर सभामें लाठी पत्थर लेकर नहीं गये, जब झगड़ा हुआ, तो उन्होंने उन लाठियोंको इस्तेमाल किया, जो उनको मारनेके लिए लायी गयी थीं, और अच्छी तरहसे इस्तेमाल किया। बाहरसे कम्युनिस्ट और उनके साथी मजदूरों-पर निशानाबाज लोगोंके हाथोंसे पत्थर फिकवाये गये। कम्युनिस्ट लाठी पत्थर लेकर नहीं गये। मेरे सामने उनको सख्त हिदायत दी गयी थी, कि वह किसी प्रकारसे भी हमला न करें, लेकिन किसीके हमलेका शिकार भी न बनें। अगर आपको मेरी सफाईपर विश्वास नहीं है, तो मैं मजबूर हूँ।

श्री शंकरराव देव आपके पक्के अनुयायी माने जाते हैं, और सत्य-अहिंसाके पुजारी भी। उन्होंने लालबागकी सभाके बारेमें एक वक्तव्य दिया है। मैं शंकरराव देवको लालबागके मजदूरोंके सामने खड़ा करके पूछना चाहता हूँ, क्या उनके सामने खड़ा होकर वह यह कहनेका साहस करेंगे कि कम्युनिस्ट उस सभामें गुण्डागिरी करनेके लिए लाठी और पत्थर लेकर गये थे? शंकरराव देवके सरासर झूठे वक्तव्यने समाचारपत्रोंके सम्पादकोंपर भारी असर डाला, और उन्होंने खूब खुलकर इसके बारेमें लिखा। सभाके एक रोज बाद रविवारके रोज "लोकयुद्ध" बेचनेवालोंपर व्यवस्थित रूपसे बुजदिलाना हमले हुए, और हुए भी

ऐसे ही स्थानोंपर जहाँ गुण्डोंके अड्डे हैं। लोग खड़े हो तमाशा देखते रहे, जवान लड़कियोंके सामने भद्दे इशारे किये जाते हैं, गालियाँ दी जाती हैं और लोग खड़े खड़े हँसते हैं, नौजवान लड़कों और लड़कियोंका अपराध यही है कि वह लोकयुद्ध बेचते हैं, कहा जाता है, लोग अपने आप भड़क उठे, यह सरासर झूठ है अगर देशप्रेमी जनता भड़क उठी होती, तो वह लोक-युद्ध वालोंका नामोनिशान मिटा देती, पी. सी. आफिस और सेन्टरके आफिस पर धावा करके कम्युनिस्ट नेताओं-का खात्मा कर देती, अगर क्रुद्ध जनताका हमला होता, तो लड़कोंका खातमा हो गया होता। क्रोधित होकर जनताने हमला किया कि नहीं इसे बतानेके लिए मैं उदाहरण देता हूँ। रविवारकी सुबहको कुछ गुण्डोंने फनसवाड़ीके नाकेपर लड़कोंसे लोकयुद्धकी कापियां छीन लीं, उनमेंसे एक लड़का भागकर सेन्टर-आफिसमें खबर देने गया। छुट्टीका दिन होनेके कारण वहाँ इकबाल सिंहके सिवा और कोई नहीं था। वह घटनास्थल पर पहुँचे, वहाँ लोग जमा थे। उन्होंने लड़कोंके बारेमें पूछा, इसपर उनके ऊपर भी कुछ आदमियोंने हमला किया, इकबाल सिंह कम्युनिस्ट पार्टीके सेन्ट्रल कमेटीके मेम्बर हैं, अमेरिकामें इंजीनियर थे। उन्होंने मुकाबला किया। एक गाड़ीवालेके चाबुकसे उनपर हमला किया गया। उसी चाबुकको छीनकर उन्होंने हमला करनेवालोंको पीटा। उस स्थान पर दो हजार आदमी जमा थे, एक आदमीको पिटते देखकर वह तमाशा देखते रहे। जवान दो हजार आदमियोंके सामने खाली हाथों हाथ और लातसे गुण्डोंकी मरम्मत करते अपने बलका परिचय दे रहा था, इससे आप अन्दाजा लगा सकते हैं, कि जनताका इसमें कहाँ तक हाथ हो सकता है।

एक लड़की से "लोकयुद्ध" की कापियाँ छीननेके लिए एक गुण्डा हमला करता है, लड़की कापियाँ नहीं छोड़ती, जब वह चाकू निकाल-कर हमला करने चलता है, तो रास्ते चलता एक आदमी चाकूके वारको अपने हाथसे रोककर लड़कीको बचाता है। हमला करनेवाला भागने

लगता है। लोग उसे पकड़कर पुलिसके हवाले करते हैं। क्या इसे आप क्रुद्ध जनताका हमला कह सकते हैं ? लोक युद्धकी कापियाँ संख्यामें पहिलेसे भी अच्छी तरह बिकती हैं।

कम्युनिस्टोंपर राष्ट्रद्रोही होनेका अपराध लगाया जाता है, वह नैतिक दृष्टिसे पतित हैं, इस तरह खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जाता है, सभामें लोगोंको भड़काया जाता है। समाचारपत्रोंमें झूठे बयान देकर जनताको गुमराह किया जाता है, लाठियों और पत्थरोंसे हमले किये जाते हैं, गलियोंमें लड़के और लड़कियों पर गुण्डोंसे हमले कर-वाये जाते हैं, ताकि वह "लोक युद्ध" की कापियां बेचनेके लिये गलियोंमें न निकला करें, कम्युनिस्ट पार्टीके कतिपय कार्यकर्ताओं और नेताओंको लोग अच्छी तरह जानते हैं, वह समय समयपर गली-कूचोंमें अकेले निकलते हैं, पर किसी पर हमला नहीं हुआ। मैं भी अकेले ही फिरता रहता हूँ, कभी किसीने मुझपर हमला नहीं किया, इससे साफ मालूम होता है, यहाँ जनताके भड़कनेका सवाल नहीं था, सवाल है लोकयुद्धकी बिक्री बन्द करनेका, इसलिए गुण्डोंका इस्तेमाल किया गया, मदनपुराके पाँच मुसलमान लड़के "कौमीजंग" बेचनेके लिए निकले, गुन्डोंने उनपर सख्त हमला किया, पाँचोंको सख्त चोट आयी। जब इस बातकी खबर मदनपुराकी मुसलमान मजदूर जनताको मिली, तो उनके भीतर आग भड़क उठी, अगर समयपर हम पूरी शक्तिसे काम न लेते, तो यह मारपीट हिन्दू-मुसलमान झगड़ेका रूप ले लेती, नतीजा क्या होता, यह आप स्वयं समझते हैं। कांग्रेसियोंके खिलाफ मुसलमानोंमें पहिले ही से किस तरहकी भावना है, इसे आप अच्छी तरह जानते हैं।

मैंने इतना लंबा-चौड़ा कच्चा-चिट्ठा लिखकर इस आशासे भेजा है कि आप देशकी नाजुक हालतपर खूब गौर करें। हुकूमतने हमारे ऊपर काफी मुसीबतें लाद रक्खी हैं, बोझके मारे दम घुटा जाता है। इसपर भी अगर हम और मुसीबत मोल लेते जायें, तो यह हमारी अक्लका

दीवाला ही है। सब कुछ देख सुन कर मेरे दिलमें दर्द पैदा हुआ और दुखी मनको खोलकर आपको दिखानेकी कोशिश की ! मैंने अपना फर्ज अदा किया। जो बन पड़ता है, करता रहता हूँ। आप देशके नेता हैं। कॉंग्रेसके कार्यकर्ताओंमें कैसी शक्ति है, कैसे साधनोंसे संपन्न हैं, किस प्रकारके व्यक्तियोंके समूहके बलसे कॉंग्रेसकी शक्ति संगठित हुई है, मुझे इसका पूरा ज्ञान है।

कम्युनिस्टोंकी संख्या बहुत कम है। उनके पास ऐसी शक्ति नहीं है, कि लोगोंको अपनी ओर झुका सके। पर कम्युनिस्ट पार्टी अपनी तरहकी एक निराली शक्ति है, उसके वजनका पता लगाना आसान काम नहीं है। जो उसे कुचलनेपर तुले हुए हैं, समझ लें कि वह तबाहीकी राह पर हैं, झूठे इल्जामोंको लगाकर कम्युनिस्टोंको बदनाम करना, पत्थर और लाठियोंसे हमले कर भयभीत कर रोकनेकी कोशिश करना खतरेसे खाली नहीं है, इससे राष्ट्रकी मुक्तिका आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सकता। इसके कारण वर्षोंकी अनथक मेहनतसे जिस शक्तिको आपने पैदा किया है, वह बरबाद हो जायेगी। बहुत ही कटु सत्यको मैंने आपके सामने बड़ी कठोरतासे रक्खा। मुझे क्षमा करें, मुझे भूलसे बचायें ! मेरा यह प्रयास सिर्फ भूलसे बचने और बचानेके लिए है। मेरे इस पत्रका जवाब आप दें या न दें, मेरे लिए इतना जानना ही काफी होगा कि मेरा पत्र आपको मिला और आपने इसके भावको समझ लिया। प्रणाम !

पृथ्वीसिंह

× × × ×

१९४६ में सरदार अब भी अंबालामें ही रहते थे, पर सौराष्ट्र और बंबईका सम्बन्ध बिल्कुल छूटा नहीं था। इसी समय (३० अक्तूबर १९४६ ई०) गांधीजीको उन्होंने अपना दूसरा पत्र भेजा था।

"...बीसवीं सदीमें भारतमाताने ऐसे अनेक पुत्र पैदा किये, जिन्हें उनकी कुर्बानियोंके कारण देश अभिमानके साथ याद करता है, लेकिन यह सौभाग्य आपका ही है कि जीते-जी आप अपनी आँखोंसे

अपने प्रयासका फल देख रहे हैं। आपने अपनी जीवन-शक्तिसे देश-प्रेमका पौदा लगाया, वह फूला-फला और फल लाया। जो फल आपकी मेहनतके कारण आया है, वह कितना रस भरा और जीवनदायक साबित होगा, खासकर मेहनतकश जनताके जीवनमें आपकी मेहनतका क्या परिणाम होगा, इसके बारेमें चर्चा करनेकी इस स्थानपर ज़रूरत नहीं है, फल जरूर आया है, और यही एक बड़ा कारण है कि देशवासियोंके दिल आपके कदमोंमें झुक जाते हैं।

आपका जीवन आपकी अपनी नजरोंमें और देशवासियोंकी नजरोंमें एक सफल जीवन साबित हुआ है। यही एक कारण है कि अपने जीवनको और ज्यादा सफल और उपयोगी बनानेके लिए आपके मनमें यह लालसा लगी है कि मैं सवा सौ बरस तक जीऊँ। इसी वजह से देशके नर-नारी हर साल प्रार्थना करते हैं कि हम आपकी छत्रछायामें आगेसे आगे बढ़ते जायें।

सरसरी नज़रोंसे देखनेपर सभीको यही नजर आयेगा, जिसका ज़िक्र मैंने ऊपर किया। इतना लिखनेके बाद मैं अपने भावोंको आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। आपने जीवनके सर्व प्रकारके भोगोंको भोगा, सब रसोंको चखा, बड़ेसे बड़े मानके आप पात्र बने और अनेक बार अपमानको भी सहन किया। इन सब बातोंपर ध्यान रखते हुए मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप अपने जीवनको सफल जीवन समझते हैं? वह क्या चीज है, जिसके लिए हमारे देशवासी हर साल प्रार्थना करते हैं, कि आप सदा जीवित रहें? किस मनोकामनाकी पूर्तिके लिए आप सवा सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहते हैं?

आपने अंग्रेजी सरकारको बदीका अवतार समझा था। आपकी पवित्र आत्माने उस बदीके अवतारके साथ सहकार करनेसे इनकार किया था, क्या आज उसकी बदीमें कमी आयी है या आपकी पवित्रतामें या आपके पैमानेमें कुछ फर्क पड़ा है?

आप एक सच्चे साधक बने थे, सत्य और अहिंसाको आपने साधना

चाहा था। इतना ही नहीं, आपकी तो यह भी अभिलाषा थी कि आप जनसाधारणको इस लायक बनायेंगे कि वे सत्य और अहिंसाको साध सकें। क्या आपकी यह मनोकामना पूरी हुई? जो लक्ष्मी-पुत्र आपके कदमोंपर लाखों और करोड़ोंकी थैलियाँ न्योछावर करते हैं, क्या वही लाखों और करोड़ों नर-नारियोंको अपने पैरों तले नहीं कुचलते? चुनावोंके समय आपकी वफादारीका दम भरनेवाले किस प्रकारके इखलाक (चरित्रबल)का सबूत देते हैं, अपने हरीफों (प्रतिद्वंदियों)को पछाड़नेके लिए किस प्रकारकी नीच चालबाजियोंसे काम लेते हैं, क्या किसीने आज तक आपका ध्यान इस तरफ खींचा? जो आज किसी अधिकार-पदपर पहुँचे हैं या जो जीवनपोषक और जीवनोपयोगी पदार्थोंके मालिक बनकर खड़े हैं, उनमें कितने हैं, जिन्होंने आपके सत्य और अहिंसाके मन्त्रका जाप करके उसे जीवनमें अपनाया? क्या आपका ध्यान कभी इस तरफ नहीं गया? क्या यह हालत सन्तोषजनक है? क्या आपके मनमें यह ख्याल अभी तक कायम है कि जनसाधारण सरमायादारी (पूँजीवादी) दुनियामें सत्य और अहिंसाको अपना सकते हैं? २७ वर्षोंमें आपने वह कौन-सी चीज देखी, जिसके कारण आप उस उम्मेद-पर कायम हैं?

१९४२की जंगे—आजादी (स्वतन्त्रता-युद्ध) की लहरके समय क्या आपके भक्तजनोंने आपके और कांग्रेसके नामका जय करते-करते बमोंको नहीं बनाया? क्या पुलिसके खिलाफ शक्तिका उपयोग नहीं किया? जिन-जिन उपायोंको काममें लाया गया, क्या आपने उनके खिलाफ समयपर आवाज उठायी? कलकत्ता, बम्बई और आज जो बंगालमें हो रहा है और हुआ है, उसे किस नामसे पुकारा जाये? यह तो एक ऐसी वहशत (जंगलीपन) है, जिसकी मिसाल इतिहासमें नहीं मिलती। क्या यह सब कुछ इसी हिन्दमें नहीं हुआ, जिसमें २७ वर्षोंसे आप प्रेमभाव और अहिंसाका प्रचार कर रहे हैं? जो वहशत पिछली लड़ाईमें हमने युरोपके मैदानमें देखी है, वह तो इसके मुकाबिलेमें तुच्छ मालूम

पड़ती है, क्योंकि वहाँ वह सब संहार मशीनोंके द्वारा किया गया। कौन मर रहा है, कैसी मौत मर रहा है, इसे मशीन चलानेवाला नहीं देख पाता, लेकिन, यहाँपर तो शिकारी अपने शिकारको सामने आँखोंसे देखता है, ज्यादासे ज्यादा सासत्र देनेवाले उपायोंको इस्तेमाल कर अपने हरीफ [शत्रु] की जान लेता है। खूबी यह है कि उसे मारनेवाला अपना हरीफ समझ लेता है, उसकी मासूमियत और बेगुनाहीका उसे जरा भी ख्याल नहीं आता। जिस देशके लोग अपने मासूम और बेगुनाह देशवासियोंपर इस प्रकारके अत्याचार कर सकते हैं, क्या कभी ऐसे मनुष्योंसे आशा की जा सकती है कि वे आपके मन्त्र सत्य और अहिंसाको अंगीकार कर सकेंगे? आप सत्यके साधक हैं, इस मार्ग से आप कभी हट नहीं सकते। मैं तो आपके सामने इस असली हकीकतको रखकर आपसे पूछना चाहता हूँ कि २७ सालमें आपको किस प्रकारकी कामयाबी हुई? मैं इसी बातको दूसरे रुखसे देखनेकी कोशिश करता हूँ। हिन्दू-मुसलमानोंके दंगोंमें जो एक-दूसरेका गला काटनेमें लगे हैं, हो सकता है, उनमेंसे एक भी ऐसा न हो, जिसने कभी भी आपके भक्त होनेका दम भरा हो, इसलिए वह ऐसी वहशत कर सकते हैं। सज्जनताकी उनसे आशा नहीं की जा सकती, लेकिन जो आजतक आपके भक्त होनेका दम भरते रहे और आज भी बड़े फख्रके साथ भक्त होनेका दावा करते हैं, जब ऐसे भक्त-जन सत्याधारी बने और परदेशी हुकूमतकी भारी मशीन जब उनके हाथमें आयी, तो उन्होंने क्या कर दिखाया? जब एक सत्ताधारी शान्तचित्तसे सोचकर किसीको गोलीका निशाना बनानेका हुक्म देता है, चाबुकसे चमड़ी उखाड़ने और लाठियों-से सिर फोड़नेका फरमान जारी करता है, तो इस किस्मकी हिंसाको किस नामसे पुकारा जायेगा? तैश (क्रोध) में आकर जब एक आदमी हिंसा करता है, तो वह बेवकूफ और पागलकी हिंसा होती है, और योजनापूर्वक जो हिंसा की जाती है, वह जालिमकी हिंसा होती है। पागल और अक्लमन्द दोनों हिंसाके मार्गसे जा रहे हैं। आपके भक्त

सत्ताधीशोंने बम्बई और मद्रासके प्रान्तोंमें योजनापूर्वक गोली चलानेका हुक्म क्यों नहीं दिया? क्या आप इस प्रकारकी हिंसाको एक जालिमकी हिंसा न कहेंगे? पर सत्याधीशोंकी वहशतके खिलाफ आपने न एक हरफ लिखा और न एक शब्द कहा। क्या हम इससे यह नतीजा निकालें कि जो हिंसा आपके भक्तजनोंकी तरफसे की जाती है, उसे हिंसा नहीं कहा जा सकता। इन सब बातोंका उल्लेख करनेसे मेरा यही मतलब है कि २७ वर्षमें लोगोंने सत्य और अहिंसाको लेश-मात्र भी नहीं अपनाया; यदि लोगोंने अपनाया है, तो किस मानेमें? क्या आपको इससे सन्तोष है?

हिन्दु मुस्लिम एकता—इसकी सिद्धिके लिए आपने सिरकी बाजी लगा दी, पर क्या परिणाम हुआ? आज हिन्दू मुसल्मान एक दूसरेको जितना जानी दुश्मन समझते हैं, उतना पहिले कभी नहीं समझते थे। उनका एक दूसरेके साथ न मेल-जोल था, खाना-पीना भी एक साथ न था, आपसमें रिस्ता न था, पर इससे ज्यादा कुछ फर्क नहीं था! आज एक हिन्दू एक मुसल्मान बच्चेके जिन्दा रहनेमें अपनी मौत समझता है, और वैसे ही मुसल्मान भी! क्या इतने सालोंकी आपकी मेहनतका यही फल है? मुल्क और आजादीका दुश्मन, हमें गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़नेवाला, आज हिन्दू-मुस्लिम दोनोंको भड़का-कर दोनोंकी आड़ लेकर उनके पीछे खड़ा हो तमाशा देख रहा है! दोनोंको एक-दूसरेके सिवाय और कुछ नजर नहीं आता। दोनोंने अंग्रेजोंको अपना सहारा और रक्षक मान लिया है। आपसी अविश्वास-के कारण जिस परिमाणमें दुश्मनी बढ़ती है, उसी परिमाणमें अंग्रेजोंकी जड़ें हिन्दमें मजबूत होती जाती हैं।

इस सच्चाईको माननेसे कोई इन्कार नहीं करेगा कि अंग्रेज (आज) पहिलेसे बढ़-चढ़कर शैतानी कर रहे हैं और कुछ स्वार्थी मु-स्लिम लीडर उनके हाथकी कठपुतली बने हुए हैं। यह बात मानते हुए मैं आपसे सवाल करना चाहता हूँ—क्या हिन्दू-मुसलिम सवाल

को हल करते समय आपने या आपके सहकारी मित्रोंने कोई ऐसी गलती नहीं की, जिसका यह नतीजा हुआ? यदि गलती की, तो क्या उसे कभी स्वीकार किया या उस गलतीको सुधारनेका प्रयत्न किया? क्या यह सच्चाई नहीं है कि आप इस सवालका कोई हल नहीं निकाल सके? आप अपनी कोशिशमें नाकामयाब रहे, क्या आपने इसे स्वीकार किया? क्या इसका हल इसीलिये नहीं हुआ, क्योंकि यहाँपर अंग्रेज मौजूद हैं या आपको इसका हल सूझा ही नहीं? अगर इसका कोई हल नहीं सूझता, तो क्या हम गुलामीके फन्देसे निकल सकते हैं?

कांग्रेस और मुस्लिम लीग—दोनोंने अंग्रेजोंकी छत्रछायामें जो हुकूमतकी बागडोर संभाली है, क्या इसीका नाम आजादी है? २७ वर्षोंसे आप सत्य और अहिंसाके प्रचारमें लगे रहे। हिन्दू मुस्लिम-को आपने भाई-भाईके नातेसे जोड़ना चाहा पर आज न लोगोंमें सत्य रहा, न अहिंसा और न ही परस्पर प्रेम—इन तीनोंका अभाव है। इसका क्या कारण है? आप २७ वर्षसे हकीम बनकर खड़े हैं और बीमार बीमारीके मारे तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ रहा है। आपने अपने इलाजमें आजतक कहीं गलती नहीं देखी, क्या यह हकीकत नहीं है? बीमारका इलाज सफल नहीं हुआ, यह भी ठोस हकीकत है, अब भी आप बीमारकी नाड़ी पकड़े खड़े हैं, सो किस उम्मेदपर? क्या समय नहीं आ गया है कि आप उसे खुदाके या किसी दूसरेके रहमपर छोड़ दें? हकीमकी वह दवा किस कामकी, जिसे न बीमार खाना चाहता हो और न खाकर हजम कर सकता हो?

अछूतोंका सवाल—इस सवालको हल करनेके लिए आपने अपनी काया तकको निचोड डाला, लेकिन फल क्या हुआ? इसमें कोई शक नहीं, करोड़ों अछूत अपने सिर हृदयसे आपके कदमोंमें झुकाते हैं। इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि करोड़ों अछूत आपके दुश्मन बन गये हैं। आपसे उन्हें कोई आशा नहीं है। अछूत इस प्रकार

दो हिस्सोंमें कैसे बंटे ? क्या उनकी माँगें और दुःख एक प्रकारके नहीं हैं ? आपका आदेश था कि सदियोंसे सताये जाते इन मजलूमोंको प्रेमभरी निगाहसे उठाकर, भाई समझकर, छातीसे लगा लो। इस आदेशका कैसा पालन हुआ ? पिछले चुनावमें कितने जालिमाना तरीकेसे एक अछूत पीटा गया, क्या आपका ध्यान किसीने इस तरफ खींचा ? २७ वर्षसे आप इस सवालके हलमें लगे हैं, लेकिन अभी तक इसका हल नहीं मिला। क्या इससे आपको सन्तोष है ? क्या इस सवालका यही हल था, जो आपको सूझा ? इस सवालके हल ढूँढ़नेमें आपके विचारमें क्या कोई फेर-फार नहीं आया ? क्या इसके हलकी कोशिश आप उसी तरह करते रहेंगे, जैसे कि आजतक करते आ रहे हैं ?

चरखा और खद्दर—गुलामीके कारण देशका शोषण बढ़ा, देश गरीब बना, हर प्रकारकी उत्पादक शक्ति घटी। मनुष्य और पशु दोनों-की शक्तिमें कमी आयी। इसका असर यहाँ तक पड़ा कि धरतीमाताकी भी शक्ति क्षीण हो गयी। देशकी इस प्रकारकी दर्दनाक हालत देखकर आपने एक ही इलाज बताया। चरखा कातो, खद्दर पहिनो। हजारोंने आपकी इस आवाजको सुना-माना। जिन्होंने कभी एक तिनकेके दो नहीं किये, जो रेशम तथा मखमलमें लोटते रहे, वह भी चरखा कातकर खद्दर पहिनने लगे। देश भरके लीडरोंने आपकी आवाज मान ली। लाखों भावुक लोगोंने चरखे खरीदे, क्योंकि आपने देशको यकीन दिलाया था। चरखे और खद्दरके जोरसे हम एक वर्षके अन्दर ही स्वराज ले लेंगे—आपकी इस बातने लोगोंपर जादूका-सा असर किया। बड़े-बड़े माननीय स्त्री-पुरुषोंने अपने कन्धोंपर खद्दरकी गठरियाँ लादकर राष्ट्रीय सप्ताह और आपके जन्म दिनपर बेचनेके लिए फेरी निकाली। तरह-तरहकी युक्तियोंसे खरीदारोंके मनको लुभाकर हर साल लाखोंका खद्दर बेचा। जो खद्दर पहिनें और दूसरोंको पहिननेके लिए प्रेरित करें उन्हें आप देशप्रेमी समझते हैं। यह बड़ी कुरबानी समझी जाती है।

आर्थिक दृष्टिसे जब आप इस तरफ ध्यान देंगे और उसी दृष्टिसे

तोलेंगे, तो आपको ज्ञात होगा कि इतने बड़े प्रयासका फल क्या मिला? १९४२ से पहिले चरखासंघके द्वारा हर साल एक करोडसे ज्यादा मोलकी खादी फरोख्त नहीं हुई। यह है, बीस बरसकी मेहनतका नतीजा। चरखे और खद्दरकी आपने एक फिलासफी रची। उसके प्रचारसे आपका केवल यही मतलब था कि देशवासियोंके समयका सुन्दर उपयोग हो? आप तो इसके द्वारा समाजका सारा ढाँचा बदल देना चाहते हैं। इस कार्यकी सिद्धिके लिए आपने अपनी पूरी शक्ति लगायी। पर परिणाम क्या हुआ? क्या हिन्दके पढ़े-लिखे समाजने इसे अपनाया? आपकी जय बोलनेवाले मजदूरों, दूकानदारों, स्कूलों और कालेजोंके लड़कोंने क्या इसे स्वीकार किया? जिन लक्ष्मीपुत्रोंने चरखेके प्रचारके लिए लाखोंकी थैलियाँ आपके कदमोंमें चढ़ायीं, क्या उन्होंने कपड़ेके कारखानोंको जोरसे चलानेके लिए लाखों नर-नारियोंकी सहायता और करोड़ों रूपयोंके बलसे मिलोंको चलानेकी कोशिश नहीं की? कामयाबीने किसका साथ दिया? जिस तरफ लाखों कुशल, चतुर व्यापारी असंख्य दलालोंके साथ काममें लगे हों और जिनके लाखों लक्ष्मीपुत्र सहायक हों, उसने उनका साथ दिया। भावनाके वशीभूत हो कुछ भावुक स्त्री-पुरुषोंकी मददसे हजारों और लाखों रुपयोंके बलसे जो सफलता प्राप्त करना चाहते हों और जिनके पोषक वह हों, जिन्हें सूखी रोटीका टुकड़ा भी नहीं मिलता, उन्हें कामयाबी नहीं मिली।

अंग्रेजी हुकूमतने चालबाजियोंसे और अनेक प्रकारके फरेबोंसे हिन्दमें कपड़ेके कारखानोंके बढ़नेका काम बड़ी कठोरतासे रोका, फिर भी नतीजा क्या हुआ? क्या कारखाने पहलेसे ज्यादा नहीं हुए? क्या उनकी पैदावार पहिलेसे ज्यादा नहीं बढ़ी? क्या चरखे और खद्दरमें इसी तरहसे वृद्धि हुई?

आपके भक्त-जन सत्ताधीश बने हैं, वह हुकूमतके बलको इस तरह लगाकर चरखे और खद्दरका प्रचार बढ़ा सकते हैं, और बढ़ायेंगे भी, इसमें शक नहीं, लेकिन, वह तो हुकूमतके बलके उपयोगका नतीजा

होगा। हुकूमतके फरमानके सामने सिर झुकाकर लोग घर-घर चरखा चलाने लगें, इसका अर्थ तो यह हर्गिज नहीं होगा कि लोगोंने चरखे और खद्दरकी आपकी फिलासफी स्वीकार कर ली। मद्रास प्रान्तमें आपके एक भक्तने हुकूमतके बलसे मिल उद्योगको रोककर चरखे और खद्दरको बढ़ानेकी कोशिश की। वह अपने मनोरथमें कामयाब होगा या नहीं, यह तो समय बतलायेगा। एक बात तो जरूर होगी। मद्रास प्रान्तमें जितने भी कपड़ेके कारखाने हैं, वह जरूर ज्यादासे ज्यादा नफा कमायेंगे, अपने कारखानोंकी पैदावारको ज्यादासे ज्यादा बढ़ाकर बाजारपर कब्जा जमायेंगे पर देशकी भूखी-नंगी जनता जिन्दा रहनेके लिए हाथ-पैर जरूर मारेगी। ऐसी हालतमें जिस किसीके हाथ चरखा लग गया, वह उसे कभी नहीं छोड़ेगा। हिन्दके लाखों नर-नारी जो आज चरखा कातनेमें और जुलाहे कपड़ा बुननेमें लगे हैं, उन्हें अगर कोई यह उम्मेद दिला दे कि तुम्हें अच्छी हालतमें इससे अच्छा और ज्यादा मजदूरी दिलानेवाला काम मिल सकता है, तो क्या वे चरखों और खड्डियोंको लेकर बैठे रहेंगे ?

खद्दर पहिनना आज लक्ष्मीपुत्रोंके लिए एक फैशन और हुकूमतकी वफादारीकी वर्दी बन गया है। क्या आपने बम्बई शहरके खद्दर भंडारोंको कभी देखा है ? कैसी सुन्दर रीतिसे रंग-बिरंगा बनाकर खद्दरको सजाकर रक्खा जाता है, और खद्दर बेचनेवाले सुशील और चतुर स्त्री-पुरुषोंको कितनेपर रक्खा गया है। चरखा कातने और कपड़ा बुननेका कार्य करनेवालोंको मुश्किलसे एक रुपया रोज मिलता है और ५–६ घंटे बेचनेवालोंको कम-से-कम ४–५ रुपया रोज दिया जाता है। देख-रेख करनेवालोंको ३०० रुपया मासिक तनख्वाह और हिसाबकी पड़ताल करनेवालेको ५०० रुपया महीना मिलता है। किस प्रकारके लोग उन खद्दर भंडारोंमें आकर उसे खरीदते हैं, सूत कहाँसे लाते हैं, इसका पता लगाने पर मालूम होगा कि खद्दरका प्रचार किनमें और कैसे हो रहा है।

क्या २७ वर्षोंमें आप यह नहीं देख पाये कि आपके चरखे और

खद्दरकी फिलासफीको हिन्दकी जनताने नहीं अपनाया ? क्या इसमें लोगोंका कसूर है ? क्या आप अपने उसी हठपर कायम हैं कि चरखे और खद्दरके अपनानेके सिवाय हिन्दका कल्याण नहीं है ? क्या आप अबतक यही मानते हैं कि जो लक्ष्मीपुत्र आपको चरखे और खद्दरके प्रचारके लिए लाखोंकी सहायता करते हैं, वह इसीलिए कि चरखे और खद्दरका प्रचार चाहते हैं, इसमें क्या उनका और कोई उद्देश्य नहीं है ? अगर वह कांग्रेसकी हकूमतके बलपर चरखे और खद्दरका प्रचार करना चाहें, तो क्या आप उसे पसन्द करेंगे ? अगर बेकार और नंगे लोग चरखा कातने और खद्दर पहिननेके लिए मजबूर हों, जिससे चरखोंकी संख्या और खद्दरकी पैदावार बढ़ जाये, तो इसका यह अर्थ नहीं कि लोगोंने आपकी फिलासफी मान ली।

गायको माता समझने व कहनेवाले हिन्दुओंने ज्यादा दामके लोभमें लाखों गायों और बछड़ोंको अंग्रेजोंके कसाईखानोंमें बेचा है, अंग्रेजी हुकूमतने किसीके गाय-बैलको कोई जबर्दस्ती नहीं छीना। अगर बैलोंकी जगह मशीनोंने न ली, तो जमीनकी पैदावार पर इसका कितना भयंकर असर पड़ेगा ? क्या आपने कभी इस बातपर ध्यान दिया ? जनताका खून चूसनेवाली हुकूमत देशमें शान्तिके साथ राज करती रहे, तो क्या आप चरखे और खद्दरके प्रचारसे लोगोंको गरीबीसे बचा सकेंगे ?

(१) बदीके अवतार अंग्रेजी सरकारसे सहयोग नहीं करना,

(२) सत्य और अहिंसाके बलसे दुनियासे बदीकी जड़ मिटा देना, हाकिम और महकूम (शासित) का भेद मिटाकर मानवताका पाठ पढ़ाना,

(३) धर्म और जातिके नामपर मनुष्य-मनुष्यके बीच जो बैर-जहर भरकर एकको दूसरेका दुश्मन बनाया जाता है—उसकी जगह प्रेम-भाव पैदा कर मानवताके नाते एक-दूसरेको भाई-भाईके रूपमें मिला देना,

(४) तीन सदियोंसे जो अछूत अनेक प्रकारके सामाजिक जुल्मका शिकार बन रहे हैं, उन्हें प्रेम भरी निगाहसे उठाकर छातीसे लगा लेना,

(५) चरखा-खद्दरके प्रचारके बलसे अपने समाजके सारे ढाँचेको बदल देना—इन सब बातोंमेंसे वह कौनसी बात है, जिसमें आपको कामयाबी हुई ?

देशवासियोंने आपको "महात्मा"की पदवी दे बड़ी भाव-भक्तिसे पूजा की, लाखों करोड़ोंने आपके चरणोंकी रज लेकर अपने सिरपर चढ़ाया, आपकी मूर्ति बनाकर खड़ी की, लेकिन आज हिन्दकी चालीस करोड़ जनतामेंसे कितने निकलेंगे, जिन्होंने अपने जीवनको आपके आदेशानुसार ढालनेकी कोशिश की ? हर साल करोड़ों नर-नारी प्रार्थना करते हैं कि आप सदा जीवित रहें, इसमें उनका क्या स्वार्थ है ? क्या वे इसलिए प्रार्थना करते हैं कि आप एक भले आदमी हैं या उनकी केवल यही इच्छा है कि आप जैसे एक सन्तकी पूजा करनी चाहिये ? क्या वे हर साल आपके बताये मार्गपर चलनेका इरादा जाहिर करते हैं ? क्या हिन्दकी भोली-भाली जनतासे आपने कभी पूछा कि तुम किस बातके लिए प्रार्थना करते हो कि मैं सदा जीवित रहूँ ? क्या इसलिये कि जिस हकूमतको आप बदीका अवतार समझ कर देशसे बाहर निकालना चाहते हैं, आपकी इच्छानुसार कार्य न करके उसके साथ सहकार करनेके लिए आपको मजबूर किया जाये ? जो मार्ग आजतक आप दिखलाते आये, उनमेंसे किसीपर भी लोगोंने चलना नहीं चाहा, लेकिन फिर भी वह चाहते हैं कि आप सदा उनके बीच रहें, तो जो मान वह आपके लिए दिखलाते हैं, उस मानको सरल भावसे स्वीकार कर क्या आप अपने आपको धोखा नहीं देते ? ऐसा करनेसे आप और उनका क्या लाभ है ?

क्या आपका बतलाया मार्ग कठिन है। क्या लोग उसपर चलना नहीं चाहते या चल नहीं सकते ? क्रोध नहीं करना, अपने ऊपर अंकुश

रखना, प्रेम-भावसे रहना—आप इस प्रकारकी तपस्यामें लगभग चालीस सालसे लगे हैं, स्वयं आपने इसके बारेमें कितनी सफलता प्राप्त की ? आप फरमाते हैं कि २ अक्तूबर १९४६ के दिन आपने अपने ऊपरसे काबू खोया, क्योंकि एक ऐसी चीज आपके सामने आयी जिसे आप पसन्द नहीं कर सके ! आपका चौबीस घण्टेका जीवन एक खास प्रकारका नियमबद्ध जीवन रहता है। कभी-कभी ही ऐसा होता है, जब आपको ऐसी चीज देखनी पड़ती है जिसे आप देखना सुनना नहीं चाहते और जब कभी वह आ जाती है, तो आप काबू खो बैठते हैं। तब उन बेचारोंका क्या हाल होगा, जिनकी आँखोंके सामने ऐसी हजारों चीजें आती रहती हैं, और अप्रिय बातें सुननी पड़ती हैं ? अपनी इस प्रकारकी जिन्दगीका उनके ज्ञानतन्तुओंपर क्या असर पड़ता होगा ? आप किस आधारपर उनसे यह आशा रखते हैं कि वह सत्य और अहिंसाके नियमोंका पालन कर सकेंगे। अक्टूबर १९४६ के रोज आपने अपने ऊपरसे काबू खोकर लोगोंको भला-बुरा कहा। आप महात्मा हैं, आप भूल नहीं कर सकते, लोग यह समझकर चुप रह गये और आपकी सब बातोंको पी गये। क्रोध एक प्रकारकी बीमारी है जो आपको लग चुकी थी। वह बाबू राजेन्द्रप्रसादको नहीं लगी, अगर लग जाती और वह भी बेकाबू हो जाते, तो नतीजा क्या होता ? लेकिन राजेन्द्र बाबू सब पी गये और किस्सा वहीं खतम हो गया। पर साधारण समाज आप जैसे महात्मा और राजेन्द्र बाबू जैसे भक्तोंसे नहीं बना है। समाज-में तो लोग गुस्सेका जवाब गुस्सेसे देते हैं, जिसके भयंकर परिणामोंको उन्हें भुगतना पड़ता है।

देशकी राजनीतिक अवस्था

आपके बताये मार्गपर चलकर देश न आगे बढ़ा और न दूसरे मार्गपर आपने लोगोंको चलने दिया; लेकिन देश आगे बढ़ा जरूर है, देशको कुछ मिला है। वह किसके बलसे ? हमने अपने बलसे तो कुछ नहीं लिया यह बात साफ है। तो क्या अंग्रेजोंने सद्भावनासे या

स्वार्थवश होकर कुछ दिया ? उन्होंने अपनी जड़को उखाड़ने या मजबूत करनेके लिए दिया ? पंडित नेहरू ने अपने एक भाषणमें फरमाया है कि हिन्दमें अंग्रेजोंने जो राजविधान बनाया है, वह जनताका पोषण नहीं बल्कि शोषण करनेके लिए ही। अंग्रेजी हुकूमतने अपने राजविधानके आधीन रखकर आपको राजविधानका एक खोखला ढाँचा दिया। उसी ढाँचेके अन्दर अपनेको रखकर आजकल आप देशका भावी निर्माण करना चाहते हैं, क्या इसमें आपको कामयाबी होगी ?

प्रान्तों और केन्द्रमें भिन्न-भिन्न दलोंके साथ मुकाबला करके चुनावमें जीत हासिल करके जो लोग आये हैं, उनके बारेमें आपको यह तो शायद मालूम होगा ही कि किस प्रकारकी नीच चालोंको काममें लाकर उन्होंने चुनावमें कामयाबी हासिल की, और कितना धन खर्च किया। अनेक कपटभरी चालोंसे और हजारों रुपयोंके बलपर उन्होंने चुनाव जीते। इस प्रकार उन आदमियोंका चुनाव हुआ है, जिन्हें हिन्दका विधान बनाना है। जिन्होंने जनताका खून चूसकर जमा किए धनको चुनाव जीतनेमें खर्च किया, जिनके दिलोंमें मेहनतकश जनता लिए कुछ भी दर्द नहीं, क्या ऐसे आदमियोंसे आप यह आशा कर सकते हैं, कि वे ऐसे कायदे-कानून बनायेंगे, जिनसे पीडित जनताको लाभ होगा ?

दुनियाकी तमाम सरमायादारी (पूँजीवादी) ताकतें रूसको मिटाना चाहती थीं, पर वह मिटा न सकीं। अब वह फिर जोरोंसे उसी कोशिशमें लगी हैं। हिन्दके राजा-महाराजा, जागीरदार-जमींदार सरमायादारों और सरमायादार हुकूमतोंका साथ देनेपर तुले हुए हैं, देशके माननीय लीडर भी उसी कोशिशमें लगे हैं। खूबी तो यह है कि पट्टाभि जैसे आपके भक्त-जन भी फखरके साथ उसमें शामिल हैं। ···वह चाहते हैं कि अंग्रेजोंकी पूरी फौजी ताकत हिन्दमें उनके भलेके लिए बनी रहे। अंग्रेज अपनी फौजोंको ज्यादा-ज्यादा मजबूत बनाना चाहते हैं। अगर अंग्रेजोंकी फौजी ताकत बढ़ती और मजबूत

होती गयी, तो क्या इससे हमारी गुलामीकी बेड़ियाँ और मजबूत बनेंगी, या टूटेंगी ? हिन्दकी रक्षाके लिए रूसके मुकाबलेमें देश-वासियोंको कौनसा मार्ग अपनाना होगा, हिंसाका या अहिंसाका ? और उसमें आपका क्या स्थान होगा ?

आपके भक्त देशके लीडरोंपर जो इल्जाम अंग्रेज अफसर लगाया करते थे और जिस तरह उन्हें सजाएँ दिया करते थे, क्या आज सत्ता-धारी कांग्रेस लीडर उसी किस्मके इल्जाम लगाकर कम्युनिस्टोंको जेलोंमें नहीं भेजते हैं ? जालिम (अंग्रेज) हुकूमतके सामने जनताके मुजाहिरे (प्रदर्शन) करके गोलीका शिकार बनाया करते थे, आज क्या किसानों और मजदूरोंके मुजाहिरोंको सख्त अपराध कह गोलीका निशाना नहीं बना रहे हैं ? क्या यह सब कुछ आपके जीतेजी आपकी आँखोंके सामने नहीं हो रहा है ? आपके भक्तजनोंके हुकुमसे जब हिन्दके नंगोंको गोलीका निशान बनाया जाता है, तब आपका मन क्या कहता है ? क्या आपने इसके खिलाफ कभी अपनी आवाज बुलन्द की ?

पट्टाभि सीतारामैयाने अपने एक बयानमें फरमाया है कि अंग्रेज तो हमारे कहनेसे हिन्दको छोड़कर चले जानेवाले हैं। अब अगर हमें किसीसे लड़ना है, तो वह हिन्दके कम्युनिस्टों और इनकी हुकूमतसे। इसके लिए हर हिन्दीको सिपाही और हर घरको किला बनाना पड़ेगा, क्या आपका भी यही मत है ? पट्टाभी बड़े देशभक्तोंमें गिने जाते हैं, बड़े बुद्धिमान और तजर्बेकार हैं, आप हमेशा उनको सलाह-मशविराके लिए बुलाया करते हैं। अगर आपका मत उनसे नहीं मिलता, तो आपने क्यों कभी मुनासिब नहीं समझा, कि इस किसमके बयानोंके बारेमें कुछ अपनी राय प्रकट करते ? क्या हिन्द भी उसी मार्गसे जायेगा, जिससे चीन जा रहा है ? क्या आप जैसे महान योग्य पुरुष उसे उस मार्ग पर जानेसे रोक नहीं सकेंगे ?

आज तक आप देशवासियोंको ऐसा मार्ग बतलाते आये हैं, जिस-पर वे न जा सके, न जाना चाहे और न ही जानेकी शक्ति रखते हैं,

इतने लम्बे ऐसे तजर्वेके बाद भी आपने अपना ढंग नहीं बदला। आप बंगालकी पीड़ित बहिनोंको राय देते हैं कि विष खा लो। अगर हमारे देशके भाई-बहनोंमें यह शक्ति होती कि वह अपनी लाज बचानेके लिए विष खा लें, तो वह गुलाम ही क्यों होते? क्या आपने अपने जीवनके लम्बे तजर्वेमें इस बातको नहीं देखा कि जीवित रहनेका मोह बहुत भारी मोह है, हरेक व्यक्ति किसी न किसी लालसाकी पूर्तिके लिए जीवित रहना चाहता है।

महात्माजी, आप बुरा न मानें, जो कुछ मैंने लिखा, उसमें मैंने आपके जीवनका पहलू आपके सामने रखा है, जिसे आप शायद न देख सकते हों! मैं आपका भक्त नहीं हूँ, पर मेरे मनमें आपके लिए भारी मान है। अगर ऐसा न होता, तो इतना कागज काला करके आपके सामने आपकी सेवामें पेश न करता।

मैं अपने ढंगसे देशकी सेवामें लगा हूँ। मजदूरों और गरीब किसानों के जीवनको सुखी बनाना मैंने जिन्दगीका लक्ष्य बनाया है। आजतक मेरे दिलमें यह ख्याल रहा करता था कि शायद सेवा करते-करते मुझे अंग्रेजी हुकूमतकी गोलीका निशान बनना पड़े या उनके जेलोंमें पड़े रहकर जीवन बिताना पड़े। आज ढंग बदला है, मुझे वही गोली और जेल नजर आता है। लेकिन उनके हाथोंसे जिन्हें मैं किसी समय अपना साथी समझता था, जिनकी तरफ सम्मानके भावसे देखा करता था और जीवनमें उच्च दिशा प्राप्त करनेके लिए प्रेरणा लिया करता था।

खैर, जमाना रंग बदलता है, और लोग उसके साथ ही अपना रंग भी बदल लेते हैं। मैं अपने ऊपर आजतक काबू जमाकर बैठा हूँ। मैं हिन्दके मजदूरोंका हामी और समर्थक बनकर खड़ा रहूँगा। जालिमकी चमड़ीका रंग और उसका नाम बदल जानेके साथ मेरी जिन्दगीका लक्ष्य नहीं बदल सकता।

यहाँ जो कुछ मैंने आपको लिखा है, उसका मतलब केवल यही है कि आपकी जैसी महान् शक्तिका देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग हो सके। मैं तो देशका एक नाचीज (तुच्छ) छोटा सा सिपाही हूँ। छोटा होकर भी यह इच्छा तो है कि भूलका शिकार बनकर मैं कहीं देशका बुरा तो नहीं कर रहा हूँ। यदि यह मालूम हो जाये तो क्या ही अच्छा?

—पृथ्वीसिंह ३०-१०-४६

अध्याय १९

सौराष्ट्र तथा पंजाबमें

१९४६ के अन्तमें सरदार गुजरातमें थे। इसी समय नडियादमें एडवर्ड मेमोरियल बोर्डिङ्गहाऊसमें गुजरातके जागीरदारोंने अपनी सभा की। सरदारको भी उन्होंने बोलनेके लिए कहा। सरदारने कहा—यह 'प्रताप' नहीं 'एडवर्ड' बोर्डिङ्ग है, जहाँ होती आजकी यह सभा बतलाती है कि क्षत्रियोंका कितना पतन हो गया है। आप नारा लगा रहे हैं—"जय सोमनाथ !" यह साधुओं, महात्माओं, ब्राह्मणों और पुरोहितोंका नारा भले ही हो सकता है, पर क्षत्रियोंका हरगिज नहीं। वह तो हमेशा भूमिका नारा लगाते रहे, जन्मभूमिका। सेनानी सुभाषने "जय हिन्द"का नारा लगाया, जिसे जवाहरने स्वीकार किया, तुम भी उसी नारेको अपनाओ। आज तुम तलवार लगा केसरिया बना बाँधे हुए क्षत्रियोंके राज्यका सपना देख रहे हो। क्या अंग्रेजोंके राज्यमें ऐसा करनेकी हिम्मत तुम्हें हो सकती थी ?

१९४७ के मार्च महीनेमें सौराष्ट्रके गरासदारों (राजपूत जागीरदारों) का एक सम्मेलन सिहोर (भावनगर) में हो रहा था। इसी साल १५ अगस्तको अंग्रेज भारत छोड़कर जानेवाले थे। उन्होंने इस आशासे भारतके सभी छोटे-बड़े राजाओंको परम स्वतन्त्र घोषित कर दिया था कि सभी नहीं तो कमसे कम आधे दर्जन राजा-महाराजा अवश्य अपना स्वतन्त्र राज्य कायम कर लेंगे। राजाओंके दिमागमें भी इसका असर हुआ था। साधारण प्रजा उनका साथ नहीं दे सकती थी, परन्तु गरासदारोंसे उनको उम्मीद थी। छोटे-छोटे राजा और सभी जागीरदार अपनेको एकताबद्ध करके सौराष्ट्रमें क्षत्रिय राज्य संघटित

करनेकी कोशिश कर रहे थे। सरदारको भी उस सम्मेलनमें कुछ कहनेके लिए कहा गया था। उन्होंने साफ-साफ कहा:— जब देशको मुक्त करानेका समय था, तब तुम्हारा क्षत्रियत्व सोया हुआ था, जब देश भक्तोंने अंग्रेजों और तुम्हारे राजाओंके हाथों बहुत सी सासतें सहकर देशको आजाद किया, तो अब तुम अपना क्षत्रियत्व दिखलाना चाहते हो। याद रखो जिस जामनगर या दूसरे राजाओंको तुम अपना नेता मानते हो, वह सबसे पहिले वल्लभभाईकी गोदमें जाकर बैठेंगे। वह अंग्रेजोंकी कृपासे अबतक जीते रहे, अब वह कांग्रेसका कृपापात्र बनना चाहेंगे। कांग्रेस जनताके बलपर यह दिन दिखलानेमें सफल हुई। भूखी जनता बातोंसे नहीं मानती। कांग्रेस तुम्हारी जागीरें छीनकर किसानोंमें बाँट देगी। तुम्हारा कल्याण इसीमें है कि तुम खुद अपनी जागीरोंको किसानोंमें बाँट दो, इससे किसानोंके साथ तुम्हारा अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा, और तुम्हें उनके कोपका भाजन नहीं बनना पड़ेगा।

पंजाबमें आने और रहनेकी स्वतन्त्रता हो जानेपर सरदारको अपनी पत्नी श्रीमती प्रभावती और लड़के अजीतको लेकर अपनी जन्मभूमिमें चले आये थे। अम्बालामें लड़कियोंका इंटर कालेज था, जिसमें प्रभावती बहन प्रिंसिपल नियुक्त हुईं। उन्होंने स्कूलका इतना सुन्दर रूपसे संचालन किया, कि वह बहुत आगे बढ़ चला। सभी उनके कामोंसे प्रसन्न थे। भाई-बन्दोंसे जमीन लेकर सरदारने अपना नाम वोटर सूची में लिखवा लिया। अब वह पंजाब एसेम्बलीकी मेम्बरीके लिए खड़े हुये, जेल और यातनाओंमें तपे क्रान्तिकारी पितामह बाबा रड़सिंह भी उम्मीदवार थे। यह निश्चय ही था, कि इन दोनों महात्यागियोंके सामने कांग्रेसका कोई उम्मीदवार नहीं जीत सकता था। इसीलिये चुनावके नियमोंमें खास तौरसे संशोधन कर दिया गया, और यह शर्त लगा दी थी, कि जो १९४५ में वोटर नहीं थे, वह उम्मीदवार नहीं हो सकते। बाबा रड़सिंहके साथ सरदार पृथ्वीसिंहका उम्मीदवारीका पत्र

खारिज हो गया खारिज करते समय डिप्टी कमीश्नरने कहा—यह सरासर अन्याय है।

कांग्रेसवाले यह भी नहीं चाहते थे कि सरदार अम्बालेमें जम जायँ। उन्होंने विद्यालयकी कमेटीपर जोर दिया और प्रभावतीजीको अपने पदसे हटनेके लिए मजबूर होना पड़ा। वह सौराष्ट्रके एक हाई-स्कूलमें प्रधानाध्यापिका बनकर चली गयीं। सरदारको भी अब फिर सौराष्ट्रकी ओर मुँह करना पड़ा। भावनगरसे बारह मील दूर सरतानपुरमें उन्होंने जमीन ली। सोचा कि यहीं किसानी जीवन बिताते गाँवके लोगोंकी सेवा करूँगा।

१५ अगस्तको अंग्रेजोंके भारत छोड़नेके उपलक्ष्यमें देशमें सभी जगह बड़ी-बड़ी सभाएँ हुईं, व्याख्यान हुए। सरदारने उस दिनकी सभामें कहा था—यदि १९५० ई० तक एक मनकी जगह दो मन हम अनाज पैदा कर सकें; तभी हमारा देश स्वतन्त्र समझा जाना चाहिये।

सरदारने ग्रामोंके उत्थानके लिए योजना बनायी, जगह-जगह पुस्तकालय कायम करने, प्रौढ़ोंकी शिक्षाका इन्तजाम करनेसे ही संतोष न कर वह गाँवमें निशुल्क चिकित्साका प्रबंध करने लगे। एक प्रख्यात डाक्टर जी. डी. बोराने इस कामको अपने हाथमें लिया। उन्होंने अपना काम ऐसे समय आरंभ किया, जब कि सौराष्ट्रमें पाँच-छ साल (१९४७-५३) का दुष्काल पड़ गया। प्राणी और पशु अन्न और घासके लिए भूखों मरने लगे। अब केवल निःशुल्क चिकित्सा या शिक्षासे ही काम नहीं चल सकता था। सौराष्ट्र सरकार यह माननेके लिए तैयार नहीं थी कि अकाल दरअसल पड़ा है, क्योंकि वैसा करनेपर सहायता देना जरूरी होता। सरदारने कितने ही गाँवोंमें घूम-घूमकर लोगोंकी आर्थिक अवस्थाके आँकड़े लिये और उनकी अवस्थाकी ओर सरकारका ध्यान आकर्षित किया। कांग्रेसियोंने अपने आदमियोंको भेजकर झूठी जाँच करायी, और कह दिया कि कुछ नहीं है। पर, वह एक सालका

अकाल नहीं था। अन्तमें झखमारकर सरकारको तकावी बाँटनी पड़ी, जिसका रुपया पीछे बहुत बुरी तरहसे वसूल किया गया।

डाक्टर बोरा एक आदर्श चिकित्सक थे, जो सेवाके लोभसे ही नगरका सुखी जीवन छोड़कर गाँवोंमें गये थे। सरदारको इसी समय टाइफाइडका आक्रमण हो गया। मौतसे तो बच गये, लेकिन बहुत दुर्बल हो गये थे, और स्वास्थ्य सुधारके लिए उन्हें कुल्लू जाना पड़ा। इसी समय सौराष्ट्र सरकारने सरदार और डाक्टरको खतरनाक समझकर अपने प्रदेशसे निर्वासित कर दिया। इतनी मेहनतसे शुरू किया काम ठप हो गया। जो खेती और बगीचा लगाया था, वह दुष्कालका बलि न हो जाता, यदि सरदार वहाँ रहे होते। कुल्लूमें रहते समय ही ९ मई १९४९को सरतानपुरमें उन्हें लड़की (प्रज्ञा) पैदा हुई। जेलमें गये कांग्रेसी अंग्रेजी सरकारसे परोलपर छुट्टी ले मामूली कामके लिए भी घर आ सकते थे, लेकिन सौराष्ट्र सरकारने सरदारको किसी शर्तपर भी जन्म दिवसपर भावनगर जानेकी छुट्टी देनेसे इनकार कर दिया।

सरदार बम्बईमें रहकर काम करते रहे। सौराष्ट्र जानेकी कोई आशा न रहनेपर प्रभावती बहनको १९५० में बम्बई बुलाना पड़ा। ट्रेनिंग कालेजमें बी. टी. करके व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वह अंधेरी गर्ल्स हाई स्कूलमें गयीं, उनके कामोंको देखकर प्रबन्धकारिणी कमेटीने वहीं उन्हें रह जानेका आग्रह किया, और अब वह अपने लड़के और लड़कीको लिये वहीं काम करती हैं।

सरदारको जबतक सौराष्ट्र लौटनेकी आज्ञा नहीं मिली, तब तक वह उसे अपना कार्य-क्षेत्र नहीं बना सकते थे। १९५२ का साधारण चुनाव आया। कांग्रेसी सरकारोंको सारे देशमें ऐसे अन्यायपूर्ण आदेशों को ढीला करना पड़ा। सरदार कम्यूनिस्ट पार्टीकी ओरसे उम्मीदवार खड़े हुए थे, फिर सौराष्ट्र सरकार उनको बाहर रखनेकी जिद कैसे कर सकती थी? सौराष्ट्र (काठियावाड़) गांधीजीकी जन्मभूमि है, साथ ही वहाँ सैकड़ों निरंकुश राजाओं और ठाकुरोंका शासन चलता रहा था।

यही स्थान है, जहाँ राजकोटके राजाने गांधीजीके उपवासको विफल कर दिया। कई कारणोंसे सौराष्ट्र कम्यूनिस्ट आन्दोलनसे अभी तक अछूता था। पार्टीने सरदार जैसे आदमीको पाकर पश्चिम भावनगर शहरसे उन्हें विधान-सभाके लिए खड़ा किया। बड़े जोर-शोरसे प्रचार होने लगा। लोग पूरा यकीन रखते थे कि सरदारका जीतना निश्चित है। जहाँ जीत-हारकी बात हो वहाँ सटोरिये सट्टा खेलनेसे कैसे बाज आ सकते हैं? सरदारकी जीतके लिए साठ हजारका सट्टा हुआ था। कांग्रेसने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। उसके बड़े-बड़े नेता वहाँ कांग्रेस उम्मीदवारको जितानेके लिए घूमे थे। लेकिन अन्तमें परिणाम देखकर लोग दंग हो गये। कांग्रेस उम्मीदवारको ८ हजार और सरदारको चार हजार वोट मिले। लोग अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं कर सकते थे। यह बिलकुल अनहोनी बात थी कि स्वामीराव भावनगरमें हार जायँ। हिन्दू सभा और सोशलिस्ट पार्टीके उम्मीदवारोंको चार-चारसौ वोट मिलना ठीक था, पर सरदारके मुकाबलेमें ओझाको आठ हजार वोट कैसे मिले? लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। उनके कोपका यह फल हुआ कि तबसे आजतक भावनगरमें कांग्रेसी अपनी खुली सभा नहीं कर सके। पार्टीके प्रति सौराष्ट्रके मध्यवर्गमें बड़ा आदर हो गया और वहाँ पार्टीका काम होने लगा।

अध्याय १०

चीन-यात्रा (१९५२)

भावनगरके चुनावमें खड़े होनेके पहिले १९५० से ही सरदारने शान्ति-आन्दोलनमें काम करना शुरू किया, जिसके सम्बन्धमें उन्होंने गुजरात, सौराष्ट्र, राजपूताना, पंजाब और उत्तरप्रदेशके भिन्न-भिन्न स्थानोंका दौरा किया। जालन्धरमें अखिल भारतीय शान्ति-कांग्रेस हुई, जिसमें सरदार भी गये और कांग्रेसने उन्हें पेकिंगमें होनेवाली एशियाई और प्रशान्त क्षेत्रकी शान्ति-कांग्रेसमें अपना प्रतिनिधि चुना। प्रतिनिधि चुनना जितना आसान था, उतना अभी देशसे बाहर जाना आसान नहीं था। छिपकर तो वह पहिले भी बड़े चमत्कारिक रूपसे विदेश चले गये थे, लेकिन अब वह छिपके नहीं जाना चाहते थे। जब पासपोर्ट मिलनेकी आशा नहीं रह गयी—और सौराष्ट्र सरकार भला उन्हें पासपोर्ट दे कैसे सकती थी—सरदार दिल्लीमें जाकर नेहरूजीसे मिले।

"इतने दिनों क्यों नहीं मिले ?"—नेहरूने पूछा—वह सरदार और गान्धीजीके घनिष्ट सम्बन्धको जानते थे।

सरदारने कहा—"अबतक हमारे क्षेत्र अलग-अलग थे। अब शान्ति-आन्दोलनने हम दोनोंके क्षेत्रको एक कर दिया, इसलिये मैं आपसे मिलने आया था।"

"पासपोर्ट मिलनेमें क्या दिक्कत है, सभीको मिल रहा है, आपको भी मिल जायगा। बाकायदा दर्ख्वास्त दें। यदि न मिले तो मैं देखूँगा।"

सौराष्ट्र सरकारके पास सरदारने पासपोर्टकी दर्ख्वास्त दी। वह

सरकार पासपोर्ट देनेसे साफ इन्कार भी नहीं कर रही थी, क्योंकि वह जानती थी कि सरदार ऊपर पहुँच जायँगे। दो महीनेतक जब कोई जवाब नहीं मिला और साफ मालूम होने लगा कि सौराष्ट्र सरकार चाहती है कि चीन जानेका वक्त बीत जाय, तब सरदार फिर दिल्लीमें नेहरूसे मिले। नेहरूने अपने अफसरसे कहा—"सौराष्ट्र सरकारको तार देकर पूछो, यदि वह पासपोर्ट नहीं दे रही है, तो यहाँसे दे दो। विदेश विभागने जब तार दिया, तब सौराष्ट्र सरकारको अक्ल आयी और उसने सूचना दी कि पासपोर्ट रजिस्ट्री करके भेजा जा रहा है। जानेसे दो दिन पहिले पासपोर्ट मिला और सरदार दिल्लीसे रेल द्वारा कलकत्ता पहुँचे।

यदि समय अधिक रहता तो कलकत्तासे वह जहाज द्वारा हांगकांग जा सकते थे, जिसमें खर्च बहुत कम पड़ता। सरदार जैसे देश-सेवकोंके लिए पैसेका भार भी अधिक सह्य नहीं हो सकता और अब कलकत्तासे हांगकांग यदि हवाई जहाजसे नहीं जाते, तो प्रतिनिधि-मण्डलके साथ समय पर चीन नहीं पहुँच सकते थे। वह कैसे भी रुपयोंका इन्तजाम करके विमान द्वारा हांगकांग पहुँचे। वहाँसे वह रेल द्वारा चीनकी भूमिमें दाखिल हुए। कान्तन और फिर पेकिंग रेलसे जाना था। अपने चीन-यात्राके दो महीनेके अनुभव पर उन्होंने जो रेडियोपर भाषण दिया था, उसे हम आगे देनेवाले हैं। आततायी च्यांगकाई शेक और उसके हत्यारे साथियोंने देशसे मुँह काला करके भागनेसे पहिले ही उसका पूरी तौरसे सत्यानाश कर दिया था। सारे शहर जला दिये थे। किसी कारखाने, रेल या पुलको साबित नहीं छोड़ा था। १९२७ से १९४९ तकके २२ वर्षोंमें इन दस्युओंने अपने तीन करोड़ देश भाइयोंको मार डाला था। १९५२ में जब सरदार अपनी यह चीनकी यात्रा कर रहे थे, उस समय देशको मुक्त हुए अभी तीन ही बरस हुए थे। वह देख रहे थे, सभी जगह मकान बन रहे हैं। कारखाने फिर चालू हो गये हैं और पुलों तथा रेलोंकी भी मरम्मत हो रही

है। इस समय अधिकतर ध्यान रहनेके मकानोंकी ओर तथा खेतीकी ओर था। सरदारने वहाँ अपनी देखी बातों तथा चीनकी प्रगतिको साथ सूत्रोंमें ग्रथित किया है।

(१) स्त्रियोंको पूरी तौरसे आज़ाद कर दिया है। उनके लिए प्रसूति गृह तथा दूसरे सुभीते प्रदान किये हैं। पुरुषोंकी अब वह चेरी नहीं हैं। स्त्रियाँ जिन नेताओंको इसका कारण समझती हैं उनकी आज्ञा पर हजार बार कुर्बान होनेको तैयार हैं।

(२) नौजवानोंके लिए अब सभी रास्ते खुले हैं। मुफ्त शिक्षाका पूरा प्रबन्ध है। और शिक्षा समाप्त करते ही हरेक नौजवानके लिये काम प्रतीक्षा कर रहा है। फिर वह अपने नेताओंकी बात पर हजार बार क्यों न कुर्बान हों?

(३) पुराने युगमें कारखानेवाले मजदूरोंके प्राणोंसे खिलवाड़ करते थे, वहाँ वह पशुकी तरह खटने और फिर समय-समय पर बेकारीका शिकार होनेके लिए बाध्य थे। भागते समय देशके शत्रुने कारखानोंको भी बर्बाद कर दिया था, अब वह कारखाने फिरसे आबाद होकर पहले-से भी और अच्छी तरह काम कर रहे हैं। सैकड़ों नये कारखाने काम कर रहे हैं जिनके मजदूर सड़ी गलियों, सड़े मकानोंमें रहनेके लिए नहीं छोड़ दिये गये हैं। उनके लिए अच्छे साफ-सुथरे मकान बने हैं। कार-खानोंमें भी रोशनी और हवाका पूरा प्रबन्ध है। मजदूरों और उनके परिवारके लिए शिक्षा और स्वास्थ्यका ही प्रबन्ध नहीं है, बल्कि मनो-रंजनके लिए क्रीड़ा-उपवन और सुन्दर क्लब तैयार हैं। बीमारीमें मुफ्त चिकित्सा होती है और बुढ़ापेमें उन्हें पेन्शन मिलती है। यही कारण है, जो चीनी मजदूर समझते हैं कि यह कारखाने हमारे लिए हैं, हम कारखानोंके लिए नहीं है। इसीलिये वह उनकी उपज बढ़ाते हैं और अपने नेताओंकी आज्ञाओंपर हजार बार कुर्बान होनेके लिए तैयार हैं।

(४) किसानोंका शोषण अब बन्द हो चुका है। खेतीकी उपज

तीन गुना बढ़ चुकी है। किसान अपने खेतोंके मालिक हैं। वह परस्पर सहायता करते हुए अपना काम करते हैं। उनकी शिक्षा और स्वास्थ्यके लिए सरकार बड़ी तत्परतासे काम कर रही है। गाँवको शहरों और देशके दूसरे प्रदेशोंसे मिलानेके लिए सड़कें बन रही हैं। बाँध बँध रहे हैं और नहरें खुद रही हैं। अकाल और बाढ़के शिकार होनेकी सम्भावना खत्म सी हो चुकी है। और जरा भी संकट पड़नेपर सरकारकी सहायता वहाँ आ मौजूद होती है, इसीलिए किसान कहते हैं "राज्य हमारा है, राज्यको सबल बनाना हमारा कर्तव्य है।"

(५) १९२७-४९ में कम्युनिस्ट पार्टीके लाखों सदस्योंको प्रतिक्रियावादी अमेरिकन पिट्ठुओंने मरवाया, लेकिन वह रक्तबीज साबित हुए। १९५० में पार्टीके पाँच लाखसे अधिक कम्युनिस्ट इस आगमें तपाये मौजूद थे, इन्हींके हाथोंमें राजसत्ता आयी। वह जनताके आदमी थे। जनता उनको प्यार करती थी। जनताकी नब्ज पहिचाननेके कारण वह जानते थे कि हमें क्या करना है। चीनकी क्रान्ति एक सुव्यवस्थित योजनाके साथ हुई थी। लड़ाईकी अन्तिम विजयकी प्रतीक्षा किये बिना जो भी प्रदेश मुक्त हो जाता था, उसमें पुनर्निर्माणका काम होने लगता था। इसलिए जनता दिलोजानसे सहयोग दे रही थी। कम्युनिस्ट सिर्फ लम्बे वादे करनेवाले नहीं थे। इसीलिये तो वह जनताके अडिग विश्वासके पात्र हैं, और तभी तीन सालके भीतर उन्होंने हर क्षेत्रमें इतनी सफलता दिखलायी, और कम्युनिस्ट शासनके स्थापित होते ही अनाजके लिए परमुखापेक्षी चीन इतना अन्न उपजाने लगा, कि वह भारत तथा दूसरे देशोंको लाखों टन अन्न देने लगा।

(६) चीनको इतनी सफलता इस कारण भी हुई कि रूस उसे जैसा निस्स्वार्थ सहायक और पथप्रदर्शक मिला। हजारों रूसी विशेषज्ञ जहाँ खुलकर रास्ता बतलानेके लिए चीन पहुँच गये, वहाँ हर तरहकी

सामग्री भी रूसने दी। अच्छेसे अच्छे यन्त्र और तीस सालका अनुभव रूससे चीनको मिला। चीनको अपने फाजिल अन्न या दूसरी सामग्री-बेचनेके लिए बाजार ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं थी। रूसने उस सबको लेकर बदलेमें उद्योगीकरण और दूसरे कामोंके लिए आवश्यक मशीनें और दूसरी चीजें चीनको दीं। रूस और उसके विशेषज्ञोंका हमेशा यही ध्यान रहा कि जल्दीसे जल्दी चीनी लोगोंको अपने पैरोंपर खड़ा कर दिया जाय, ताकि फिर हमें तकलीफ करनेकी आवश्यकता न हो, और साथ ही साम्यवादी देशोंको चारो ओरसे घेरनेवाले थैलीशाहोंके मुकाबलेमें शक्तिशाली चीन रूसके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर खड़ा हो जाये।

(७) चीनके इतनी जल्दी सफलता प्राप्त करनेमें एक और बातने बड़ा काम किया, वह थी चांगकाईशेक और अमेरिकन पिट्ठुओंको मार भगानेमें जिन पार्टियों और लोगोंने सहयोग किया था सरकार बनानेमें भी उन्हें शामिल किया गया। भारतमें कांग्रेस अकेली अंग्रेजोंके साथ लड़नेवाली नहीं थी। यहाँ और भी कितनी ही पार्टियोंने देशको मुक्त करनेमें कम कुर्बानियाँ नहीं कीं। लेकिन सत्ता हाथ आनेपर कांग्रेस-वालोंने उन्हें दूधकी मक्खीकी तरहसे निकाल बाहर कर दिया, और सारी शक्ति अपने हाथमें लेकर अयोग्यता एवं भ्रष्टाचारका वह तूफान बरता किया, जिसके कारण आज कांग्रेसका नाम अधिकांश लोग घृणाके साथ लेते हैं।

१९३६ में सरदार रूससे भारत लौटे थे, तबसे वह विदेशमें नहीं गये थे। चीनकी दो महीनेकी यात्रा उनके लिए इतनी प्रेरणादायक हुई, कि वह कहने लगे, अब मेरी बैटरी अगले दस सालोंके लिए चार्ज हो गयी।

भारतके प्रतिनिधि जब पेकिंग जा रहे थे, तो पाकिस्तानके प्रति-निधि वहाँ साथ नहीं भेजे गये। पाकिस्तानी सरकारकी यह चाल थी कि प्रतिनिधियोंको इस तरह भेजा जाय. जिसमें वह पेकिंग कांग्रेसमें

जाकर भारतके खिलाफ खूब प्रचार करें। पाकिस्तानी प्रतिनिधि पहिले अलग अलग रहते थे और उन्होंने कोशिश की कि कश्मीरके सम्बन्धमें भारतको आक्रमणकारी कहकर बदनाम किया जाय। भारतीय प्रतिनिधियोंके नेता डाक्टर किचलूने कहा—क्यों न हम इन बातोंको खुद सुलझा लें। चाहे पहिले पाकिस्तानी प्रतिनिधियोंका रुख कैसा ही रहा हो, लेकिन जब चीनमें उन्होंने हर तरफ जाग्रति, हर तरफ नवनिर्माण और प्रगतिको देखा, तो उनकी आँखें खुल गयीं और वह श्रद्धालु तीर्थयात्री जैसे बन गये। और फिर दोनों देशोंके प्रतिनिधि मंडल खुलकर एक दूसरेसे मिले।

रेडियो भाषण—भारत लौटनेसे पहिले नवम्बर १९५२ में पेकिंग रेडियोपर सरदारने जो भाषण किया था उसके कुछ अंश निम्न प्रकार हैं :—

"अपने देशको उत्पीड़न और सब तरहके शोषणसे मुक्त करानेके लिए एक योद्धाके तौरपर मैं चीनी जनताके वीरतापूर्ण राजनीतिक संघर्षको बड़ी उत्सुकतासे देखता रहा। चीनी जनताने यह संघर्ष अपने महान् क्रान्तिकारी नेता अध्यक्ष माओके पथप्रदर्शनमें किया, जिन्हें महान् मोक्षकर्ता कहना बिलकुल उचित है। १९४९ में प्रतिक्रियावदी शक्तियोंको चूर्ण चूर्ण करनेके बाद एक नया युग आरम्भ हुआ। मुक्तिके बाद अपने अनुभवी नेताओंके पथप्रदर्शनमें चीनी जनताने जो नवनिर्माणका काम शुरू किया, उसका इतिहासमें कोई उदाहरण नहीं है। इन बातोंको मैं दूरसे केवल सुनता भर रहा, और मेरी बड़ी लालसा थी कि इसे स्वयं अपनी आँखोंसे देखूँ, और नये चीनके निर्माताओंके सम्पर्कमें आऊँ, जिससे मालूम कर सकूँ कि किस तरह वह अपने स्वप्नोंको साकार कर रहे हैं। यहाँ आकर जो मैने देखा, और जिसके प्रभावको मैं अपने साथ अपने देश ले जा रहा हूँ, उसका थोड़ा सा वर्णन कर देना चाहता हूँ। मैं अपने साथियोंके साथ कौलून (हांगकांगके पास) ट्रेनमें बैठा और जब छोटेसे पुलसे पार

हुआ, तो पूँजीवादी दुनियाके बाहर एक नयी दुनियामें अपनेको पाया। मैं वहाँ छोटे वेटिंग रूममें बैठा था, उस समय मेरी दृष्टि नवीन चीनके ऊपर थी। वहाँ उस रूमने मुझपर बहुत प्रभाव डाला। वेटिंग रूमकी दीवारें बड़े कलापूर्ण रूपसे अलंकृत थीं। यही नहीं, बल्कि मुसाफिरोंकी जिस सावधानीके साथ देखभाल की जाती है, वह भी एक दर्शनीय चीज थी। रेलवे कर्मचारी घृणा क्या, उपेक्षा भी नहीं दिखलाते थे और हर तरहसे मुसाफिरोंकी सहायता करते थे। चारों ओर सफाई और व्यवस्था दिखलाई पड़ती थी। लोग भी बड़े सुव्यवस्थित रूपसे आ जा रहे थे। व्यवस्था जबरदस्ती लादनेके लिए वहाँ कोई नहीं था। यह स्पष्ट मालूम हो रहा था कि लोगोंके आत्मानुशासनका स्तर बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपने तजर्बेसे जान लिया कि यह हमारे अपने स्वार्थकी चीज है। वहाँ सैकड़ों मुसाफिर—माताएँ अपने बच्चोंको गोदमें लिये थीं, पर सभी व्यवस्थित रूपसे चलते थे। सफाईकी तो यह हालत थी कि कहीं न एक मक्खी थी न एक मच्छड़ और न कुत्ता। लोगोंकी पोशाक चाहे बहुत कीमती न हो, लेकिन बहुत अच्छी थी। वह स्वस्थ और प्रसन्न थे। उनका सिर उन्नत था, भावोंमें दृढ़ संकल्प और गम्भीरता झलक रही थी। जहाँ भी जाओ, चाहे वह नवीन चीनका नया कृषि फार्म हो या कोई दूसरी जगह, सर्वत्र यही नजारा दिखलाई पड़ेगा। जिस शामको हमारी ट्रेन दक्षिणी चीनके सबसे बड़े शहर और क्रान्तिकारी परम्पराके धनी नगर कान्तनमें पहुँची, वहाँ बड़ा स्वागत हुआ। क्रान्तिकारी नेता वहाँ मौजूद थे, अपनी मुस्कुराहटसे स्वागत करनेके लिए। चीनके तरुण भी हमारे स्वागतके लिए वहाँ तैयार थे। वहाँ हमने नवीन चीनका दृढ़ आलिंगन प्राप्त किया और हम आत्मविभोर हो गये। तरुण और तरुणियोंने हमारा दिल खोलकर स्वागत किया। भाषा और जातिका भेद न जाने कहाँ विलीन हो गया। और हम अपनेको एक समझने लगे। उनके उत्साह और जोशने हमारे पैर उखाड़ दिये। जो प्यार चारों तरफ हमारे प्रति किया गया, वह हमारे अन्त-

स्थल तक पहुँच गया। मेरे दिमागमें यही ख्याल बराबर आता था, यह सपना है या वास्तविकता। इसे मैं इन्कार कैसे कर सकता था, कि यह वास्तविकता नहीं है। मेरे हाथमें एक सुन्दर गुलदस्ता दिया गया था, जिसकी सुगन्धि और सौंदर्य चारों ओर फैल रही थी। मैं इसी तरह आत्मविभोर एक होटलके कमरेमें ले जाया गया, जहाँ रात बितानी थी। वहाँ भी दिमागमें वही ख्याल दौड़ रहा था—"मैं क्या सपना देख रहा हूँ।" लेकिन वह सपना नहीं था, यह मैं जानता था। नवीन चीनमें आनेकी यह पहिली रात थी।

नवीन चीनके निर्माताओंके पास कितनी शुद्ध और उर्वर भूमि मिली है। और वह भी उसको अपने आँखकी पुतलीकी तरह जोतकर काम ले रहे हैं। उनके पास इस भूमिके वह बच्चे हैं, जिनकी शिक्षा-दीक्षाके लिए लाखों चीनी वीरोंने अपना बलिदान किया। इन बच्चोंकी देखरेखमें कोई कसर उठा नहीं रखी गयी, सभी अपने कर्तव्यको राष्ट्रीय प्रांगणमें पूरी तौरसे अदा कर रहे हैं। नवीन चीनके बच्चे जानते हैं कि उनको कितना प्यार मिल रहा है। इसलिये वह इतने प्रसन्नमुख रहते हैं। जहाँ कहीं भी गये, हमने बच्चोंको उनके सजग नेताओंके प्रदर्शनमें सजग पाया। रेलके प्लेटफार्मोंपर, सड़कोंपर, भोजमें और अपने पाइ-नियर कैम्पोंमें सभी जगह यह महान् जनताकी पांतीमें दिखाई पड़े। नवीन चीनकी आत्मा इन बच्चोंके भीतर व्याप्त हो रही है। इन बच्चोंको देखकर मेरे मनपर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। नवीन चीन जो भी महान् निर्माण कर रहा है, उसके यही तो स्वामी हैं। मेरी इच्छा होती थी, यदि मैं भारतीय शिक्षा विशारदोंको यहाँ लाकर दिखला सकता, तो वह कितनी बातें सीख सकते।

❀ ❀ ❀

विदेशी आक्रमणकारियोंके साथ वीरतापूर्ण प्रतिरोध करके कोरियाके वीरोंने सारी दुनियाके हृदयमें सम्मानका स्थान प्राप्त कर लिया है। अपनी श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शनके रूपमें भारतीय शान्ति प्रतिनि-

धियोंने कोरियाके वीरोंको कुछ भेंट अर्पित की और दोनों गलेसे मिले मानो भारतने कोरियाको प्रेमसहित अपनी छातीसे लगा लिया। सारा हाल इस दृश्यसे प्रभावित देख पड़ा। १६० करोड़ लोगोंके प्रतिनिधि एक रायसे दृढ़-संकल्प थे, वह सरकारी शान्तिको अवश्य कायम रक्खेंगे और कोरियन जनताके पक्षमें रहेंगे।

दूसरी भावमग्न करनेवाली घटना वह थी, जब भारतीय और पाकिस्तानी प्रतिनिधियों द्वारा समर्थित और हस्ताक्षरित घोषणा कश्मीरके बारेमें सम्बन्धी घोषणा की गई। सारे प्रतिनिधि मण्डलने इसे एक भारी सफलताके तौर पर स्वीकार किया। पाकिस्तानी और भारतीय दोनों देशोंके प्रतिनिधि भावाविष्ट दीख पड़े। वह स्मरणीय घोषणा पढ़ी गयी और पास की गयी, यह शान्तिका एक दृढ़ आधार है...

चीन गणराज्यके तृतीय वार्षिकोत्सवके समय चीनी जनताके विराट प्रदर्शनको देखनेका बेमिसाल मौका शान्ति और प्रगतिके प्रेमियोंको मिला। यह एक ऐसी जनताकी सामरिक शक्तिका सुन्दर प्रदर्शन था, जिसने चमत्कारपूर्ण विजय प्राप्त की और जो अपनी सफलताओंकी रक्षाके लिए तैयार है। अनुशासनसम्पन्न हो जिस तरह जनता रातको चल रही थी, वह उसके एक बिल्कुल दूसरे मनोभावको प्रकट कर रही थी। सारी खुली जगहें भर गयी थीं। सभी चीनी लोकतानपर नाच रहे थे। सभी अपनी भव्य सफलताओंसे आनन्द-विभोरसे जान पड़ते थे। यह एक अदम्य समुद्रसा मालूम होता था।...

हम मुकदन देखने गये। नागरिकों तथा सारे कमकर-वर्गने हमारा भारी स्वागत किया। भारी उद्योगके विकासकी प्रक्रियाको चित्रित करनेवाले औद्योगिक प्रदर्शन, नये चीनके निर्माता कमकरोंके घरोंके और उनके बच्चोंके लिए बनती शिशुशालाओं, कमकरवर्ग और किसानोंमें कामके लिए तैयार किये जाते कर्मियोंके प्रशिक्षण-केन्द्रोंको देखा। हमपर पूरा विश्वास किया गया। सभी दरवाजे हमारे लिए

खुले थे, सभी योजनाएँ हमारे सामने खोल कर रख दी गयीं। जो हमने देखा, उससे हम इस निष्कर्षपर पहुँचे, कि नवीन चीन आगे कूच कर रहा है, उसके नेताओंके पास सर्वाङ्गसंपन्न योजनाएँ हैं, और उनका जनगणपर पूरा विश्वास है, जिसके हितके लिए सभी बातें आयोजित की जा रही हैं। इंजन-ड्राइवरकी योग्यता प्राप्त करनेवाली प्रथम चीनी महिलासे मिलकर हमने अपनेको सम्मानित समझा। सभी कर्मी यन्त्र-कौशलपर अधिकार प्राप्त करने तथा उत्पादनको अधिकतम मात्रामें पहुँचानेके लिए परम उत्सुक मालूम होते थे, क्योंकि वह समझते हैं कि जो कुछ है, सब हमारा है, और उसकी प्राणपनसे हमें रक्षा करना है।

हम नानकिंग देखने गये। चीनी पुनर्जागरणके पिताके प्रति श्रद्धांजलि देने हम गये। प्रगति और स्वतन्त्रताके लिए सारे जीवन भर लड़ते रहनेवाले डाक्टर सुन् यात्-सेनके सम्मानमें जो स्मारक तैयार किया गया है, वह पूज्य और पूजक दोनोंके अनुरूप है। वह सौन्दर्य और कलाका प्रतीक एक अत्यन्त मनोरम पृष्ठभूमिमें बनाया गया है। यह स्थान कला और संगीतके प्रेमियोंके लिए एक आकर्षक केन्द्र बन गया है। नवीन चीनके निर्माता अपने राष्ट्रीय क्रान्तिकारी वीरोंकी स्मृतिके प्रति सच्चा अनुराग रखते हैं। कूमिनंगी इन वीरोंको कतल करनेके लिये एक पहाडकी टेकडीपर ले जाये जाते थे, केवल इसी अपराधके लिए, कि मेहनतकशोंके सम्मानकी रक्षाका प्रयास किया और उत्पीडकोंकी अवहेलना की। एक लाख वीरों और उन वीरोंके सम्मानमें उनके अनुरूप एक स्मारक खड़ा किया है, जिनके कार्य और अपने देशभाइयोंके लिए प्रेरणादायक संदेश नवीन चीनके निर्माताओंकी अनमोल निधि है।

हम हवाई नदीके एक बाँधको देखने गये। सुन्-फो नदीके तटपर निर्माण-स्थानके लिये रवाना होनेसे पहिले एक बने-बनाये सूत्रके अनुसार चीनी जनताकी अद्भुत सफलताके कारणोंके विश्लेषण करनेका

प्रयत्न किया। मानव और सामग्रीका मेरा सीमित ज्ञान ठीक विश्लेषण करने तथा समुचित निष्कर्ष निकालनेके लिए अपर्याप्त था। वहाँ स्थान-पर पहुँचकर उनकी सफलताका रहस्य मेरे सामने उद्घाटित हुआ। वहाँ हमने नये चीनके निर्माताओंको रक्त-मांसमें साकार तथा एक निश्चित दिशामें तूफानी गतिसे चलते देखा। दासताकी जंजीरोंसे मुक्त मानव शक्ति एक दिशामें लगा दी गयी है, और वह पूरी सजगताके साथ एक निश्चित लक्ष्य पर सारी विघ्न-बाधाओंको हटाते बढ़ रही है......

जनताकी शक्ति एक डायनामोकी शक्ति है, इसने नवीन चीनके निर्माताओंको एक विराट जेनरेटर खड़ा करने योग्य बनाया, ऐसा जेनरेटर, जिसके जैसे जेनरेटरको इससे पहिले मानव जातिने कभी नहीं देखा था। इस जेनरेटरको महाप्रतिभाके धनी अध्यक्ष माओने सोचा और बनाया। तारीफ यह है कि इस शक्तिने केवल चीनमें बिजली नहीं दौड़ा दी, बल्कि सारे विश्वके वातावरणमें बिजली उत्पन्न कर दी। ऐसे जेनरेटपर पूरा काबू पा लेने पर निरंकुश नदियोंको काममें जोतना बच्चेका खेल सा है। इस अद्भुत कार्यको देखना शान्ति और स्वतन्त्रताके प्रेमियोंके लिए भारी आनन्दका स्रोत है। नवीन चीनकी हर तरह रक्षा करनी होगी, हम इसकी रक्षा करनेकी शपथ करते हैं, जिसमें कि मेहनतकश जनगणकी शक्तिकी मुक्ति द्वारा सारे विश्वमें ऐसे आश्चर्य-कार्य होवें।......